अनादि तत्त्व

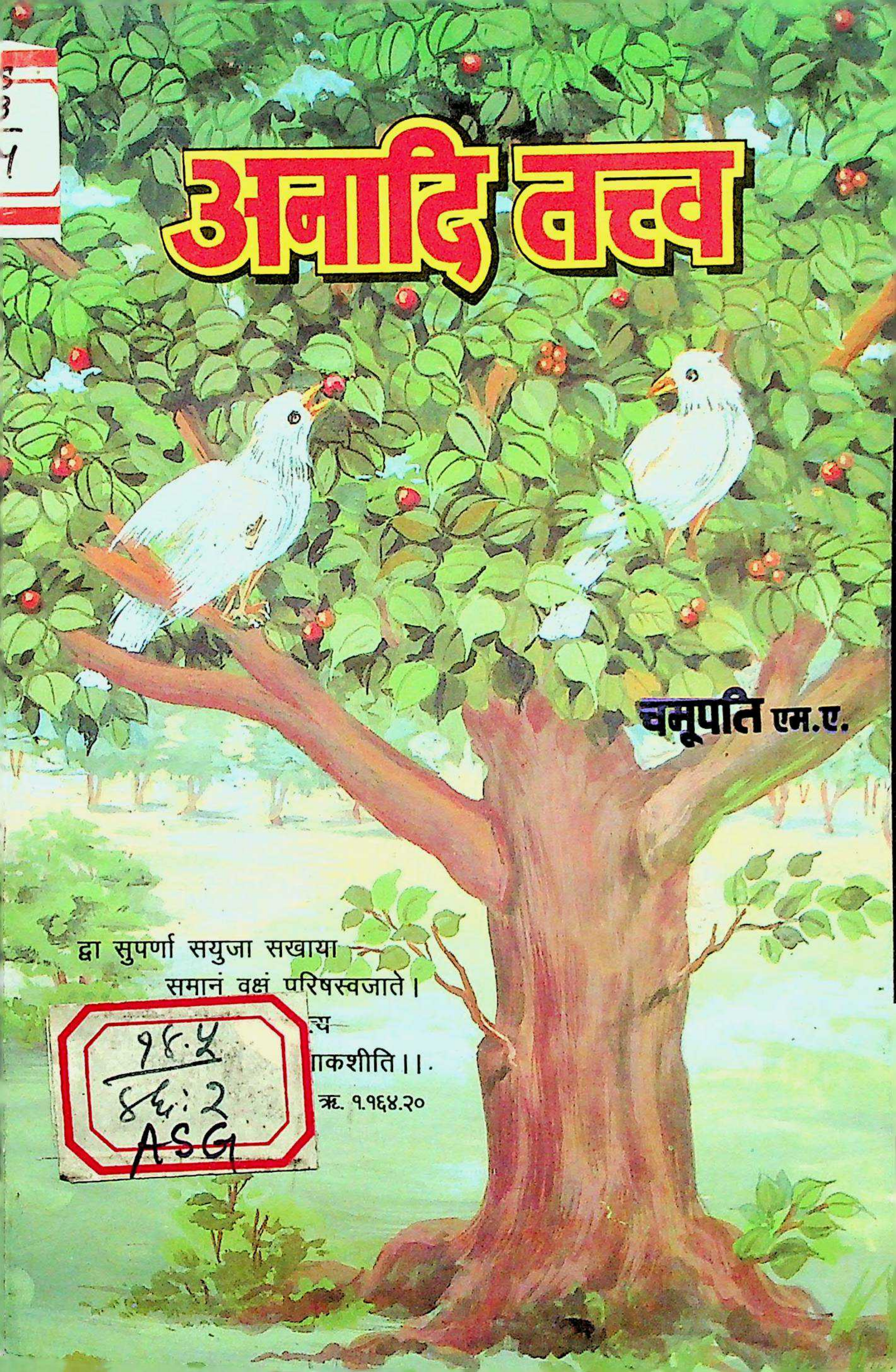

चमूपति एम.ए.

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
...त्य
...ाकशीति।।
ऋ. १.१६४.२०

18.5
8ध:2
ASG

18.5
86:2

पुस्तकालय 122907

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

विषय संख्या ______ आगत नं० ______

लेखक चमूपति

शीर्षक अनादि तत्व

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

१४.५
४६:२

122907

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

18.5
86:2

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

122907

वर्ग संख्या......... ..   आगत संख्या...........

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित हैं । इस तिथि सहित ३०वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए । अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा ।

अनादि तत्त्व : जवाहिरे जावेद

14.5.43.2
122907

अनादि तत्त्व

(जवाहिरे जावेद)

हवूसे रूहो माद्दः का युक्तियुक्त सप्रमाण उत्तर
जवाहिरे जावेद का हिन्दी संस्करण

122907

लेखक
पं० चमूपति एम० ए०

हिन्दी रूपान्तरकार
पं० उत्तमचन्द 'शरर' एम० ए०

प्रकाशक
समर्पण शोध संस्थान
४/४२ राजेन्द्रनगर, सै० ५, साहिबाबाद, गाजियाबाद (उ० प्र०)

प्रकाशक
समर्पण शोध-संस्थान
४/४२ सै० ५, राजेन्द्र नगर, साहिबाबाद
गाज़ियाबाद (उ० प्र०) २०१००५
दूरभाष : ८-६२३०२६

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

संवत-२०५५
प्रकाशन तिथि
१५ अगस्त, १९९८

प्रथम संस्करण-११००
द्वितीय संस्करण-११००

मूल्य : ३०.०० रुपये

मुद्रक
राधा प्रेस,
२४६५ मेन रोड, गांधी नगर
दिल्ली - ११००३१ फोन - २२१३१०७

विषय-सूची

क्रम सं०		पृष्ठ
१.	संस्थान के विज्ञ पाठकों की सेवा में ...	१
२.	विषय प्रवेश	
३.	आत्मा ...	२
	आत्मा के लिंग, अपरिणामी, अमर्त्य, अल्पज्ञ, अणु परिमाण	
४.	परमात्मा ...	४
	प्रवृत्ति की युक्ति, रचना की युक्ति, धर्म की युक्ति, पूर्णता की युक्ति, अन्तःप्रत्यक्ष की युक्ति	
५.	परमात्मा का स्वरूप ...	६
	ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, परमात्मा एक है, उपास्य है, जीव अनादि है, प्रकृति अनादि है	
६.	तीन कारण ...	७
	१. परमात्मा—नियामक होकर।	
	२. जीवात्मा—भोक्ता होकर।	
	३. प्रकृति—उपादान कारण होकर।	
७.	सृष्टिक्रम ...	७
	महान्, अहंकारतन्मात्र, इन्द्रिय और भूत, परमाणु	
८.	भूतों का विकास ...	८
९.	विकासवाद की समीक्षा ...	८
१०.	भूमिका ...	९
	समानता के स्थल, मतभेद, ऋषि का उपकार, इस्लाम का मौन, अहमदीयत, अनादि प्रजा, जीव तथा प्रकृति, अबदी स्वर्ग, व्यष्टि तथा सृष्टि, अनादि वास्तविक नहीं, एक हास्यास्पद प्रार्थना	

क्रम सं०		पृष्ठ

११. आत्मा का स्वरूप	...	१७
१२. पुस्तक की सभ्यता	...	१९
१३. अनादि तत्त्व	...	२३
प्रथम अध्याय		
१४. सर्वशक्तिमान् का अर्थ पहले तर्क का उत्तर	...	२७
१५. नास्तिक कौन है ? दूसरे तर्क का उत्तर	...	३०
१६. ससीम किसने किया ? तीसरे तर्क का उत्तर	...	३६
१७. ईश्वर सबका स्वामी कैसे ? चौथे तर्क का उत्तर	...	४१
१८. क़ादियानी बहिश्त पर एक दृष्टि	...	५१
१९. ज्ञान की कमी (अल्पज्ञता) पाँचवें तर्क का उत्तर	...	५५
२०. प्रत्येक वस्तु नश्वर नहीं छठे तर्क का उत्तर	...	६२
२१. संयोगवश चमत्कार कैसे ? सातवें तर्क का उत्तर	...	६६
२२. ज्ञान और रचना आठवें तर्क का उत्तर	...	६८
२३. कर्मफल अथवा पारितोषिक नवें तर्क का उत्तर	...	७०
२४. स्वर्ग या कारागार	...	७६
२५. व्याप्य और व्यापक दसवें तर्क का उत्तर	...	७७
२६. आवश्यकता का प्रश्न ग्यारहवें तर्क का उत्तर		७९
२७. परमात्मा की आवश्यकता बारहवें तर्क का उत्तर	...	८१
२८. अविभाज्य तत्त्व तेरहवें तर्क का उत्तर	...	८४

क्रम सं० पृष्ठ

२९. रूपवान् नश्वर नहीं ... ८६
चौदहवें तर्क का उत्तर

३०. क्या अल्लाह जरूरतमन्द है ? ... ८७
बीसवें तर्क का उत्तर

३१. प्रेम तथा सृष्टिरचना ... ८९
इक्कीसवें तर्क का उत्तर

३२. भाव का मूल स्रोत अभाव ... ९०
तेईसवें तर्क का उत्तर

३३. भक्ति तथा अनादित्व ... ९१
चौवीसवें तर्क का उत्तर

३४. जीव तथा प्रकृति की आवश्यकता ... ९२
छब्बीसवें तर्क का उत्तर···

३५. गुणी का विनाश नहीं ... ९३
बत्तीसवें तर्क का उत्तर

३६. विचार-रहित तर्क ... ९४
तेतीसवें तर्क का उत्तर

दूसरा अध्याय ... ९५-१२५

३७. मालिक बेमुल्क ९५

प्रथम तर्क—(१) कादियानी उत्तर।
(२) अहमदियों से भिन्न इस्लाम का उत्तर।
(३) गैर-अहमदी उत्तर।

दूसरा तर्क—(१) प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा।
(२) अनुमान प्रमाण द्वारा।

चौथा तर्क—'से' के अर्थ, 'कुन' का सम्बोधन, दो मौलानाओं में मतभेद, अभाव तथा भाव का सम्मिलन।

पहले आक्षेप से पन्द्रहवें आक्षेप तक ... १०७-१२५

तीसरा अध्याय ... १२६-१३८

पन्द्रहवें तर्क से इकतीसवें तकं तक ... १२६-१३८

क्रम सं० पृष्ठ

चौथा अध्याय	...	१३९-१५१
कुर्आन की गवाही	...	१३९
उपादान कारण का वर्णन	...	१४१
कुन फ यकून	...	१४१
कुर्आन में अभाव का वर्णन	...	१४४
आवागमन	...	१४५
कुर्आन में कुम्हार का उदाहरण	...	१४६
पांचवां अध्याय	...	१४८-१५१
वेद का सिद्धान्त, तीन अनादि पदार्थ, असीम और ससीम	...	१४८
अनुभूति, अनुभवकर्त्ता तथा द्रष्टा	...	१४९
प्रकृति	...	१५०
अल्लाह मियाँ का बाप	...	१५१

संस्थान के विज्ञ पाठकों की सेवा में

'समर्पण शोध संस्थान' के विज्ञ पाठकों को विदित ही है कि उसके उद्देश्यों में अप्रकाशित किन्तु सम्प्रति दुर्लभ ग्रन्थों का प्रकाशन करना भी एक उद्देश्य है। संस्थान ने स्वनाम धन्य विद्वद्वर्य श्री पं० चमूपतिजी के अनुपलब्ध साहित्य के प्रकाशन को प्राथमिकता दी है। इतना ही नहीं अपितु उनके दुर्लभ उर्दू साहित्य का हिन्दी भाषान्तर कर जनता-जनार्दन के हाथों में समर्पित करने का श्रेय भी संस्थान को ही है। इस क्रम में सर्वप्रथम **वैदिक स्वर्ग** का प्रकाशन कर पाठकों के हाथ में पहुँचा दिया गया। दूसरा अभिनव ग्रन्थ जिसका मूल नाम **जवाहरे जावेद** है उसका हिन्दी रूपान्तर **अनादि सत्तायें** नामकरण करके सुधी पाठकों तक पहुंचाया जा रहा है। यह ग्रन्थ दो वर्ष पहले ही छपकर जनता-जनार्दन के हाथों पहुँच जाना चाहिए था, परन्तु किन्हीं कारणों से ऐसा सम्भव न हो पाया।

यह वर्ष पं० चमूपति जन्म-शताब्दी वर्ष है। अब अधिक विलम्ब अखर रहा था। इसलिये कुछ अपनी ओर से न लिखकर प्राक्कथन के रूप में उन्हीं के द्वारा लिखित **वैदिक-दर्शन** नामक ग्रन्थ से तीन अनादि सत्ताओं पर जो परिमार्जित विचार हैं, उन्हें ही छाप दिया है। हम अति शीघ्र **वैदिक-दर्शन** नामक ग्रन्थ को पृथक् से छपवाकर सुधी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करेंगे।

संस्थान श्री पं० उत्तमचन्दजी शरर का आभारी है कि जिन्होंने **जवाहरे जावेद** का हिन्दी रूपान्तरण करके संस्थान को प्रस्तुत किया। संस्थान आगे भी श्री चमूपतिजी के ग्रन्थों का यथावसर प्रकाशन करेगा।

—दीक्षानन्द सरस्वती

आत्मा

आत्मा के लिंग

जीवित शरीर में कुछ ऐसी चेष्टाएँ होती हैं जो जड़ शरीर नहीं कर सकते, जैसे **सुख-दुःख** की अनुभूति, **इच्छा, द्वेष, प्रयत्न** और **ज्ञान।** इन्हीं को न्याय दर्शनकार ने आत्मा के लिंग कहा है[1]। वैशेषिककार ने इनके अतिरिक्त **प्राणापान, निमेषोन्मेष, गति, इन्द्रियान्तरविकार**[2] अर्थात् एक इन्द्रिय के अनुभव से दूसरे इन्द्रिय में विकार होना, जैसे खट्टे पदार्थ के देखने से मुँह में पानी आना यह भी आत्मा के लिंग कहे हैं। जब तक शरीर में आत्मा है तब तक यह लिंग रहते हैं, आत्मा न हो तो यह भी नहीं होते। अतः यह इस शरीर से भिन्न आत्मा के चिह्न हैं। इन्हीं लिंगों को वेद में **अश्नः**[3] सुख-दुःख भोक्ता, **अपाङ् प्राङ्ेति**[4] किसी वस्तु की ओर जाता है (इच्छा), किसी से दूर (द्वेष), **सन्नद्धो मनसा चरामि**[5] प्रयत्नवान् होकर ज्ञानपूर्वक विचरता हूँ, **प्राणत् अप्राणत्** प्राण लेता है और नहीं लेता, **निमिषत्** आँख झपकाता है, **एजति पतति तिष्ठति** काँपता है, गिरता है, ठहरता है, **विश्वरूपं संभूय भवत्येकमेव** सारे इन्द्रिय-जन्य बोधों का एकीकरण कर एक बोधाधार है[6] इन शब्दों में कहा गया है। इन लिंगों के समान चेष्टाएँ भौतिक पदार्थों में भी पाई जाती हैं। Air-pump की कपाटी फेफड़े की भाँति वायु को धकेलती रहती है। लोहा चुम्बक की ओर वैसे ही खिंचता है, जैसे आत्मा अपने प्रिय की ओर, परन्तु इन क्रियाओं में आत्मा जैसी स्वतन्त्रता, स्वेच्छा, नहीं कि जब चाहा प्राण न लिया, जिसकी ओर आज खिंचे, कल उससे दूर भी हट गये। इस प्रकार यह लिंग आत्मा की अभौतिक सत्ता को जताते हैं।

---

१. न्यायदर्शन १।१।१०
२. वैशेषिक ३।२।४
३. ऋ० १।१६४।१
४. ऋ० १।१६४।३८
५ ऋ० १।१६४।२७
६. अ० १०।८।११

अपरिणामी

शरीर तो प्रत्येक सात से बारहवें वर्ष के अन्दर सम्पूर्ण बदल जाता है। तो वह स्थिर सत्ता कौन है जो इन बदलते शरीरों में अपरिणामी रहता है ? वेद ने शरीर को कभी **वाम** सुन्दर और कभी **पलित**[1] वृद्ध कहा है, क्योंकि यह **होता** दानादनशील है। परमाणुओं को खींचता तथा निकालता रहता है। इसका **भ्राता** भरणकर्त्ता भोगधर्मा आत्मा है।

अमर्त्य

आत्मा के गुण हैं **सत्** और **चित्** अर्थात् नित्यता और ज्ञान। वेद शरीर और आत्मा को शश्वन्ता नित्य कहता है, परन्तु फिर वही **अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः**[2] कहकर स्पष्ट कर दिया है कि शरीर प्रकृति रूप में नित्य है पर **मर्त्य** मरणधर्मा है, परन्तु आत्मा नित्य भी है और अमर्त्य भी।

अल्पज्ञ

आत्मा का धम ज्ञान है, परन्तु वह ज्ञान शक्तिमात्र है। किसी विशेष विषय का ज्ञान प्रयत्न से आता है। **अचिकित्वांश्चिकितुषः**··· **पृच्छामि**[3] 'मैं अज्ञानी ज्ञानियों से पूछता हूँ।' यही जीव की अल्पज्ञता है।

अणु परिमाण

जीव का परिमाण अणु है। वेद कहता है—**बालादेकमणीयस्कम्**[4] एक बाल से भी सूक्ष्म है।

विभु हो तो किस शरीर का कौन आत्मा है, इसका निश्चय न होगा। एक शरीर से एक ही आत्मा का सम्बन्ध क्यों हो, इसके लिये नियामक कारण नहीं होगा, क्योंकि सब विभु सब शरीरों में होंगे। मध्यम हो तो प्रत्येक शरीर के साथ इसका परिमाण बदलेगा और परिमाण बदलने वाला विनाशी होता है। इससे अनित्यता का दोष आएगा। इसलिये अणु होना ही युक्तियुक्त है।

---

१. ऋ० १६४।१
२. ऋ० १।१६४।३८
३. ऋ० १।१६४।६
४. अ० १०।८।२५

परमात्मा

परमात्मा

संसार को समष्टि शरीर समझ लें तो उसमें एक व्यापक आत्मा की सत्ता प्रतीत होती है। जीवों की शक्ति परिमित है। उनमें से न कोई अकेला सारे विश्व का आत्मा हो सकता है और न यह सब मिलकर। परिमित मिलकर भी परिमित ही रहेंगे। वेद ने आत्मा को कहा है **अवःपरेण**[1] कि वह परमात्मा से निकृष्ट है। **पर** का दूसरा अर्थ है सूक्ष्म। अर्थात् परमात्मा जीव से भी सूक्ष्म है। परमात्मा की सिद्धि के लिये निम्नलिखित युक्तियाँ तार्किक लोग देते हैं—

१—प्रवृत्ति की युक्ति Cosmological Argument इस युक्ति का सार यह है कि जगत् की प्रवृत्ति किसी चेतन से हुई है, क्योंकि इसके विकास में बुद्धि-द्योतक नियम काम करते हैं। वेद कहता है—**ततो विश्वङ्व्यक्रामत् साशनानशने अभि**[2] उस परम पुरुष से विश्व की प्रवृत्ति हुई, जड़ चेतन दोनों की।

वैदिक-धर्मी इस प्रवृत्ति के साथ धृति और निवृत्ति भी मिला देते हैं। संसार थमा काहे पर है? पदार्थों के पारस्परिक आकर्षण पर। वह आकर्षण स्थिर क्यों है? कौन है जो दो पदार्थों को आपस में आकर्षक भी बनाता है और आकृष्य भी? यह पारस्परिक अनुकूलता धारक का द्योतन करती है। वेद कहता है—**स्कंभेनेमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः। स्कंभ इदं सर्वमात्मन्वद् यत्प्राणन्निमिषच्च यत्॥**[3] धारण के पीछे निवृत्ति है। वेद कहता है—**काले निविशते पुनः।** परिगणनकर्ता परमात्मा में सबका लय होता है।

इन तीनों भावों, **प्रवृत्ति, धृति,** और **निवृत्ति,** का नियामक परमात्मा है। यदि यह केवल यान्त्रिक क्रियाएँ हों तो निवृत्ति से प्रवृत्ति और प्रवृत्ति से निवृत्ति न हो सके। प्रकृति का स्वभाव या तो निवृत्ति होगा या प्रवृत्ति। उसको समय-समय पर बदल देने वाला चेतन प्रभु है।

२—रचना की युक्ति Teleological Argument इस युक्ति का

---

१. ऋ० १।१६४।१७-१८
२. यजु० ३१।४
३. अथर्व० १०।८।२

आधार विज्ञान है। विज्ञान संसार के विविध-विविध अंगों में नियमों का आविष्कार करता है। इसी को रचना या Design कहते हैं। अंग प्रत्यंग फिर आपस में आन्तरिक नियमों से मिले हैं। यथा वनस्पति शास्त्र वनस्पति-जगत् में नियमों की सिद्धि करता है और पशुशास्त्र Zoology पशु जगत् में। फिर वनस्पतिशास्त्र का पशुशास्त्र से सम्बन्ध है क्योंकि पशु और वनस्पति एक अटूट रस्सी से आपस में बंधे हुए हैं। इस प्रकार सब विज्ञानों के ऊपर एक व्यापक विज्ञान है। उसे ब्रह्मविद्या कहते हैं। वेद में इसी परम संश्लिष्ट highest synthesis को **सूत्रस्य सूत्रम्** कहा है। **सूत्रस्यसूत्रं यो विद्यात् सो विद्यात् ब्राह्मणं महत्।**[1] प्रत्येक विज्ञान के आधार-भूत नियमों का रचयिता भी प्रभु है; और उस विज्ञान का प्रथम बोध भी प्रभु देता है।

३—**धर्म** की युक्ति Moral Argument सदाचार का आधार परमात्मा की सत्ता का विश्वास है। सदाचार परमात्मा की प्रेरणा है। उसका फल भौतिक हो अथवा अभौतिक या निष्कामता हो, उस फल का प्रेरक **सत्य धर्मा सविता**[2]। आर्य विचार भौतिक नियमों तथा आचार-सम्बन्धी नियमों दोनों के सूत्रीकरण Systematisation को शास्त्र नाम देता है। इस शास्त्र का प्रथम प्रादुर्भाव वेद के रूप में होता है। आत्मा की ध्वनि Conscience परमात्मा की प्रथम प्रेरणा है। धर्म-मर्यादा आरम्भ में उसी प्रभु की स्थापित की हुई है।

४—पूर्ण की संभावना की युक्ति Ontological Argument हम अपूर्ण हैं और पूर्णता चाहते हैं। यह पूर्णता का विचार बिना पूर्ण सत् के नहीं हो सकता। यदि हमारी भावना भ्रम मात्र भी हो तो उसका मूल-सत्य प्रत्यय होना चाहिए। क्योंकि भ्रम मात्र भी सत्य का अपभ्रंश होता है। जिस आदर्श की ओर हम दौड़ते हैं और जिसके अंश मात्र का अपने उत्कर्ष में अनुभव करते हैं, वह आदर्श सत् है। वही परमात्मा है। **दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते**। अर्थात् मुक्त जीव परमात्मा नहीं होते। अमुक्त उसकी ओर जाते ही नहीं।

५—अन्तःप्रत्यक्ष की युक्ति Intuitional Argument इस युक्ति का दूसरा नाम है योगी का प्रत्यक्ष। **अन्तरिच्छन्ति तं जने**[4] उसे जन के अन्दर ढूंढ़ते हैं। **वेनस्तत्पश्यत्**[5] योगी उसे देखता है। आज कोई तत्त्ववेत्ता हेनरी वर्गसन भी इसी प्रत्यक्ष को परम प्रमाण मानते हैं।

१. अथर्व० १०।८।३८
२. अथर्व० १०।८।४२
३. अथर्व० १०।८।१५
४. ऋ० ८।७२।३

परमात्मा का स्वरूप

१. परमात्मा ज्ञानस्वरूप है, ज्ञान-लिंगी नहीं। अतः सर्वज्ञ है। **सर्वं तद्राजा वरुणो विचष्टे**[1]।

२. परमात्मा आनन्दस्वरूप है। पूर्ण को क्लेश कैसा? **स्वर्यस्य च केवलम्**[3]। जिसका आनन्द केवल है।

३. दुःख अकेवल सुख में है अर्थात् भोग में। परमात्मा **अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति**[4]। न भोगता हुआ साक्षी है।

४. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। आर्यसमाज का दूसरा नियम ---

५. परमात्मा एक है। पूर्ण अनेक नहीं हो सकते। **यस्पतिरेकएव**[5] वह पति एक ही है।

६. उपास्य है-- **नमस्यो विक्ष्वीड्यः**[6]। नमस्कार करने तथा प्रजाओं में प्रशंसा करने योग्य है।

जीव अनादि है

विकासवादी केवल प्रकृति को सृष्टि का कारण मानते हैं। उनके मत में Protoplasm कललरस जीवन का सरलतम रूप है। इसी कललरस की वृद्धि और गुणन से संकीर्ण प्राणियों का विकास होता है। कललरस भौतिक पदार्थ है। उसमें चेतनता कैसे आती है? इस समस्या का समाधान जीव को पृथक् और अनादि मानने से ही संभव है।

प्रकृति अनादि है

कुछ लोग केवल परमात्मा को आदि कारण मानते हैं। उनसे इस शंका का उत्तर नहीं हो सकता कि चेतन परमात्मा से अचेतन जगत् कैसे पैदा होता है? प्रकृति को अनादि मानने से यह शंका मिट जाती है।

इंग्लैण्ड के प्रकृति-विद्याविशारदों में से सबसे बड़ा विद्वान् प्रोफेसर ओवन (Owen) बड़े बलपूर्वक कहता है— "आज तक मनुष्य

---

१. अथर्व० २।१।१
२. अथर्व० ४।१६।५
३. अथर्व० १०।८।२
४. ऋ० १०।१६४।२०
५. अथर्व० २।२।१

ने जाति (Species) परिवर्तन का एक भी उदाहरण हमारे सामने नहीं रखा है।

जीव

जीव पाप भी करता है। यदि एकमात्र परमात्मा सृष्टि में कारण हो तो पाप का बीज भी वहीं ठहरेगा। अतः जीव को अनादि स्वतन्त्र कर्त्ता मानना चाहिए। स्वतन्त्रता पैदा की जाय तो वह स्वतन्त्रता न होगी।

तीन कारण

सृष्टि के तीन कारण होते हैं—(१) परमात्मा नियामक होकर। (२) जीव (**मरुद्भ्यः** ऋ०) कर्मफल का भोक्ता होकर। (३) यही प्रकृति का पुरुषार्थ है। (**सुदुघा पृश्निः** ऋ०) प्रकृति उपादान होकर।

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीम्।

सृष्टिक्रम

सृष्टि से पूर्व प्रकृति थी। व्यासमुनि ने योग सूत्र २।१९ का भाष्य करते हुए प्रकृति को '**निस्सत्ता सत् निःसदसत्**[1]" कहा है। प्रकृति असत् इसलिये न थी कि वह परमार्थ में थी। सत् इसलिये न थी कि उसका व्यवहार न था।

महान्

तुच्छ्ये नाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम्।[2]

अभाव से जो महान् ढका हुआ था, वह एक परमात्मा के तप से उत्पन्न हुआ।

तपः का अर्थ "**स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च**" है। उससे **नो सदासीत्** से आमु Pure being सत् (महान्) उत्पन्न हुआ। **मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।**[3]

अहङ्कारतन्मात्र

इससे ज्ञान का प्रथम बीज अहंकार--मैं हूँ, यह ज्ञान और तन्मात्र-केवल वह, यह ज्ञान, पैदा हुआ। यह शुद्ध सत्त्व का अधिक व्यक्त रूप है।

इन्द्रिय और भूत

इसके आगे सृष्टि का क्रम '**तिरश्चीनोरश्मिः**' दो-मुखा होता है।

स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात्।[4] —ऋ०

---

१. साधन-सूत्र १९

२. ऋ० १०।१२९।३

३. १०।१२९।४

४. ऋ० १०।१२९।५

अपने में आश्रित रहने वाले भूत एक ओर, प्रयत्न के साधन मन और, इन्द्रिय दूसरी ओर।

आर्य तर्क प्रकृति का विकास पुरुषार्थ (जीवों की आवश्यकता) के अनुसार मानता है।

परमाणु

वैशेषिक कथित परमाणु तन्मात्र ही हैं। कणभुक् को इन कणों से आगे प्रयोजन न था।

भूतों का विकास--भूतों का विकास यों हुआ—

यदन्तरा द्यावापृथिवी अग्निरैत् प्रदहन् विश्वदाव्यः।
यत्रातिष्ठन्नेकपत्नीः परस्तात् क्वेवासीन्मातरिश्वातदानीम्[1]॥

१. आकाश Etherial state २. वायु Gaseous state ३. अग्नि Agneous state ४. जल Liquid state ५. पृथिवी Lolid state यह क्रम युक्ति-युक्त है।

विकासवाद की समीक्षा

विकासवाद एक जाति के गर्भ से दूसरी जाति की उत्पत्ति मानता है, यथा मछली से मेंढक, मेंढक से सांप, सांप से पक्षी, पक्षी से स्तनधारी। इसमें विकासवाद की मुख्य युक्तियाँ यह हैं—

१. भूगर्भ विद्या की साक्षी—पृथिवी की निचली तहों में जलचरों के पंजर मिलते हैं। ज्यों-ज्यों हम ऊपरली तहों पर आते हैं, अधिक विकसित प्राणियों के पंजर मिलते हैं।

इसका **उत्तर**—भूतों के विकास का जो क्रम ऊपर दिया है, उसमें सूक्ष्म भूतों में रहने वाले प्राणी ही पहले पैदा हो सकते हैं। जब तक प्रकृति आग्नेय अवस्था में थी, पंजर न बन सकते थे। पंजर उस समय बने जब जलीय से पार्थिव सृष्टि होने लगी। यह कारण है कि निचली तहों में जलीय प्राणियों के पंजर मिलते हैं।

२. पशुगर्भ विद्या की साक्षी—संकीर्ण पशु सरल पशुओं की गर्भावस्था के अतिरिक्त अपनी विशेष गर्भावस्था में से गुज़रते हैं। प्रतीत होता है कि मेंढक पहले मछली रहा है, इत्यादि।

उत्तर—इससे रचना में क्रम (सूत्र) का द्योतन होता है, विकास का नहीं।

विकास की सच्ची साक्षी एक जाति के किसी प्राणी के पेट से दूसरी जाति के प्राणी की उत्पत्ति ही हो सकती है और इसका कोई प्रमाण नहीं।

—चमूपति

---

१. अ० १०।८।३९

भूमिका

आर्य तथा सामी दर्शन—आजकल दर्शन के प्रायः दो बड़े विभाग माने गए हैं—एक आर्य दर्शन तथा दूसरा सामी दर्शन। वर्तमान साम्प्रदायिक विभाजन भी इसी आधार पर किया जाता है। हिन्दु, पारसी, बौद्ध, जैन, इन चार को आर्य सम्प्रदाय तथा यहूद, ईसाइयत और इस्लाम को सामी सम्प्रदाय के नाम से पुकारा जाता है। इस विभाजन का आधार मानव-जाति का वह पैतृक विभाजन है जिसके द्वारा मनुष्य-जाति की प्रारम्भिक उत्पत्ति के कुछ भिन्न-भिन्न स्थान नियत किये गए हैं। उन्हीं स्थानों से मनुष्य के ज्ञान, भाषा तथा सम्प्रदाय की उत्पत्ति और विकास का अनुमान किया गया है। आज हम इस विषय पर विचार करने नहीं बैठे कि क्या संसार के सब मनुष्यों का मूल पैतृक स्थान कोई एक ही है या भिन्न-भिन्न जातियाँ भिन्न-भिन्न स्थानों की उपज हैं। हमारे पास इस विश्वास के ठोस आधार तथा तर्क हैं कि मानव के ज्ञान तथा कला का प्रारम्भिक स्रोत एक ही है। परन्तु जिस विषय पर हम चर्चा करने चले हैं, उससे इसका कोई सम्बन्ध नहीं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि योरुप तथा भारत की बहुत-सी जातियों का प्रारम्भिक देश एक ही है। उन्हें निःसंदेह आर्य माना जा सकता है। उनमें से एक बड़ा भाग ईसाई बन चुका है, परन्तु उनकी भाषा, विचार, ज्ञान तथा कला पर आरम्भ में उनके आर्यत्व की छाप है। ईरान तथा अफ़ग़ानिस्तान यद्यपि मजहब की दृष्टि से इस्लामी देश हैं, तो भी नस्ल की दृष्टि से उनकी गिनती आर्य देशों में होगी। काल्पनिक सामी नस्ल का वृत्त बहुत छोटा है और वह अरब, रोम तथा शाम इत्यादि कुछ देशों तक सीमित है, तो भी संसार के तीन बड़े मजहब इसी के अन्तर्गत आ जाते हैं, अतः उसका महत्त्व उसके विस्तार से नहीं, किन्तु उसके सम्प्रदायों के विस्तार से लगाना चाहिए।

समानता के स्थल—यदि मानव-जाति की विभिन्न नस्लों तथा उनसे उपजे सम्प्रदायों में विभाजन की कोई अमिट रेखा होती तो इनमें समानता के स्थल का पाना असम्भव था, परन्तु वास्तविकता यह है कि

इनमें समानता है और वह भी इतनी अधिक है कि आपसी भेद की बातें तुच्छ तथा नगण्य-सी लगती हैं। यहूदी मज़हव पर पारसी सम्प्रदाय का प्रभाव है और पारसी सम्प्रदाय आर्य-धर्म की एक शाखा है। ईसाइयत तथा यहूदी मत पर बुद्ध धर्म का प्रभाव स्पष्ट है, तथा इस्लाम और ईसाइयत वस्तुतः यहूदी मत से निकले हुए हैं। अतः इन तीन सम्प्रदायों को आर्य-धर्म से सचमुच जुदा समझना और नया मौलिक सम्प्रदाय मानना इतिहास और तर्क से आँख मूँदना ही है।

सामी दर्शन का आरम्भ यूनानी दर्शन से हुआ और यूनानी दर्शन हर स्थान पर आर्य-दर्शन से मेल खाता चलता है, अतः सामी दर्शन का मौलिक रूप से कोई अलग अस्तित्व तथा स्वरूप मानना विभाजन के आरम्भिक नियमों से इन्कार करना है। यूनान तथा भारत का राजनैतिक तथा सामाजिक सम्बन्ध एक ऐतिहासिक तथ्य है और दार्शनिक सम्बन्ध राजनैतिक एवं सामाजिक सम्बन्ध का स्वाभाविक परिणाम है।

मतभेद—फिर भी सम्प्रदाय तथा दर्शन की इन दो काल्पनिक शाखाओं में कुछ सैद्धान्तिक मतभेद पाये जाते हैं। इन मतभेदों का कारण दोनों का दो विभिन्न स्थलों में उत्पन्न होना नहीं है। लगता यह है कि पूर्वी देशों के आर्यों ने जहाँ धर्म तथा दर्शन का अपने आदि-स्रोत से सम्बन्ध जोड़े रक्खा, वहाँ एशिया के पश्चिम में जाकर दर्शन ने अपना अलग मार्ग अपना लिया, तथा मज़हव ने अपना जुदा रास्ता स्वीकार कर लिया; अथवा यूँ कहिये कि दर्शन को यह क्षेत्र अनुकूल नहीं मिला। मज़हब ने ऊपर-ऊपर के नैतिक नियमों एवं रस्मों के बाह्य ढाँचे को तो पकड़े रक्खा, परन्तु जीवन एवं मृत्यु के गम्भीर प्रश्नों को कठिन समझकर टाल दिया। सरलता के लिए इन आवश्यक समस्याओं की ओर से आँखें मूँद लीं। परिणामस्वरूप ये मतवादी अब तक परमात्मा के अस्तित्व को स्वीकार तो करते हैं, परन्तु उसके क्या गुण हैं, क्या विशेषताएँ हैं, दूसरे जीवों से उनका क्या सम्बन्ध है, इस प्रकार के गम्भीर प्रश्नों पर तार्किक अनुसन्धान वहाँ नहीं मिलता। आत्मा की सत्ता को तो वे सोच भी नहीं सके। अरबी कोश में 'रूह' शब्द तो विद्यमान है, परन्तु यह किसके विषय में आया है, यह बात अभी विवादास्पद है। रूह से क़ोई चेतन सत्ता अभीष्ट है अथवा कुछ और, इसपर वहाँ एकदम कुछ नहीं कहा जा सकता। योरुप में आत्मा के लिए कोई एक परिभाषा ही नहीं बन सकी। आरम्भ से ही Soul इत्यादि शब्द तो मिलते हैं

जिनका अर्थ आत्मा किया जाता है, परन्तु पश्चात् के अज्ञानता के युग ने इन शब्दों के अर्थों पर एक धुंध-सी पैदा कर दी है, जिसमें निश्चित अर्थ लुप्त-सा हो गया है। प्रकृति का अलग अस्तित्व विज्ञान ने तो स्वीकार कर लिया है, किन्तु मज़हब इस विषय में मौन है।

सामी दृष्टिकोण से धर्म का सम्बन्ध केवल परमात्मा से है। उसकी प्रशंसा कर देना, उसे सबसे महान् बता देना, उसे पूज्य कहना, बस यही धर्म का चरम लक्ष्य है। आत्मा तथा प्रकृति के सम्बन्ध में सामी धर्म विचार ही नहीं करता। परमात्मा को कर्ता कहा और आत्मा तथा प्रकृति, इनके गुण, पारस्परिक सम्बन्ध, संसार में विद्यमान स्पष्ट विषमता, जीवों का सुख-दुःख इत्यादि सब समस्याओं से छुट्टी पाई।

ऋषि दयानन्द का उपकार : मेला चान्दापुर—यह उपकार ऋषि दयानन्द का है कि सामी सम्प्रदाय अपने भूले हुए दार्शनिक सिद्धान्तों पर पुनः विचार करने लगे हैं। ईसाइयत तथा इस्लाम का प्रभाव भारत में भी है और ये दोनों 'तबलीग़ी' (दूसरों को अपने मत में लेनेवाले) मत हैं। ऋषि दयानन्द के आगमन से पूर्व यह मत मज़े से अपने अनुयायियों की संख्या बढ़ाते रहे; किसी विरोधी का सामना ही न था। ऋषि ने पहली बार इन मतों को अपनी दार्शनिक सम्पत्ति तथा अपने मत का दृष्टिकोण स्पष्ट करने को कहा, अर्थात् ये मत पहली बार तर्क की कसौटी पर आये। मेला चान्दापुर में शास्त्रार्थ हुआ। ऋषि ने वाद का पहला विषय यह निश्चित किया कि संसार को ईश्वर ने किस वस्तु से बनाया, कब बनाया तथा किसलिए बनाया ? पादरी स्कॉट ने उत्तर दिया—"मेरे विचार में ऐसे प्रश्नों का उत्तर देना व्यर्थ है। परन्तु जब सबकी सम्मति है तो मैं उत्तर देता हूँ।" मौ० मुहम्मद क़ासिम ने कहा —"उसने अपने शरीर से संसार उत्पन्न किया; हम उससे अलग नहीं; यदि अलग होते तो उसकी खुदाई में न होते !"

यह घटना १८८० ई० की है। इन महानुभावों के सम्मुख ऋषि दयानन्द का तर्कपूर्ण तथा गम्भीर भाषण ऐसे लगता है जैसे शिष्यों के सम्मुख गुरु का पाठ पढ़ाना। तीनों ओर की दो-चार बार की तक़रीरों के पश्चात् पादरी साहब ने तो कह ही दिया कि "पण्डित साहब (ऋषि दयानन्द) इन बातों का उत्तर हज़ार प्रकार से दे सकते हैं, और तुम हज़ारों मिलकर भी उनसे बात करो तो निरुत्तर हो जाओगे !"

इस्लाम का मौन—इस घटना के अट्ठाइस वर्ष पश्चात् अर्थात्

१९०८ ई० में 'मेरठ आर्य डिबेटिंग क्लब' की ओर से धार्मिक सभा हुई। इस्लाम की ओर से प्रतिनिधि श्री मौ० सजानी थे। आपने एक कुतबा (खुदी हुई कुछ पंक्तियाँ) पढ़ा, जिसके बीच में कहा—"मज़हब का दर्शन से दूर का भी लगाव नहीं है,...पवित्र इस्लाम ने इन उलझनों से मनुष्य को सदा अलग रखने का प्रयास किया और स्वयं भी अलग रहा। सारा क़ुरआन, हदीस देख डालो, कहीं पर भी प्रकृति का वर्णन नहीं मिलेगा।" प्रश्न आत्मा के सम्बन्ध में किया गया था। यदि उसका उत्तर दिया जाता तो यहीं से इस्लाम की व्यर्थता का आधार स्पष्ट हो जाता। इस्लाम विशेष रूप से न तो प्रकृति की नश्वरता का आग्रह करता है, न इसके अनादि होने पर बल देता है, क्योंकि प्रकृति-सम्बन्धी विवाद क़ुरआन तथा हदीस में कहीं भी नहीं है, इत्यादि। मौलाना अपने मज़हब के विद्वान् थे, अतः कोई उन्हें यह तो नहीं कह सकता था कि वे क़ुरआन के सिद्धान्तों से अनभिज्ञ थे। वस्तुतः क़ुरआनी, नसरानी तथा यहूदी मत इन विषयों पर मौन रहे हैं। परन्तु क्या कोई धर्म सदा के लिए दर्शन से दूर रह सकता है ? दर्शन इनकी दृष्टि में कितना ही व्यर्थ हो, परन्तु धर्म को तो दर्शन की आवश्यकता है। स्वर्ग तथा नरक के काल्पनिक चित्रों से क्या कोई गम्भीर व्यक्ति आत्मिक स्वर्ग की ओर रुचि रख सकता है ? यदि आत्मा की सत्ता ही नहीं मानोगे, तो बहिश्त या दोज़ख (नरक) में पहुँचाओगे किसे ? और यदि सत्ता स्वीकार कर ली तो उसके गुणों की व्याख्या भी करनी पड़ेगी। ईश्वर को केवल 'दयालु' कहने से काम नहीं चलेगा। जब संसार में दुःख है, क्रोध है, विषमता है, परलोक में जीवों के फल-प्राप्ति की विषमता का कारण इहलोक के कर्मों को मानते हो, तो इहलोक में विषमता का कारण क्या है ? ये ऐसे प्रश्न हैं जिन्होंने सृष्टि-उत्पत्ति से लेकर मनुष्य के मस्तिष्क को निरन्तर झंझोड़ा है, और अब भी इन प्रश्नों के समाधान के बिना मार्ग नहीं है।

अहमदीयत—मौलाना जिस बात को मज़हब के लिए व्यर्थ मानते हैं, वही बात हमारे अहमदी सम्प्रदाय के विद्वानों तथा अहमदी समाज को अन्य इस्लामी सम्प्रदायों से अलग करती है। अहमदी महानुभावों के शास्त्रार्थ प्रायः इन्हीं विषयों पर होते हैं, जिनकी व्यर्थता तथा क़ुरआन में इनके अभाव की मौलाना को प्रसन्नता है। अहमदी महानुभाव उस 'व्यर्थ' बात को क़ुरआन में पहले से पाते हैं, अथवा मौ० गुलाम अहमद क़ादियानी के अनुसार क़ुरआन में उसका प्रवेश हो

गया है। इससे पूर्व श्री इमाम ग़ज़ाली ने क़ुरआन पर दार्शनिक रंगत चढ़ाई, परन्तु वह अधूरी तथा ऊपरी ही थी।

श्री कादियानी, पं० लेखराम जी तथा स्वामी दयानन्द जी के समकालीन थे। श्री कादियानी के लेख प्रायः आर्यसमाज के प्रभाव की छाया में लिखे गये। मौ० सजानी के शब्द हैं कि इस्लाम का फलसफ़ा (दर्शन) से कोई सम्बन्ध नहीं; पर श्री कादियानी ने यह सम्बन्ध बना दिया।

अनादि प्रजा—कादियानी महोदय लिखते हैं—"चूंकि खुदा अनादि है, इसलिए हम मानते हैं तथा ईमान लाते हैं कि संसार अपने प्रवाह से सनातन है, परन्तु स्वरूप से अनादि नहीं (भाषण लाहौर, पृष्ठ ३०)।" अभिप्राय यह है कि अनादि स्रष्टा की सृष्टि भी अनादि चाहिए। यदि उसकी सृष्टि अनादि नहीं, तो आरम्भिक सृष्टि से पूर्व ईश्वर के 'स्रष्टा'-गुण पर आक्षेप होता है। श्री कादियानी ने स्वरूप से तो केवल खुदा को अनादि तथा अनन्त मान लिया, परन्तु प्रवाह के रूप में अन्य वस्तुओं का अस्तित्व भी अनादि मान लिया, अर्थात् जब से खुदा है तब से सृष्टियाँ भी बनती रही हैं; परन्तु एक ही सृष्टि अथवा सृष्टि में विद्यमान पदार्थ, जो एक समय में ईश्वर ने उत्पन्न किये, वे अनादि नहीं थे। अपितु, ईश्वर में उत्पन्न करने तथा मार देने की दो विशेषताएँ हैं, दोनों एक के पश्चात् दूसरी क्रम से कार्य करती हैं। कभी केवल अकेला ईश्वर था, उसका कोई अन्य साथी नहीं था; कभी नाना प्रकार की सृष्टि उत्पन्न हो जाती है और फिर एक वह समय आयेगा जब खुदा हर जीव को समाप्त कर देगा (चश्मा-ए मारफ़त पृष्ठ १७७, १७८)।

यहाँ विचारणीय यह है कि यदि संसार प्रवाह से सनातन है, तो क्या प्रवाह से अनादि भी है? परमात्मा की विशेषताओं पर से अप्रयोग का कलंक मिटाने के लिए संसार को प्रवाह से अनादि भी मानना होगा। अतः इन्हीं कादियानी महाशय के शिष्य श्री मुहम्मद इसहाक़ अपने रिसाला (Magazine) 'हदूसे रूह माद्दः' में पृष्ठ ७ पर लिखते हैं—"अनादि काल से खुदा प्रजा को उत्पन्न करता आया है, और अनन्त काल तक उत्पन्न करता रहेगा।"

जीव तथा प्रकृति अनादि हैं—अनादि तथा अनन्त तो ईश्वर के अतिरिक्त जीव तथा प्रकृति भी हो गए। हाँ, इतना अन्तर रहा कि खुदा तो अपने स्वरूप में स्वयं अनादि-काल से अनन्त-काल तक रहेगा, परन्तु

कोई सृष्टि अथवा जीव ऐसा नहीं जो अनादि-काल से अनन्त-काल तक सदा रह जावे। श्री कादियानी तो यहाँ तक भी लिख गए हैं कि "एक समय ऐसा भी होता है जब ईश्वर के अतिरिक्त कोई शेष नहीं रहता; ऐसा भविष्य में भी होगा।" अर्थात् रोज़े-वहदत के समय में ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी की सत्ता न होगी। फिर यह महानुभाव यह भी मानते हैं कि वर्तमान जीवन के कर्मों का फल प्रलय के दिन दिया जायेगा; पापी नरक में फेंके जाएँगे, पवित्रात्माएँ स्वर्ग का आनन्द उठाएँगी। स्वर्ग के आनन्द अनन्त काल तक होंगे; जो जीव एक बार स्वर्ग में प्रवेश पा लेंगे, वहाँ से वे निकाले नहीं जाएँगे। श्री मुहम्मद इसहाक़ साहब अपनी रचना के पृष्ठ ५१ पर लिखते हैं—"जन्नत में जानेवाले जीव अनन्त काल का जीवन प्राप्त करेंगे, परन्तु यह उनका अपना गुण नहीं; ईश्वर जब चाहे उन्हें मार सकता है, परन्तु मारेगा नहीं।" परन्तु 'मार सकता है, किन्तु मारेगा नहीं'—इसकी परख कैसे हो? फिर मौलाना फ़रमाते हैं—"हमने जीवों को अबदी (अनन्त काल तक रहनेवाला) नहीं माना, अपितु ईश्वर को उनको अनन्त काल तक जीवित रखनेवाला माना है। हमारे सदा रहने में हमारी कोई विशेषता नहीं, अपितु अल्लाह के गुणों का प्रकाश हुआ।" विशेषता किसी की हो, जीवों को सदा रहना है, और जो सदा रहे, वह 'अबदी' है अर्थात् जो मनुष्य एक बार उत्पन्न हो गया उसका विनाश कभी नहीं होगा।

अबदी (सदा रहनेवाला) **स्वर्ग**—अब प्रश्न यह है कि केवल ईश्वर का अस्तित्व प्रलय-काल से पूर्व की चर्चा है या प्रलय के पश्चात् की? यदि यह दौर प्रलय से पूर्व हो गया होता तो पूर्व के जीव इस वहदत (अद्वैतता) की बलि चढ़ा दिये जाएँगे, फिर उनके कर्मों का फल कैसे मिलेगा? और यदि ईश्वर का यह शौक़ प्रलय-काल के पश्चात् हो गया और उसने सबको मिटा दिया तो स्वर्ग अनन्त काल तक न रहा; उधर नरक में डाले जीव नरक ही से ईश्वर के अकेले रहने के शौक़ की बलि चढ़ गये!

व्यष्टि तथा सृष्टि—इस सिद्धान्त का अभिप्राय यह है कि जीव नये उत्पन्न हो सकते हैं, परन्तु पैदा हुए जीव को मिटाया नहीं जा सकता (स्वर्ग तथा नरक में सदा रहेंगे)। प्रश्न होता है कि वर्तमान मनुष्यों में से, जिनमें से कुछ जीवित हैं तथा कुछ कब्रों में पड़े हैं, क्या कोई अनादि काल के भी हैं अथवा नहीं? ईश्वर अनादि काल से बनानेवाला है और

जिस जीव को उसने एक बार बना दिया, उसका अभाव तो किया नहीं; तब अनादि काल में बनी प्रजा कहाँ है? उत्तर होगा—कब्रों में। अहमदी महानुभाव कहते हैं कि "व्यक्ति कोई अनादि नहीं, केवल उसका प्रकार अनादि है, क्योंकि हर व्यक्ति से पूर्व कोई और व्यक्ति है।" ख़ूब ! अब प्रश्न होता है कि ईश्वर व्यक्ति को उत्पन्न करता है अथवा उसके प्रकार को? प्रकार बिना व्यक्ति के तो हो नहीं सकता, अतः व्यक्ति को अनादि मानना होगा !

अनादि वास्तविक नहीं—इस बात को एक और प्रकार से देखिये। अहमदी महानुभावों का कथन है कि अनादि ईश्वर के महत्त्व का प्रकाश अनादि काल से हो रहा है। इस महत्त्व के प्रकाश में दो प्रकार की अवस्थाएँ आती हैं—एक कसरत (बहुत्व), दूसरी वहदत (एकत्व) की। आर्य भाई अनादि काल से सृष्टि तथा प्रलय-काल को प्रवाह-क्रम से स्वीकार करते हैं; अहमदी महानुभाव वहदत (एकत्व) काल में ईश्वर के अतिरिक्त शेष संसार के पूर्ण अभाव को मानते हैं; उधर आर्य उस काल में भी जीव तथा प्रकृति का क्रियात्मक रूप में अभाव तो मानते हैं पर वास्तविक रूप में नहीं। क्रियात्मक रूप के अभाव से अभिप्राय है कि प्रलय-काल में प्रकृति तथा जीव की सत्ता तो रहती है, किन्तु क्रिया का अभाव होता है। अहमदी महानुभावों ने यदि अपने सिद्धान्त की वास्तविकता को समझा हो, तो शायद वे भी ईश्वर के अकेला रहने के समय में भी शेष का अभाव वास्तविक नहीं, अपितु क्रियात्मक अभाव मान लें, क्योंकि हर **बहुत्व** काल में (कसरत में) वे बहिश्त तथा बहिश्तियों के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। उनका विश्वास है कि स्वर्ग तथा उसमें रहनेवाले अनादि हैं। यदि यह स्वर्ग तथा स्वर्ग में रहनेवाले ईश्वर के एकत्व-काल में मिटा दिये जायें तो वे अनादि नहीं रहेंगे। श्री मुहम्मद इसहाक़ जी ने इस प्रश्न का यह उत्तर देने का प्रयास किया है कि "एकत्व के दौर (कालावधि) के पश्चात् फिर वही पहलेवाले जीव लाये जायेंगे।" यदि मौलाना 'वही' का अर्थ समझ लें तो यह व्यर्थ का विवाद न करें। 'वही' उसके लिए प्रयुक्त होता है, जिसका अस्तित्व पूर्व-काल में था; अभाव से उत्पन्न होनेवाले को 'वही' नहीं कहते; वह नया है। यदि स्वर्ग में रहनेवाले अपने व्यक्तित्व से 'वही' होते हैं, तो उनका बीच में अभाव नहीं मानना चाहिये। अभाव मान लिया तो नये बहुत्व-काल के बहिश्ती नये होंगे। दूसरे शब्दों में, बहिश्तियों का 'वहदत के

युग में अभाव' का अभिप्राय सर्वथा अभाव नहीं, अपितु क्रिया के अभाव से क्रियात्मक (मजाज़ी) अभाव है, अर्थात् वे कर्म नहीं करते, परन्तु उनका अस्तित्व रहता है। अब यदि यह एकत्व तथा बहुत्व का दौर अनादि काल से है और एकत्व-काल में भी अभाव केवल क्रियात्मक रूप में ही होता है, वास्तविक नहीं, तो केवल शब्दों का अन्तर रहा, नहीं तो यही सिद्धान्त आर्यसमाज का है। अब यदि अल्लाह के साथ रूहों (जीवों) का भी क्रियात्मक अभाव, कादियानी महानुभावों के सम्मुख जँच गया तो जैसे परमात्मा की सर्जन-शक्ति का क्रम निश्चित किया है, इसी प्रकार जीवों के जन्म तथा मृत्यु का क्रम (आवागमन) भी मानना पड़ेगा। आख़िर अनादि जीवों का प्रलय-काल तक क़ब्र में पड़े रहना, ईश्वर की प्रजा को बेकार करना ही तो है। अस्तु, यह इस दार्शनिक दृष्टिकोण के तर्कानुकूल परिणाम है जिसके बिना कोई मज़हब बच नहीं सकता और जिसे मुसलमान मित्र अपने मज़हब की स्थिरता के लिए स्वीकार करने लगे हैं। इब्तिदाए-इश्क है…।

एक हास्यास्पद प्रार्थना—बिना कारण के सृष्टि का होना एक कल्पना-मात्र है, जिसपर दर्शन हँसता है। इस कल्पना का परिणाम ही तो है जो मौ० मुहम्मद इसहाक़ पूछते हैं—"क्या ईश्वर मुझे शुभ कर्मों के बिना स्वर्ग में नहीं भेज सकता ?" यह प्रार्थना वीरों की प्रार्थना नहीं, और इससे प्रतीत होता है कि प्रार्थी को शुभ कर्मों की उतनी चिन्ता नहीं, जितनी स्वर्ग की है। चाहिए इसके उलट। यदि बहिश्त में बिना शुभ कर्मों के जा ही सकते हैं, तो मुसलमान होने का क्या लाभ तथा शुभ कर्मों की क्या आवश्यकता ? इससे पूर्व श्री मौलाना ने अल्लाह-तआला से सम्बोधित होकर कहा है—"मरियम को बिना पति के पुत्र देनेवाले !" क्या आपको ज्ञान है कि मौ० मुहम्मद अली, जो आपके अहमदी भाई हैं और जिनके रिसाला 'हद्दूसे रूह माद्दः' की आपने प्रशंसा की है, यद्यपि उनका सम्बन्ध कादियानी समाज से नहीं, लाहौरी ग्रुप से है, उन्होंने अपनी क़ुरआन की व्याख्या में इस घटना की सत्यता से इन्कार किया है। आख़िरकार वह सन्तानवाले हैं, अतः सूरत उमरान की आयत ४६ की व्याख्या में लिखते हैं—"इन शब्दों से यह प्रकट नहीं होता कि इस (मरियम) को संसार में प्रचलित नियम के विपरीत गर्भ हुआ होगा, क्योंकि मरियम के और भी पुत्र थे, और कोई यह अनुमान नहीं करता कि ये सृष्टि-नियम के विरुद्ध हुए।"

मौ० मुहम्मद इसहाक़ के उपर्युक्त सम्बोधन का एक अन्य आवश्यक परिणाम एक अन्य प्रार्थना हो सकती है जो यदि पत्नियाँ पढ़ें तो पतियों से किनारा कर लें, और पति पढ़ें तो स्वयं पत्नियाँ बनें, नहीं तो सन्तान-वाले न हों। यही अवस्था आपकी अन्य प्रार्थनाओं की है। कृपया एक प्रार्थना यह भी कर दीजिये कि ईश्वर इसे स्वीकार न करे, क्योंकि स्वीकार हो जाने की अवस्था में सदाचार का दिवाला पिट जावेगा और गृहस्थ शोभाहीन हो जावेगा।

आत्मा का स्वरूप—वात यह है कि सर्वप्रथम हमारे मुसलमान मित्रों को आत्मा के स्वरूप का ज्ञान होना चाहिए। यही महाशय (श्री मुहम्मद इसहाक़) अपने मैगज़ीन के पृष्ठ ८३ पर लिखते हैं—"उसी माद्दः (प्रकृति) के ख़मीर से एक सूक्ष्म चेतन सत्ता इस प्रकार प्रकट हुई जैसे चकमक (पत्थर) से अग्नि तथा रगड़ (घर्षण) से बिजली निकलती है, और यह आत्मा थी।"

इन महाशय को इतना भी तो ज्ञान नहीं कि चकमक से निकलने-वाली आग और रगड़ से निकलनेवाली बिजली वैज्ञानिक परिभाषा में शक्तियाँ हैं, वस्तु नहीं। शक्तियाँ सदा पदार्थों के आश्रित रहती हैं; ये गुण हैं, पदार्थ नहीं। यदि आत्मा भी एक गुण है (पदार्थ नहीं) तो इसका सदा स्वर्ग में रहना, तथा दुःख-सुख की अनुभूति, दार्शनिक दृष्टिकोण का उपहास-मात्र है, मज़हब के साथ भी मख़ौल है। आत्मा यदि प्रकृति की शक्ति है तो इसका अस्तित्व प्रकृति के बिना असम्भव है। तब तो प्रकृति का भी अपनी सत्ता में अनादि तथा अनन्त होना सिद्ध हो गया, कम-से-कम प्रकृति के उतने भाग का, जितने के सहारे पर अनादि आत्माएँ स्थित हैं।

आत्मा को केवल गुण नहीं, अपितु अलग सत्ता मानना अध्यात्म-विद्या का प्रारम्भ है। जितनी-जितनी मुसलमान मित्रों की दर्शन में रुचि बढ़ती जाएगी, उतना ही आत्मा का स्वरूप उनकी समझ में आ जायेगा।

कादियानी सम्प्रदाय के आधुनिक खलीफ़ा श्री बशीरुद्दीन ने अक्टूबर १९२४ में लन्दन के सर्वधर्म-सम्मेलन में कहा था—"(आत्मा) बाद मृत्यु के यह शरीर बन जावेगा और इसमें एक और आत्मा बाँटी जावेगी (प्रदान की जावेगी)।" आत्मा के सम्बन्ध में अज्ञान की इससे बढ़कर मिसाल (उदाहरण) मिलना कठिन है। गुरु आख़िर गुरु ठहरे! चेला आत्मा को कहीं अलग सत्ता में, कहीं प्रकृति की शक्ति के रूप में

मानता है और गुरु आत्मा से दूसरी आत्मा की उत्पत्ति का अनुमान कर रहा है ! क्यों श्रीमान् जी, यह भी शक्ति होगी, या कुछ और ? और इस गुण का गुणी क्या होगा ?

बहाई सम्प्रदाय द्वैत क्यों स्वीकार करता है—अहमदी महानुभावों की अपेक्षा बहाई सम्प्रदाय कुछ अधिक शक्ति-सम्पन्न होकर अधिक वीरता तथा स्पष्टता से काम ले पाया है। वे क़ुरआन को स्वीकार ही नहीं करते; यहाँ तक कि अपनी अलग पवित्र पुस्तकें भी लिख डाली हैं। श्री अब्दुलबहा, जो श्री बहाउल्ला के सुपुत्र तथा इस सम्प्रदाय के मुखिया हैं, कहते हैं—

"निश्चय रखो, यह एक अत्यन्त सूक्ष्म आध्यात्मिक सत्य है कि इस अनश्वर संसार का कोई आरम्भ नहीं···निश्चय मानो कि स्रष्टा का अस्तित्व, सृष्टि के बिना असम्भव है। पालनकर्ता की कल्पना, पाले जानेवाले के अस्तित्व के बिना नहीं हो सकती। ईश्वर के सब नाम तथा गुण संसार के अस्तित्व की माँग करते हैं। यदि हम किसी ऐसे समय की कल्पना करें, जब यह विश्व नहीं था, तो यह कर्ता की कृति से इन्कार होगा। इसके अतिरिक्त सर्वथा अभाव से भाव की सत्ता नहीं हो सकती। यदि विश्व का कुछ भी अस्तित्व नहीं होता, तो स्वयं अस्तित्व का भी अस्तित्व न होता। हाँ, यह सम्भव है कि विश्व का कोई एक भाग न हो, या नष्ट हो जाये, परन्तु शेष भाग रह जाए।"

(चन्द सवालात का जवाब, पृ० २०९)

संक्षेप में कहें तो यह कि सामी सम्प्रदाय जितना-जितना दर्शन-शास्त्र की ओर बढ़ते हैं, परमात्मा की सत्ता के अतिरिक्त, जीव तथा प्रकृति के अनादित्व को भी स्वीकार करते जाते हैं। यह सामी सम्प्रदायों के अपने आरम्भिक आर्य-धर्म के समीप आने का परिणाम है। हमें उनका यह क्रमिक विकास देखकर प्रसन्नता होती है, और सत्य तो यह है कि दर्शन ही किसी मत का आधार होता है, इससे विश्वास सुदृढ़ होता है, इन्द्रियों के विषयों से ऊँचा उठने की योग्यता आती है, और मज़हब लूटमार, नोच-खसोट, हत्या-बलात्कार (जो सामी सम्प्र-दायों के इतिहास की प्रमुख विशेषता है) के स्थान पर आत्मिक शान्ति का साधन बनता है। आर्य-धर्म की यह विशेषता है कि इसके कारण हत्याएँ तथा लूट-खसूट नहीं हुईं, अनुशासित रूप से हत्याओं का प्रचलन नहीं हुआ, न यह धर्म डाके तथा लूट-मार का कारण बना है। इसका

मूल कारण आर्य-धर्म का दार्शनिक एवं स्वस्थ दृष्टिकोण है। सामी सम्प्रदाय भी जितना-जितना अपना आधार दर्शन को बनाएँगे, उतने ही पवित्र तथा आत्मिक धन से धनी होंगे। परमात्मा वह दिन शीघ्र लाये, जब ये शब्दाडम्बर के भेद समाप्त हो जाएँ और मनुष्य दूसरे मनुष्यों से मिल सकें; सब लोग उसी धर्म का आश्रय लें, जो ईश्वर ने सब मनुष्यों के लिए बराबर तथा एक बार प्रकाशित किया है।

मौ० मुहम्मद इसहाक़ की पुस्तक में यह विशेषता है कि उन्होंने जीव तथा प्रकृति के सादि सिद्ध करने में जो भी सामग्री श्री गुलाम अहमद क़ादियानी, मौ० नूरउलदीन, मौ० आज़ाद सुबहानी, पादरी गुलाम मसीह इत्यादि के लेखों से प्राप्त हुई, अपनी पुस्तक में इकट्ठी कर दी है। उनकी पुस्तक पर विचार करने से ऊपर लिखे सभी महानुभावों के लेखों पर विचार हो जावेगा।

पुस्तक की सभ्यता—यदि मौलाना अपनी इस प्रतिज्ञा में सफल हो जाते कि वे कठोर शब्दों से काम नहीं लेंगे, तो हम उन्हें बधाई देते। एक स्थान पर किसी काल्पनिक आर्यसमाजी से विवाद करते हुए लिखते हैं—"एक गधा भी जानता है कि…" (पृष्ठ २३)। न्याय मौलवी साहब पर रहा, क्या यह सभ्य भाषा है? जाननेवाले (विद्वान्) गधों से आर्यसमाजियों को तो वास्ता पड़ा ही नहीं। एक और स्थान पर आर्यों को अर्बी भाषा में 'अनभिज्ञ' लिखते हैं (पृष्ठ २४)। आर्यों को 'नासमझ', आर्य शास्त्रार्थ-महारथियों को विवादी लिखने में तो उन्हें कोई संकोच ही नहीं। पृष्ठ १६८ पर लिखा है—'विश्वासहीन' ऋषि दयानन्द पर कृपा इस प्रकार की है—"विचित्र मंतक (तर्क) बघारते हैं!" भाषाविद् ही इस उक्ति की भावना जान सकते हैं। पृष्ठ ११६ पर लिखा—"वह मंतक (तर्क) जो ऋषि नं० १०८ ने प्रयोग की।" पृष्ठ ११५ पर ऋषि के सम्बन्ध में लिखा—"ताश न खेले, जीव-प्रकृति के अनादित्व पर शास्त्रार्थ कर लिया!" पृष्ठ ८१ पर लिखा है—"आख़िर स्वामी साहब भी तो भंग पीते, नाचते, माता-पिता को धोखा देते तथा मूर्ति-पूजा करते थे।" इस प्रकार कहीं पं० लेखराम के बलिदान का उपहास उड़ाया है, तो कहीं अपने अहं में 'गाज़ी' की शान दिखाई है। और तो और, परमात्मा की उपमा डाकू से दी है और कहा है—"तुम्हारे ईश्वर तथा उस हत्या के अपराधी में अन्तर क्या है?" पृष्ठ ६३ पर लिखते हैं—"तुम्हारा ईश्वर तो हमारे अल्लाह की प्रजा के समान भी नहीं।" यह वह शैली है जिस

पर पूर्ण नम्रता से लिखने का विश्वास दिलाया है—"मैंने यथाशक्ति किसी व्यक्ति के विरुद्ध किसी असभ्य शब्द या असभ्य भाषा का प्रयोग नहीं किया।" (पृष्ठ ६)

मौलाना के मुसलमान भाई निर्णय दें कि वह प्रतिज्ञा मौलाना की पूरी हुई कि नहीं ? आख़िर इन बातों से जीव तथा प्रकृति की उत्पत्ति तो सिद्ध हो नहीं जाएगी। व्यर्थ में आर्यों को जोश दिलाकर अपने रुदन करते मन को थोड़ी देर के कौतुक से शान्त करते हैं। अस्तु, जो हृदय में होगा, वाणी पर भी वही आएगा। हमारा क्या है, अपमानित तो इस्लाम ही होगा !

मौलाना की पुस्तक का क्रम—मौलाना की पुस्तक के चार अध्याय हैं। प्रथम अध्याय जो २५ पृष्ठ का है, इसमें आर्यों की ओर से जीव तथा प्रकृति के अनादित्व-सम्बन्धी चार तर्कों के उत्तर देने का प्रयास किया गया है। दूसरा अध्याय, जो सबसे बड़ा है और जिसके २०८ पृष्ठ हैं, इसमें जीव तथा प्रकृति की नश्वरता पर तेंतीस तर्क दिये गए हैं। तीसरा अध्याय ४१ पृष्ठों का है, इसमें जीव तथा प्रकृति की नश्वरता पर किये गए आर्यों के १५ प्रश्नों का उत्तर है और चौथा अध्याय २ पृष्ठों का है जिसमें मिर्ज़ा गुलाम अहमद की पुस्तकों से ५ उद्धरण दिये गए हैं।

पुस्तक में पुनरुक्ति-दोष बहुत हैं। वस्तुतः प्रथम तथा तृतीय अध्याय में विषय के दृष्टिकोण से कोई भेद नहीं। प्रथम अध्याय में भी आर्यों की ओर से किये गए कुछ प्रश्नों का उत्तर है। उनमें से ही कुछेक तो शब्दों के परिवर्तन के साथ तीसरे अध्याय में भी आ गये हैं। दूसरे अध्याय में पृष्ठ ६६ से १३६ तक कोई नया तर्क नहीं दिया गया, अपितु तीसरे तर्क में ही मोक्ष तथा स्वर्ग की सम्बन्ध-रहित चर्चा चला दी गई है जो ७० पृष्ठों को ले बैठी है। कोई पूछे, इस तुलना का जीव तथा प्रकृति के विवाद से क्या सम्बन्ध ? अपवाद-रूप में इन्हें लाना भी था तो दो-एक पृष्ठों में समाप्त कर देते। उन तैंतीस तर्कों में से जो इस अध्याय में दिये गए हैं, तर्क-संख्या १५, १६, १८, १६, २२, २५, २७, २६, ३०, ३१ में आर्ष-ग्रन्थों का प्रमाण दिया गया है जिनसे जीव-प्रकृति की नश्वरता सिद्ध करने का प्रयास किया है। इन तर्कों का इस्लामी तर्कों में सम्मिलित करना, और वह भी क्रमानुसार नहीं, अपितु अन्य तर्कों के साथ बीच-बीच में स्थान छोड़कर, श्री मौलाना की क्रमांक-शक्ति की नवीनता का द्योतक है; वैसे तर्कों में भी स्थान-स्थान पर पुनरुक्ति पाई

18.4
86:2
182967

जाती है।

हमारा उत्तर—हमने आरम्भ में जीव तथा प्रकृति के दार्शनिक स्वरूप पर संक्षेप में प्रकाश डाला है, ताकि पाठक सर्वप्रथम इनके स्वरूप से परिचित हो। इसके पश्चात् प्रथम अध्याय में श्री मौलाना के दूसरे अध्याय का उत्तर दिया है। आर्ष ग्रन्थों के प्रमाणों को अलग कर दिया है और इन प्रमाणों की व्याख्या एक अलग अध्याय में की है। दूसरे अध्याय में मौलाना की पुस्तक के प्रथम तथा तीसरे अध्याय की आलोचना की है। जैसा हम ऊपर लिख आये हैं, ये दोनों अध्याय विषय की दृष्टि से एक हैं। तीसरा अध्याय हमने उन प्रमाणों के अर्पित किया है जो मौलाना ने हमारे पवित्र ग्रन्थों से दिये और उनके ठीक अर्थ न समझकर क्रम का ध्यान किये विना जीव तथा प्रकृति की नश्वरता में सम्मिलित कर दिये। चौथे अध्याय में क़ुरआन की उन आयतों पर दृष्टिपात किया है, जो मौलाना ने कहीं-कहीं अपने पक्ष की सिद्धि में लिखी हैं। उन आयतों में कुछ अन्य आयतें भी हमने जोड़ दी हैं और सिद्ध किया है कि क़ुर्आन का वास्तविक सिद्धान्त इस विषय में वही है जिसका प्रचार आर्यसमाज कर रहा है। पाँचवें अध्याय में वेद के कुछ मन्त्र दिये हैं, जिनमें जीव तथा प्रकृति की नित्यता का स्पष्ट तथा तर्कपूर्ण वर्णन है। इस प्रकार हमने मौलाना की पुस्तक के क्रम को इतना-सा परिवर्तित किया है, जो उत्तर दिये जाने के लिए सम्भव था। इससे अधिक परिवर्तन करने पर उत्तर, उत्तर न रहता। जीव तथा प्रकृति के नित्यत्व में हमारे तर्क इन उत्तरों से निकाले जा सकते हैं। इन तर्कों का अलग देना पिष्टपेषण ही होता।

पहले तो हमने सोचा था कि पुस्तक के एक भाग में जीव तथा प्रकृति के नित्यत्व से सम्बन्धित बड़े-बड़े दार्शनिकों की सम्मतियाँ प्रस्तुत करें, और अपने सिद्धान्त के साथ उनकी तुलना करके अनुकूल अथवा प्रतिकूल तार्किक पक्ष उपस्थित करें, परन्तु मौलाना की पुस्तक का उत्तर ही इतना अधिक लम्बा हो गया कि संसार के दार्शनिकों के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करना असम्भव-सा हो गया। शायद इस उत्तर के साथ यह सब सम्मिलित करना उपयुक्त भी न होता, क्योंकि उसकी शैली जुदा है और इसका रूप अलग। अभी तो इतना ही पर्याप्त है, फिर कभी अवसर मिला तो अपने पहले विचार को भी क्रियात्मक रूप देकर पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया जावेगा।

अन्त में निवेदन है कि इस पुस्तक का विषय दार्शनिक है, अतः पुस्तक का अध्ययन किसी मत-विशेष के पक्षपात की दृष्टि से नहीं, केवल और केवल दार्शनिक दृष्टिकोण से करना चाहिए। संयोग की बात है, कि वास्तविक इस्लाम तथा वैदिक धर्म, दोनों की शिक्षा यही है। किसी सच्चे मुसलमान को क़ुरआन की शिक्षा की अपेक्षा उसकी अशुद्ध व्याख्याएँ अधिक प्रिय नहीं होनी चाहियें।

मौलाना ने पुस्तक के अन्तिम पृष्ठ पर पाँच सौ रुपये पारितोषिक देने की प्रतिज्ञा की है—किसको?—"यदि कोई सज्जन इस किताब का उत्तर उसी क्रम से लिखें तथा छपवा दें। छपने के पश्चात् किसी ईसाई अथवा ब्राह्मसमाजी विद्वान् (जिसे दोनों पक्ष मध्यस्थ स्वीकार करें) के सम्मुख दोनों पुस्तकें रक्खी जाएँ, और वह अध्ययन के पश्चात् यह निर्णय दे कि आर्य लेखक की पुस्तक मेरी इस पुस्तक का पूर्ण तथा उपयुक्त उत्तर है तो मैं बिना संकोच के पाँच सौ रुपये आर्य-लेखक महोदय को भेंट कर दूँगा। हाँ, ऐसी पुस्तक १९२६ ई० के अन्दर-अन्दर छपे और मैं भी जीवित होऊँ।" रुपयों के इनाम का विज्ञापन तो मिरज़ाई परम्परा है। मिर्जा गुलाम अहमद ने भी अपनी कुछ पुस्तकों पर इनाम की बाज़ी लगाई थी और ऋषि दयानन्द जी की मृत्यु के पश्चात् घोषणा की थी कि इनाम के विज्ञापन का सम्बोधन ऋषि से था, यद्यपि आपने विज्ञापन में महर्षि का नाम नहीं दिया था। अस्तु, हमारे हाँ तो रुपयों की नहीं, दिल की बाज़ी लगाने की परम्परा है, और निर्णय के लिए वादी के पक्ष माननेवाले किसी दूसरे मतावलम्बी को मध्य में नहीं लाते, अपितु जिससे बात हो रही होती है उसी को निर्णायक स्वीकार करते हैं, जो सज्जन हृदय से स्वीकार करें, सत्य को ग्रहण करें और रुपया सत्य के प्रचार में लगा दें। मौलाना पर रुपये का बोझ नहीं पड़ेगा, क्योंकि यहाँ तो १९२६ ई० के अन्दर-अन्दर उत्तर देने की शर्त भी पूरी नहीं की गई और फिर क्रम भी हमने बदल दिया है।

परमात्मा सबको सत्य के ग्रहण करने की प्रेरणा तथा सत्य कहने की शक्ति प्रदान करें—'असतो मा, सद् गमय!'

—**चमूपति**

अनादि तत्त्व

इससे पूर्व कि हम जीव तथा प्रकृति की नश्वरता अथवा नित्यता का विवाद आरम्भ करें, अत्यावश्यक है कि हम इनके स्वरूप को समझ लें। आर्य दर्शन में जीव 'चेतन सत्ता' का नाम है। संस्कृत में इसे सत्-चित् कहते हैं। सत् का अर्थ है 'सदा रहनेवाली सत्ता' तथा चित् का अर्थ है 'चेतना-युक्त'। दर्शन में मूल पदार्थ उसे कहते हैं (जौहर—मूल सत्ता) जिसका अस्तित्व किसी दूसरी सत्ता पर आधारित न हो, अपितु वह अपने स्वरूप से अलग सत्ता हो। इसके विपरीत गुण अथवा विशेषण अपने स्वरूप में अस्तित्व नहीं रखते, अपितु उनका अस्तित्व किसी दूसरी सत्ता के आधार पर होता है। सब विशेषण, शक्तियाँ, कर्म, रूप इत्यादि गुण हैं जो विभिन्न सत्ताओं के आधार पर स्थित होते हैं; जैसे जड़ता अथवा चेतनता, दो गुण हैं; ये दोनों जड़ अथवा चेतन सत्ताओं के बिना नहीं रह सकते। इसे अधिक स्पष्ट कहें तो हम कह सकते हैं कि देखना, सूंघना, स्पर्श करना, सुनना, चखना, ये सब गुण हैं। संसार में इन गुणों का अस्तित्व एक देखनेवाले, सूंघनेवाले, छूनेवाले, चखनेवाले, सुननेवाले व्यक्ति की अपेक्षा रखता है। सज्जनता एक गुण है, जो सज्जन व्यक्ति के बिना अस्तित्व में नहीं आ सकती। संसार में सर्वत्र चेतना विद्यमान है; सब चेतन सत्ताओं में हम इसे पाते हैं। जड़ता भी संसार में है जो सब जड़ वस्तुओं में देखी जाती है। जड़ता तथा चेतनता, गुण होने के कारण, किसी दूसरी सत्ता के बिना अपने-आप नहीं रह सकते। इन्हें कोई आधार चाहिए; हमारे दर्शन में चेतनता का आधार जीव है तथा जड़ता का आधार प्रकृति।

वर्तमान विज्ञान का प्रकृति (Matter) से दिन-रात काम होता है, तथापि विज्ञान प्रकृति में चेतना का गुण नहीं पा सका। चेतना अपना जुदा आधार रखती है। हमारा शरीर स्पष्ट ही जड़ है; इसका निर्माण प्रकृति के तत्त्वों से हुआ है। अपने शरीर के किसी भाग को शेष शरीर से अलग कर दीजिये, जैसे एक अँगुली को काटकर फेंक दीजिये, वह

जड़ होकर रह जाएगी; पीड़ा की अनुभूति उस अँगुली को नहीं होगी, शेष शरीर को होगी, क्योंकि शेष शरीर में जीवात्मा विद्यमान है। मृत्यु होने पर आत्मा इस शरीर को छोड़ जाती है, अतः मृत्यु के पश्चात् सारा शरीर जड़ हो जाता है। काटी हुई अँगुली तथा मरे हुए शरीर से चेतन आत्मा और उसके साथ चेतनता का गुण निकल जाता है। वही चेतना सत्ता जीव है और जड़ शरीर प्रकृति।

हमने ऊपर मौ० मुहम्मद इसहाक़ के लेख को उद्धृत करके निवेदन किया है कि मौलाना आत्मा के स्वरूप से परिचित नहीं; आपने आत्मा के सम्बन्ध में कहा कि "उसी माद्दः (प्रकृति) के खमीर से एक सूक्ष्म चेतना इस प्रकार प्रकट हुई जिस प्रकार चकमक से अग्नि और रगड़ने से बिजली निकलती है, और यह आत्मा थी।" दूसरे शब्दों में आत्मा, माद्दः का (प्रकृति का) गुण हुई, क्योंकि प्रकाश तथा बिजली, जिनके उदाहरण आपने अभी दिये हैं, वह चकमक तथा रगड़ खानेवाली वस्तुओं का गुण है। इस अवस्था में प्रकृति तो अपने स्वरूप में सत् सिद्ध हो जाएगी और आत्मा उसके आधार पर स्थित। फिर तो जैसा हमने कहा है, आपकी अनन्त काल की जन्नत की प्रतीक्षक आत्मा नहीं, अपितु प्रकृति होगी, जिसका यह आत्मा एक गुण है, क्योंकि गुण बिना गुणी के रह नहीं सकता। आप अपने Magazine के पृष्ठ ३७ पर लिखते हैं—"खुदा (ईश्वर) को हम (सब-कुछ) सुननेवाला, देखनेवाला, ज्ञानी तथा अनन्त मानते हैं और मनुष्य को भी सुननेवाला, जाननेवाला और अनन्त मानते हैं।" मनुष्य से आपका अभिप्राय मनुष्य की आत्मा से है अथवा आत्मा-सहित शरीर से? अन्तिम दृष्टिकोण आपको अधिक सुविधाजनक होगा, क्योंकि आत्मा तो आपकी दृष्टि में गुण है और शरीर (प्रकृति) गुणी; इस अवस्था में शरीर अर्थात् प्रकृति अनन्त हो गई। अब विचारणीय यह है कि क्या आप आत्मा तथा प्रकृति को स्वतंत्र सत्ताएँ स्वीकार करते हैं अथवा दूसरी सत्ता पर आधारित? आप पृष्ठ ३२ पर लिखते हैं—"मनुष्य के होने से अभिप्राय यह है कि वह स्वयं अपना अस्तित्व नहीं रखता; उसको अस्तित्व तो ईश्वर ने दिया है।" 'अस्तित्व दिया है' कहिये, अथवा कुछ और, जिसका अस्तित्व अपना नहीं, वह उधार का है, वह अपने-आपमें स्वतन्त्र सत्ता न हुई, दूसरे के आधार पर आधारित सत्ता है।

जीव तथा प्रकृति को इस प्रकार दूसरे पर आधारित (खुदा पर

आधारित) सत्ताएँ मानने का एक प्रकार यह है कि आप परमात्मा को गुणी तथा जीव एवं प्रकृति को उसका गुण मान लें, क्योंकि स्वतन्त्र, अपने आधार पर स्थित सत्ता आपकी दृष्टि में केवल ईश्वर है। जीव एवं प्रकृति का अस्तित्व उसके कारण से है, और जिसके कारण से हो, वह उसका गुणी होता है, आधारित तो गुण ही होता है। इस अवस्था में प्रश्न होगा कि क्या मनुष्य अर्थात् जीव और प्रकृति परमात्मा के गुण हैं ? या कर्म, या शक्तियाँ, या रूप ? गुण होने की अवस्था में मनुष्य का परमेश्वर से वही सम्बन्ध होगा जो गुण का गुणी से होता है, या शक्ति का शक्तिशाली से या कर्म का कर्ता से, या रूप का रूपवान् से। अब मनुष्य पूर्णतया सीमित तथा त्रुटिपूर्ण है तो क्या यह सीमित (त्रुटिपूर्ण) मनुष्य पूर्ण, पवित्र तथा असीम ईश्वर का गुण है अथवा शक्ति, कर्म या रूप है ? विचार कीजिए !

यदि यह दार्शनिक परिणाम स्वीकार नहीं है तो हमारे समान चेतना को गुण तथा चेतन अर्थात् जीव को गुणी मानिये और जड़ता को गुण तथा जड़ प्रकृति को गुणी। गुणी की स्वतन्त्र सत्ता है, अतः जीव तथा प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ताएँ हैं। जो स्वतन्त्र सत्ताएँ हैं, वे अपने स्वरूप से अनादि भी हैं और अनन्त भी, क्योंकि वे अपने अस्तित्व के लिए किसी दूसरी सत्ता पर आधारित नहीं; उसके रूप परिवर्तित हो सकते हैं और इससे रूपवान् भी रूप से बोलेगा, परन्तु अपने अस्तित्व से वह सदा रहेगा।

प्रथम अध्याय

'हद्दूसे रूह माद्दः' पुस्तक के दूसरे अध्याय के तर्कों का उत्तर

सर्वशक्तिमान् का अर्थ

पहले तर्क का उत्तर—

जीव-प्रकृति की उत्पत्ति (नश्वरता) का प्रथम तर्क आपने ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता के सिद्धान्त से जोड़ा है। सर्वशक्तिमान् का जो अर्थ जन-साधारण के मन-मस्तिष्क में है, उसपर 'सत्यार्थप्रकाश' में आक्षेप किये गए हैं, जैसे—क्या ईश्वर दूसरा ईश्वर बना सकता है? अपने-आप मर सकता है? अज्ञानी, रोगी अथवा मूर्ख भी हो सकता है? मौलाना ने इन प्रश्नों का वही उत्तर दिया है जो हर आर्य को स्वीकार होगा; कहा है—"हम मुसलमान ईश्वर को केवल सर्वशक्तिमान् ही नहीं समझते, अपितु उसके किसी भी गुण की सीमा नहीं मानते। उसकी असीम सत्ता के समान उसके गुण भी असीम मानते हैं, परन्तु एक सिद्धान्त तथा नियम के अनुसार। वह यह कि उसका कोई गुण उसके किसी दूसरे गुण को समाप्त नहीं करता, और कहीं पर भी उसका कोई गुण उसके किसी दूसरे गुण को असत्य सिद्ध नहीं करता। (पृष्ठ ३०) ऋषि दयानन्द के 'सत्यार्थप्रकाश' में ये शब्द हैं—"क्या ईश्वर अपने-आपको मार सकता है...और दुःखी भी हो सकता है? यह कार्य ईश्वर के गुण, कर्म तथा स्वभाव के विपरीत है तो तुम्हारा कथन कि वह सब-कुछ कर सकता है, अशुद्ध है।" (पृष्ठ २३४)

भला मौलवी साहब के ऊपर लिखे शब्द 'सत्यार्थप्रकाश' के शब्दों का अनुवाद नहीं तो क्या है? उत्तर इतना है कि मौलवी साहब ने परमेश्वर के गुणों को सीमायुक्त भी बताया है, और फिर उन्हें असीम भी कहते हैं। भला जिस समय ईश्वर जिस वस्तु की रचना करता है, क्या उस समय उसका विनाश भी कर सकता है? यदि नहीं तो रचना-शक्ति को संहार की शक्ति ने, और संहार-शक्ति को रचना-शक्ति ने,

समय तथा काल में सीमित तो कर ही लिया। असीम का अर्थ तो है, जिस गुण का प्रकाश हर समय, हर स्थान तथा हर अवस्था में हो सके; ऐसी विशेषता (गुण) असीम है। जिस वस्तु का जहाँ विनाश होता है, यदि उस क्षण उसका जीवन सम्भव नहीं, तो जीवन देने के गुण का अस्तित्व उस समय न रहा। अस्तु, हमें शब्दों पर उतना आग्रह नहीं, जितना उनके अर्थों पर है। जब तक ऋषि दयानन्द से पूर्व इस्लाम में सर्वशक्तिमान् के उपर्युक्त अर्थ न दिखाए जाएँ, तव तक मानना पड़ेगा कि यह सब ऋषि दयानन्द की आलोचना का परिणाम है। विवादास्पद विषय तो केवल इतना है कि क्या ईश्वर अपनी सर्वशक्तिमत्ता से कारण के विना कार्य की उत्पत्ति कर सकता है? मौलवी साहव पूछते हैं कि वताओ तो सही, अभाव से भाव की उत्पत्ति करना ईश्वर के क़ौन-से गुण के विरुद्ध है?

श्रीमान् जी, यह रचयिता के गुण के विरुद्ध है जिसे आप ईश्वर के अस्तित्व के साथ अनादि मानते हैं (पृष्ठ ३१) और जिस गुण के व्यक्त करने पर आप समय का कोई वन्धन स्वीकार नहीं करते, और मानते हैं कि ईश्वर अनादि काल से रचना करता आया है। अनादि रचयिता की रचना भी अनादि काल से हो, चाहे उसकी संख्या केवल एक हो। अनादि रचना के लिए अनादि रचयिता चाहिए। अनादि सृष्टि (रचना) से अभिप्राय वह सृष्टि है जिससे पूर्व समय का अभाव था। यदि सृष्टि को अभाव से भाव में लाना माना जावे तो उसके अभाव का काल उसके अस्तित्व से पूर्व आयेगा और वह अनादि नहीं होगा। यदि कोई सृष्टि अनादि नहीं, तो सर्जन-शक्ति भी अनादि नहीं; अत: ईश्वर की रचना के गुण व सृष्टि के अस्तित्व से पूर्व अभाव मानना पड़ेगा।

इस प्रकार यदि आपने कुछ अथवा एक रचना को भी अनादि मान लिया और ईश्वर के अतिरिक्त दूसरी अनादि सत्ता का सिद्धान्त मान लिया गया, तो फिर यह सिद्ध करना आपका दायित्व होगा कि यदि प्रकृति का एक भाग अनादि है तो शेष प्रकृति अनादि क्यों नहीं? अथवा, यदि एक जीव अनादि है तो शेष क्यों नहीं? अथवा, सुविधानुसार प्रकृति तथा जीव के दो प्रकार मानेंगे तो उनमें से एक अनादि तथा दूसरा सादि होगा।

सम्भवत: मौलाना उत्तर देंगे कि हम तो जाति को अनादि मानते हैं, व्यक्ति को नहीं। प्रश्न होता है कि परमात्मा अनादि काल से जाति

की रचना करता आया है या व्यक्ति की ? और क्या बिना व्यक्ति के जाति पैदा की जा सकती है ? क्या यह उपहास नहीं कि ईश्वर मनुष्यों की जाति तो बना दें और व्यक्ति (मनुष्य) एक भी उत्पन्न न करे ? उत्पन्न तो व्यक्ति को करेगा, उनका सामूहिक रूप ही जाति में माना जावेगा। वह अनादि काल से रचना करता है, अतः अनादि मनुष्यों का होना अनिवार्य है, यही बात आप प्रश्नोत्तर में समझ लें—

आर्य—परमात्मा अनादि काल से किसकी रचना करता है ?

मौलाना साहब—जाति की (नौ की)।

आर्य—क्या उस जाति में व्यक्ति भी होते हैं ?

मौ० सा०—जाति तो व्यक्तियों की सामूहिक कल्पना का नाम है, व्यक्ति न हों तो जाति कैसे बने ?

आर्य—बस यही ध्यान रहे, अनादि रचना चाहे जाति की हो, परन्तु जाति में व्यक्ति होंगे।

मौ० सा०—हाँ, व्यक्तियों की उत्पत्ति तो होती है, परन्तु वे मर जाते हैं।

आर्य—आपका अभिप्राय यही है न कि अनादि काल से व्यक्ति उत्पन्न किये जा रहे हैं, परन्तु वे मरते जाते हैं ?

मौ० सा०—हाँ !

आर्य—परन्तु आप तो अहमदी सम्प्रदाय को मानते हैं और हर व्यक्ति को अनादि मानते हैं ?

मौ० सा०—हाँ, यह तो हमारा सिद्धान्त है।

आर्य—तब अनादि व्यक्तियों का क्या पाप है कि वे अनन्त काल तक न रहें ? जो उत्पन्न हुआ है वह तो रहेगा ही। उत्पन्न होते हैं व्यक्ति, अतः अनादि काल से व्यक्ति उत्पन्न होते आये और वे रहे भी, अतः आप अनादि व्यक्तियों का अस्तित्व अब तक भी कैसे न मानेंगे ?

दूसरे तर्क का उत्तर—

सर्वशक्तिमान् के अर्थ पर जनसाधारण में जो विश्वास बने हुए हैं 'सत्यार्थप्रकाश में' उनपर आक्षेप किये गए हैं। उनका दूसरा उत्तर मौलाना इस प्रकार देते हैं—

"कुदरत (शक्ति) से अभिप्राय उन कार्यों से होता है जो सुन्दर, बड़े तथा कर्ता के महत्त्व को बढ़ानेवाले हों।" (पृष्ठ ३२)

शक्ति (कुदरत) शब्द के यह अर्थ खोजने के लिए किसी नये कोश को खोजना पड़ेगा। शक्ति तो केवल सामर्थ्य है जिसका प्रयोग भले अथवा बुरे कार्यों में हो सकता है। शक्ति के बिना चोर चोरी नहीं कर सकता, डाकू डाका नहीं मार सकता; अत्याचार भी शक्ति के कारण होते हैं। हाँ, परमेश्वर की शक्ति में पाप अथवा त्रुटि का लेशमात्र भी नहीं है। यहाँ प्रश्न होता है कि परमेश्वर के अतिरिक्त किसी दूसरी सत्ता के अनादि न होने पर क्या उसकी शक्ति में कोई कमी आ जाती है? श्रीमान् जी! हाँ, कमी आ जाती है, और वह यह कि यदि ईश्वर के अतिरिक्त कोई अन्य सत्ता अनादि न हो, तो शेष कुल संसार की, जिसे आप ईश्वर की रचना मानते हैं, सृष्टि से पूर्व, ईश्वर के सारे गुण (मालिक, ख़ालिक, न्यायकारी) आदि व्यर्थ हो जाएँगे। आपने इस कमी की पूर्ति यह कहकर की कि जाति से सृष्टि अनादि है, व्यक्ति से नहीं। अनादि जाति का आखिर कोई तो व्यक्ति होता जो अपने व्यक्तित्व से अनादि होता? क्योंकि, जाति का अस्तित्व व्यक्ति के बिना असम्भव है, और जो अनादि है वह अभाव से भाव में नहीं आया!

नास्तिक (मुशरिक) कौन है?

दूसरे तर्क का उत्तर—

जीव-प्रकृति की नश्वरता का दूसरा तर्क क़ुरआन के इस आदेश से निकाला गया है—**"वहुलवाहिदुलक़हार"**—जिसका अर्थ किया है कि "ईश्वर एक है तथा क़हर (ग़ज़ब) ढानेवाला है।" हमने तो इन शब्दों का अर्थ यह पढ़ा था कि परमेश्वर अकेला ग़ज़ब ढानेवाला है, अर्थात् और कोई ग़ज़ब ढानेवाला नहीं। यदि दूसरे अर्थ भी कर लें कि परमात्मा एक है, तो हमें कोई आक्षेप नहीं है। परन्तु इससे जीव तथा प्रकृति के सादि होने का प्रमाण कैसे मिल गया?

मौलाना का तर्क यह है कि जीव तथा प्रकृति को यदि अनादि मान लें, तो ईश्वर के गुण 'शक्तिमान्' में ईश्वर से सम्बद्ध मानकर, उसके गुणों में सम्बद्ध मानकर, ईश्वर का एकत्व कहाँ रहा? (पृष्ठ ३४)

हमने ऊपर निवेदन किया है कि दार्शनिक दृष्टिकोण से जीव एवं प्रकृति का अनादित्व आपके मन्तव्यों में भी उसी प्रकार प्रकट है जैसे हमारे मन्तव्यों में। यह और बात है कि आप इस तथ्य से अपरिचित हैं

और हम परिचित। और फिर जब आप जीवन की अनन्तता को मनुष्यों में स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं (इस्लाम के मन्तव्य में मृत्यु के पश्चात् जीव सदा के लिए स्वर्ग अथवा नरक में रहेगा, वह मरता नहीं), तो क्या यह अनन्तता ईश्वरीय गुण नहीं ? और क्या ईश्वर के इस गुण से जीव को युक्त करना कुफ़्र नहीं ? बात वस्तुतः यह है कि ईश्वर तो एक है, परन्तु अस्तित्व औरों का भी है, किन्तु दूसरे परमेश्वर नहीं हैं। प्रश्न यहाँ अनादित्व अथवा अनन्तता का नहीं, प्रश्न अन्य के अस्तित्व का है। आपने स्वयं लिखा है, "अस्तित्व तो हम ईश्वर तथा जीव दोनों का स्वीकार करते हैं, परन्तु इससे अभिप्राय अलग-अलग है। ईश्वर के अस्तित्व का अभिप्राय है—स्वरूप से, स्वयं बिना किसी की कृपा के अस्तित्व, जबकि जीव का अस्तित्व ईश्वर की देन है, वह अपने-आपसे नहीं।"

अस्तित्व का उलट तो अभाव है। एक ही शब्द अस्तित्व के दो अर्थ लेने हों, तो एक का अर्थ अवश्य अभाव रहेगा; सो जिसका अभाव आपको अभीष्ट हो, उसका अभाव मान लीजिए। दर्शन में अस्तित्व का अर्थ 'दिया हुआ अस्तित्व' अथवा 'स्वरूप से अस्तित्व' नहीं होता, अपितु अस्तित्व तो स्वरूप से ही होता है। यह अस्तित्व किसी गुणी का होता है, दिया हुआ अस्तित्व किसी गुण का अस्तित्व होता है; आप मनुष्यों का अस्तित्व 'दिया हुआ अस्तित्व' मान लीजिये, जो **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** वालों का सिद्धान्त है, तब मनुष्यों के पाप, बुराइयाँ, दुर्बलताएँ, त्रुटियाँ सब परमेश्वर की त्रुटियाँ मानी जाएँगी। यदि जीव का अस्तित्व अपने स्वरूप में मान लिया तो आपमें और हममें कोई अन्तर ही न रहा। लिखने को तो आपने लिख दिया, "मनुष्य में जितने गुण हैं, वे उसके अपने नहीं, क्योंकि यदि ये जीव के अपने होते, तो वह इन गुणों को सनातन काल से रखता; परन्तु जीव पर तो उत्पत्ति तथा गर्भावस्था में वह काल भी बीता है कि नाक पर रूमाल रखे बिना कोई मनुष्य इसके पास से नहीं गुजर सकता।" (३६) श्रीमन् ! यदि आप जीवात्मा के स्वरूप को समझते, तो उसे गर्भ तथा उत्पत्ति की अवस्थाओं से न देखते। ये अवस्थाएँ तो शरीर की हैं, और शरीर प्राकृतिक है। वे सब गुण जिनसे आप जीव को मुक्त मानते हैं, जीव के हैं; प्रकृति तो उन गुणों के प्रकट करने में साधन का कार्य करती है। आपने नेत्रों की दर्शन-शक्ति के सम्बन्ध में लिखा है कि "यह ईश्वर की अमानत है···वह जब चाहे,

वापस ले सकता है।" (पृष्ठ ३८) यदि सचमुच मनुष्य के गुण उससे लौटा लिये जाएँ, तो मनुष्य कहाँ रहेगा ? परन्तु आपका मन्तव्य है कि मनुष्य अनादि है (अनादि काल से ईश्वर द्वारा बनाया जाता है)। लगता है कि आप अपने मन्तव्य की दार्शनिक दुर्बलता से तो परिचित हैं, परन्तु उसे भ्रान्ति के वस्त्र में लपेट लेते हैं ताकि वह दुर्बलता स्पष्ट रूप से आपकी भ्रान्त आतमा को कुछ दिन कष्ट न दे। भला यह भी कोई अपनी अमानत का वापस लेना है कि वह वापस लेगा नहीं ? आपने शर्त लगा दी कि वह जब चाहे ले सकता है, परन्तु क्या वह कभी चाहेगा भी ? यदि यह गुणों को लौटा लेने की इच्छा ईश्वर के गुणों के विरुद्ध है, तो क्या आप उसे विश्व का धारणकर्ता मानते हैं अथवा नहीं ? धारणकर्त्ता का अर्थ क्या है ? यही कि किसी को स्थिर रखे। यदि उसे मनुष्य को स्थिर रखना है, और यह धर्ता का गुण उसका अनादि एवं अनन्त है, तो आतमा के गुणों को वापस लेने का क्या अर्थ ? और वापस लेने की इच्छा भी किसलिए ? आप हमें नास्तिक और घोर नास्तिक कह लें, परन्तु यदि हम नास्तिक हैं, तो आप भी कम नास्तिक नहीं हैं। जब आपने एक संसार (कम-से-कम) अनादि मान लिया, और उसके मनुष्यों की आत्माएँ अनादि मानी गयीं, तो फिर अनादि काल से ईश्वर के अतिरिक्त अन्य सत्ता भी अनादि हो गई। आपका कथन है—"इस (संसार बनाने की) घटना में अनादित्व नहीं कहा जा सकता, क्योंकि देनेवाला देने से पूर्व होता है, और सनातन वह सत्ता है जिससे पूर्व कोई सत्ता हो ही नहीं सकती।" देनेवाला देने से पूर्व होता है, यह सत्य है, तो क्या लेनेवाले का भी पूर्व होना आवश्यक नहीं ? लेनेवाला न होगा तो दाता अपनी देन किसे देगा ? और देगा क्या ?

श्रीमन् ! खुले रूप में स्वीकार कीजिये कि तीनों सत्ताएँ (देनेवाला, लेनेवाला, दी जानेवाली वस्तु) अनादि हैं, नहीं तो दर्शन की इस गुत्थी को सुलझाइये कि पहली बार दिये जाने से पूर्व क्या देने का गुण नहीं था ? यदि था तो दिया जाना अनादि काल से हुआ। दिये जाने से पूर्व जहाँ दाता का अस्तित्व चाहिए, वहाँ लेनेवाले का भी तथा दी जानेवाली वस्तु का भी अस्तित्व चाहिये। अस्तित्व पर दिये जाने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अस्तित्व उसको दिया जाएगा जिसका अस्तित्व पहले न हो, और जिसका अस्तित्व है नहीं तो लेगा कौन ? वस्तुतः सत् का गुण अनादित्व का द्योतक है, और यह गुण केवल ईश्वर का नहीं,

सब अनादि सत्ताओं का है। ये अनादि सत्ताएँ एक-दूसरी का गुण नहीं बन सकतीं। आत्मा प्रकृति का गुण नहीं है, अपितु चेतनता के गुण की गुणी सत्ता है। प्रकृति आत्मा का गुण नहीं है, अपितु जड़ता गुण की गुणी सत्ता है, और प्रकृति एवं आत्मा ईश्वर के गुण नहीं हैं क्योंकि यह अपनी दुर्बलताओं के भी धारणकर्ता हैं, और ईश्वर दुर्बलताओं का धारक नहीं हो सकता। यदि आज्ञा दें तो इस विषय को प्रश्नोत्तर से स्पष्ट कर दें—

आर्य—आप परमात्मा का अस्तित्व मानते हैं ?

मौलवी साहब—हाँ।

आर्य—जीव तथा प्रकृति के अस्तित्व पर आपका क्या विचार है ?

मौलवी—उन्हें भी मानते हैं।

आर्य—ईश्वर तथा जीव एवं प्रकृति के अस्तित्व में क्या अन्तर मानते हैं ?

मौलवी साहब—ईश्वर का अस्तित्व अपना है; जीव एवं प्रकृति का अस्तित्व अपना नहीं है, अपितु यह उन्हें ईश्वर ने दिया है।

आर्य—ईश्वर ने क्या दिया है ?

मौलवी—अस्तित्व।

आर्य—क्या इस अस्तित्व के देने से पूर्व आत्मा तथा प्रकृति विद्यमान थे या नहीं ?

मौलवी—यदि उनका अस्तित्व होता, तो देने की आवश्यकता क्या थी ? अस्तित्व देने का अर्थ ही यही है कि वे पहले विद्यमान न थे।

आर्य—यदि वे थे ही नहीं, तो ईश्वर ने अस्तित्व दिया किसे था ?

मौलवी—आत्मा तथा प्रकृति को।

आर्य—जिसका अस्तित्व ही न हो, उसे भी कुछ दिया जा सकता है ? लेनेवाला उपस्थित ही नहीं, और देनेवाला दे रहा है, यह नया तर्क है !

मौलवी साहब—ईश्वर अनादि काल से देता आया है।

आर्य—बहुत अच्छा ! क्या देता आया है ?

मौलवी—अस्तित्व।

आर्य—जो वस्तु अनादि काल से दी जाती रही है, वह अनादि है अथवा नहीं ?

मौलवी—हाँ ! अस्तित्व अनादि है, तभी तो ईश्वर अनादि काल से देता आया है।

आर्य—आप ईश्वर के अस्तित्व में तथा जीव और प्रकृति के अस्तित्व

में कोई अन्तर मानते हैं या दोनों का अस्तित्व एक-सा मानते हैं ?

मौलवी—ये दोनों अस्तित्व (जीव-प्रकृति का तथा ईश्वर का) विरोधी अस्तित्व हैं।

आर्य—अस्तित्व का विरोधी तो अनस्तित्व (अभाव) होता है। दो अस्तित्व एक-दूसरे के विरोधी कैसे ? यदि आप विरोध को ही मानते हैं तो परमात्मा को सत् एवं जीव-प्रकृति को असत् मान लीजिये, अथवा इसके उलट मन्तव्य बना लीजिये कि अस्तित्व···

मौलवी—नहीं। ईश्वर का अस्तित्व अपना है, जीव तथा प्रकृति का अस्तित्व उधार का है।

आर्य—यह उधार वाला अस्तित्व कब से उधार मिलने लगा ?

मौलवी—अनादि काल से।

आर्य—उधार लिया अस्तित्व भी एक गुण है, इसका गुणी चाहिए; क्या यह गुणी अनादि काल से है या नहीं ?

मौलवी—उधार अस्तित्व के गुणी जीव तथा प्रकृति हैं और ये जातिरूप से अनादि हैं।

आर्य—और ये जातिरूप से अनन्त काल तक रहेंगे ?

मौलवी—यह मनुष्य जातिरूप से भी तथा अपने वैयक्तिक रूप में भी अनन्त काल तक रहेंगे।

आर्य—क्या अनादि उधारवाले अस्तित्व के गुणी कोई मनुष्य होंगे ?

मौलवी—हाँ ! मनुष्य जातिरूप से अनन्त काल तक उधार लिये अस्तित्व का गुणी है। परन्तु हर मनुष्य ऐसा नहीं।

आर्य—वह जाति भी कैसी अनादि है जिसका कोई व्यक्ति अनादि न हुआ हो ? क्या अल्लाह तआला ने जाति बनाई या व्यक्ति ?

मौलवी—जाति।

आर्य—क्या जाति का व्यक्ति के बिना निर्माण सम्भव है ?

मौलवी—नहीं। पैदा तो व्यक्ति किये जाते हैं और उनके एकत्रित-रूप की कल्पना 'जाति' कहलाती है।

आर्य—बहुत अच्छा ! जब खुदा अनादि काल से उत्पन्न करता आया है और जाति की उत्पत्ति व्यक्ति के उत्पन्न किये बिना सम्भव नहीं है, तो व्यक्तियों को अनादि मानिये, उनका अस्तित्व उधार लिया हुआ सही, होंगे तो अनादि ?

मौलवी—हाँ, यह तो मानना पड़ेगा। सनातन उत्पत्ति में कुछ

मनुष्यों का उधार लिया अस्तित्व अनादि होगा, नहीं तो अल्लाहतआला की अनादि सृजन-शक्ति समाप्त हो जाएगी।

आर्य—जब आप मनुष्यों का अनादित्व, व्यक्ति-रूप से भी मानते हैं, तब तो वे अनादि मनुष्य अनन्त काल तक रहेंगे ?

मौलवी—हाँ, हर मनुष्य अनादि है, अनादि मनुष्य अनन्त काल तक रहेंगे। परन्तु भाई, इससे कुफ़ लगता है।

आर्य—कुफ़ (नास्तिकता) अस्तित्व में नहीं होता क्योंकि वह तो इस समय भी है, हम भी मौजूद हैं और ईश्वर भी।

मौलवी—मैंने आपसे कहा था कि हमारा अस्तित्व ईश्वर की देन है जबकि ईश्वर का अस्तित्व अपना है।

आर्य—इसकी वास्तविकता तो आपने सुन ली। आपने उसे ईश्वर की देन भी कहा, और अनादि भी; भला कोई अनादि वस्तु देन भी होती है ? देनेवाली वस्तु वह होती है, जो लेनेवाले में पहले न हो, और कुछ काल पश्चात् दी जाए; और अनादि अस्तित्व वह होता है जो पहले था। अस्तित्व देन नहीं होता; अपने स्वरूप से होता है अथवा दूसरे के कारण से। दूसरे के कारण से गुणों, कर्मों, रूपों, शक्तियों का अस्तित्व होता है। परन्तु आप यह तो न मानेंगे कि आत्मा एवं प्रकृति ईश्वर के कर्म, रूप अथवा शक्तियाँ या गुण हैं ?

मौलवी—यह मन्तव्य तो 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' वालों का है, हम त्रुटियों तथा दुर्बलताओं को ईश्वर का गुण नहीं मान सकते।

आर्य—परन्तु संसार में तो त्रुटि एवं दुर्बलता मौजूद हैं ?

मौलवी—हाँ, हैं तो सही !

आर्य—तो ये किसके गुण हुए ?

मौलवी—ईश्वर से इतर के।

आर्य—बस, यही हमारा मन्तव्य है कि दुर्बलता एक गुण है जो वास्तविक है। इसका गुणी ईश्वर नहीं, उसके अतिरिक्त कोई और है, और वह है आत्मा तथा प्रकृति। आप कुफ़ से भयभीत थे कि आत्मा तथा प्रकृति अनादि न माने जाएँ। हमें इस कुफ़ का भय है कि आत्मा तथा प्रकृति की अल्पज्ञता एवं जड़ता ईश्वर के गुण न बनें। आप बताएँ कुफ़ का पाप आप पर लगता है कि हम पर ?

ससीम किसने किया ?

तीसरे तर्क का उत्तर—

आत्मा तथा प्रकृति को सादि (उत्पन्न) मानने के लिए तीसरा तर्क मौलाना देते हैं—"आत्मा तथा प्रकृति का ससीम होना, उसके गुणों, शक्तियों और उन्नति की सीमा का होना इस बात का प्रमाण है कि वे उत्पन्न हुई-हुई हैं। नहीं तो जो सत्ता अनादि है और उसे किसी ने नहीं बनाया तो उसकी सीमा कैसी जो उसपर लगी हुई है ?" (पृ० ४४) आगे फिर लिखते हैं—"क्या कारण है कि वे (आत्मा, प्रकृति) ईश्वर के समान सनातन और अस्तित्व से अनादि हैं, फिर भी त्रुटिपूर्ण तथा सीमित हैं ? (पृष्ठ ४४)

मौलवी साहब ! स्वरूप से अनादि सत्ता त्रुटिपूर्ण तथा ससीम नहीं होती। इसके लिए कोई तर्क दिया होता ! संसार में त्रुटियाँ भी हैं और ससीमता भी; ये दोनों गुण हैं। इनका प्रदर्शन पापकृत्य, निर्बलता आदि कई रूपों में हम जगत् में पाते हैं। इन गुणों का गुणी कोई तो होना चाहिए ? हम पहले कह चुके हैं कि गुण गुणी के बिना नहीं रह सकते। गुणी का अपना स्वरूप होता है। अब बताना होगा कि वह स्व-रूपवाली सत्ता कौन-सी है जिसके ससीमता आदि गुण हैं ? ईश्वर में तो आप ससीमता-अल्पज्ञता मानते नहीं, तो ये गुण किसी और सत्ता के आधार पर होंगे। हमारे दर्शन में जो सत्ता स्व-रूप से सत् है, वह अनादि है, अतः आपको या तो हमारे समान ससीमता-जड़ता आदि गुणों का गुणी जीव तथा प्रकृति को अनादि मानना पड़ेगा, अथवा ससीमता-जड़ता आदि के गुणों से इन्कार करना पड़ेगा, जो आपको अभीष्ट नहीं। ससीमता के गुण को स्वीकार करने के पश्चात् आपका आक्षेप है कि यह सीमा किसने बाँधी ? आपके मन्तव्यानुसार सीमा बाँधनेवाला, सीमा बाँधने से पूर्व होना चाहिए। हम यदि आपके तर्क को ठीक मान लें, तो प्रश्न होगा कि सीमा किसकी बाँधी ? यदि सीमा लगानेवाला तो हो, परन्तु वह सत्ता न हो जिसकी सीमा बाँधी जावे, तो फिर सीमा लगेगी किसपर ? क्या स्वयं परमात्मा ने अपने ऊपर यह सीमा लगाई ?

सत्य तो यह है कि ससीमता भी अनादि है और उसका गुणी भी अनादि। नहीं तो यदि कोई ससीम सिरे से हो ही नहीं, तो किसी को

असीम कैसे कह सकेंगे ? इसकी तो कल्पना भी असम्भव है। असीमता एक नकारात्मक परिभाषा है। यदि सीमा की कल्पना न हो तो सीमा के अभाव की कल्पना कैसे होगी ? सीमा आत्मा एवं प्रकृति में विद्यमान थी, उसके उलट असीमता के गुण का गुणी ईश्वर था। जब ससीमता ईश्वर का गुण नहीं, तो ईश्वर इसे उत्पन्न कैसे कर सकता है ? क्या ईश्वर दुर्बलताओं का जंन्मदाता है ? किसी भी रूप में सोचो, ससीमता के कारण जीव तथा प्रकृति की उत्पत्ति मानना ईश्वर के प्रति धृष्टता है एवं ससीमता के गुण से भी न्याय नहीं। प्रश्नोत्तर के रूप में देखिये—

मौलवी—आत्मा तथा प्रकृति ससीम हैं या असीम ?

आर्य—शक्तियों से ससीम।

मौलवी—इनकी सीमा किसने बाँधी ?

आर्य—ससीमता अनादि है, इसे लगाने का प्रश्न ही नहीं उठता। आप ही फरमाइये, किसने लगाई ?

मौलवी—अल्लाह तआला ने।

आर्य—किसपर लगाई ?

मौलवी—जीव तथा प्रकृति पर।

आर्य—क्या ये पहले असीम थे ?

मौलवी—वे थे ही नहीं; असीम कैसे होते ?

आर्य—थे ही नहीं तो सीमा किसकी बाँधी ? क्या कभी अभाव पर भी सीमा लगाई जाती है ? (हँसकर) अपने-आप पर लगाई होगी !

मौलवी—उन (जीव-प्रकृति) का अस्तित्व था।

आर्य—अस्तित्व था तो वे अपने गुणों के साथ अस्तित्व में थे; उन गुणों में एक गुण है ससीमता।

(२)

आर्य—संसार में ससीमता है और वह क्या गुण है ?

मौलवी—हाँ है, और वह गुण है।

आर्य किस गुणी का गुण है ?

मौलवी—जीव तथा प्रकृति का। परन्तु जीव और प्रकृति नश्वर हैं।

आर्य—उन्हें किसने उत्पन्न किया है ?

मौलवी—ईश्वर ने।

आर्य—ईश्वर ने उनकी ससीमता को भी उत्पन्न किया ?

मौलवी—हाँ।

आर्य—ससीमता त्रुटि है, दुर्बलता है।

मौलवी—हाँ।

आर्य—(तब तो) ईश्वर त्रुटि एवं दुर्बलता को उत्पन्न करनेवाला है।

मौलवी—यह क्या प्रश्न है ?

आर्य—प्रश्न तो आगे होगा—पाप को किसने उत्पन्न किया ? और किससे उत्पन्न किया ?

मौलवी—पाप को अभाव से उत्पन्न किया, अभाव से दुर्बलता का जन्म होता है।

आर्य—और जो सद्गुण मनुष्य में हैं वे ?

मौलवी—वो ईश्वरीय गुण हैं।

आर्य—अर्थात् मनुष्य के कुछ गुण अभाव से जन्मे और कुछ ईश्वर से ?

मौलवी—टेढ़ी खीर है (समस्या है)।

ऊपर दिये तर्क के आधार पर आपने सत्य सिद्धान्त निश्चित किया है और 'सत्यार्थप्रकाश' के प्रमाण से जीव की सीमित शक्तियों का वर्णन किया है। फिर फ़रमाया है कि "क्या वह (आत्मा की आकर्षण-शक्ति) चन्द्रमा को धरती पर उतार सकती है ? क्या वह शक्ति आकाश को उलाँघ सकती है ? (पृष्ठ ४६) किस योग्यता से मुहम्मद साहब के चन्द्रमा को तोड़ने एवं आकाश पर ईश्वर से मिलने के चमत्कार से मौलवी साहब ने इनकार किया है ? परमात्मा इन्हें सुमति दें।

सचमुच आत्मा के सब गुण ससीम हैं। आप फ़रमाते हैं—"अनुमान यही लगता है कि इसका काल भी सीमित हो।" (पृष्ठ ४७) क्यों श्रीमान् जी, क्या काल भी जीव की विशेषता है ? हमारे सिद्धान्त में आत्मा का गुण है अनादित्व, और आपके तथा हमारे दोनों के समान सिद्धान्त में है —आत्मा का अनश्वर होना। अनुमान लगाइये कि क्या ये दोनों गुण भी सीमित हैं ? जरा आपके दार्शनिक ज्ञान की गहराई तो देखें !—अनादित्व को सीमित करने से पूर्व अनश्वरता पर प्रतिबन्ध लगाना ! अनादिता तो स्वतः होती है; अनश्वरता को सीमित करने का अनुमान लगाइये ! क्या विचित्र दृष्टिकोण है ! क्या क़ुरआन के विद्वानों का गणित-ज्ञान इतना ही है ?

श्रीमन् ! यदि विशेषण ही जानना है तो आत्मा का विशेषण काल को न मानिये, कालत्व को गिन लीजिये। इसे स्वतः न मानने पर आपको कभी तो आत्मा को काल की सीमा से स्वतन्त्र और कभी काल

से सीमित मानना पड़ेगा, अर्थात् कभी जीव अनादि हो जाएगा, कभी नहीं; आप ही इस हिसाब को समझें !

भाई ! हमारी समझ में नहीं आता कि जीव तथा प्रकृति के अनादि होने से उनके गुण असीम कैसे हो जाते हैं ? जबकि दूसरी ओर, जीव को नित्य (अनश्वर) तो आप भी मानते हैं। क्या यह अनश्वरता, असीमता में नहीं ? फ़रमाया—" 'स्वर्ग में जीव सदा का जीवन पाएँगे', परन्तु यह उनका अपना गुण नहीं; खुदा जब चाहे स्वर्ग में रहनेवाले जीवों का नाश कर सकता है, परन्तु करेगा नहीं। अपने निश्चय से वह स्वर्ग को नित्य रखेगा, अतः हमने जीवों को नित्य नहीं माना; ईश्वर को उन्हें नित्य रखनेवाला माना है और हमारी नित्यता में हमारा कोई गुण नहीं, यह तो ईश्वर की महत्ता है।" (पृष्ठ ५१)

कोई दार्शनिक इन पंक्तियों को पढ़े तो इसे विरोधी विचारों का संग्रह-मात्र कहे। एक ओर तो आप कहते हैं 'स्वर्ग में जीव सदा का जीवन पाएँगे', फिर कहते हैं—'हमने जीवों को नित्य नहीं माना'; पहले फ़रमाया—'खुदा जब चाहे, स्वर्ग के जीवों का नाश कर सकता है', फिर आज्ञा होती है—'अपने निश्चय से वह स्वर्ग को नित्य रक्खेगा।' जनाब ! आप जीवों को नित्य न मानिये, जब वे नित्य का जीवन पाएँगे तो आपके न मानने पर भी वे नित्य हो जाएँगे। जिस गुण के नाश की सम्भावना भी नहीं, वह गुण स्वाभाविक होता है। परमात्मा को जब स्वर्ग अपने निश्चय से नित्य रखना ही है, तो फिर 'जब चाहे नाश कर दें' की रटन्त कैसी ? क्या ईश्वर के निश्चय में परिवर्तन की सम्भावना है ? हमारा सिद्धान्त तो इसके विपरीत है कि परमात्मा का हर निश्चय सुदृढ़ होता है—उसमें परिवर्तन को स्थान ही नहीं। 'जब चाहें, अपने निश्चय को परिवर्तित कर दें' ऐसा मानना परमेश्वर को 'क्षणे रुष्टः-क्षणे तुष्टः' मानना है। वह कभी नाश करना चाहेगा ही नहीं ! परमात्मा की महिमा का बखान करने को ही सही, आपने माना तो है कि वह स्थिर रखनेवाला है। वह (ईश्वर) स्थिर रखनेवाला न हो यदि हम नित्य न हों, तो लीजिए ईश्वर की इसी महिमा के आधार पर यह भी मान लीजिए कि वह भूतकाल में भी ऐसे ही स्थिर रखनेवाला था, जैसे भविष्य में होगा। यदि था तो किसको स्थिर रखता था ? वह अनादि-काल से स्थिर रखनेवाला, हम अनादि काल से स्थिर, दोनों के गुण प्रकट हो गए ! जनाब मौलाना ! ईश्वर की महिमा और गुण इसी में हैं

कि उसके बन्दों में भी गुण हों। बन्दे गुण-रहित हुए तो अल्लाह मियाँ का गुण अपने लिए ही रह जाएगा। आपने बहुत ठीक लिखा कि ईश्वर स्थिर रखनेवाला है। प्रश्न होता है कि कब से और कब तक ? अन्तिम भाग का उत्तर आपने दे दिया कि सदा के लिए (अनन्त काल तक)। इसका प्रकार ? आपने जीवों को नित्य तो माना, इसी प्रकार प्रश्न के प्रथम भाग का भी उत्तर दीजिये—अनादि काल से। इस प्रकार जीव को अनादि स्वीकार कीजिए, अथवा यह मानिये कि किसी काल में ईश्वर में स्थिर रखने का गुण नहीं था। गुण उसमें आया, यदि ऐसा मानो, तो इस गुण के भगवान् में आने से पूर्व के जीव तो घाटे में रहे। गुण प्रकट होने के पश्चात् के जीवों को आनन्द ही आनन्द है। सत्य तो यह है कि अनन्तता का अनादित्व से सीधा सम्बन्ध है। आप आज स्वीकार नहीं करते, कल करोगे, पर करना तो पड़ेगा।

मौलवी—जीव तथा प्रकृति की शक्तियाँ सीमित हैं, अतः उनका काल भी सीमित होना चाहिए।

आर्य—क्या उनकी हर शक्ति सीमित है ?

मौलवी—हाँ !

आर्य—अनन्तता ?

मौलवी—वह सीमित नहीं; परन्तु यह गुण जीवों का नहीं ईश्वर का है।

आर्य—तो जीवों का अनादित्व में असीम होना भी ईश्वर का गुण होगा।

मौलवी—वह कैसे ?

आर्य—ईश्वर अनादि काल से स्थिर रखनेवाला है, और अनन्त काल तक स्थिर रक्खेगा न !

मौलवी—हाँ !

आर्य—तो जिनको अनन्त काल तक स्थिर रक्खेगा, यदि उन्हें अनादि काल से स्थिर रक्खे तो क्या अन्तर आ जाएगा ?

मौलवी—अनादि काल से ईश्वर स्थिर तो रखता है, पर जाति को।

आर्य—तो अनन्त काल तक भी जातियों को स्थिर रखनेवाला हो जाए, अर्थात् व्यक्ति सब नश्वर ठहराए जाएँ।

मौलवी—नहीं, अनन्तकाल तक तो व्यक्तियों को भी स्थिर रक्खेगा।

आर्य—यह क्या ? अनादि काल से स्थिर रखनेवाला का अर्थ, जाति

को स्थिर रखनेवाला और अनन्त काल तक स्थिर रखनेवाले का अर्थ व्यक्ति को स्थिर रखनेवाला ? आखिर स्थिर रखनेवाला तो एक ही है, तब अर्थ भी एक ही लीजिये।

ईश्वर सबका स्वामी कैसे ?

चौथे तर्क का उत्तर—

आत्मा एवं प्रकृति की उत्पत्ति का तर्क नम्बर ४ पर यह दिया है : "यदि उसको (ईश्वर को) जीव तथा प्रकृति का उत्पन्न करनेवाला न माना जाए, तो वह इनका स्वामी नहीं हो सकता। जब जीव को उसने उत्पन्न नहीं किया तो जीव का स्वामी क्यों ? ईश्वर ने उसे मोल तो नहीं लिया ?" (पृष्ठ ५२) यह तर्क है तो मौलाना का अपना ही, परन्तु यदि इसका सम्बन्ध क़ुरआन से न दिखाएँ तो जीव की उत्पत्ति का सिद्धान्त इस्लाम से कैसे पुष्ट हो ? क़ुरआन में आया है "आसमानों और ज़मीन का स्वामी परमात्मा है···उसने उन्हें उत्पन्न किया, वह सब पर अधिकार रखता है।"

यहाँ ईश्वर की तीन विशेषताओं का वर्णन है—(१) वह स्वामी है; (२) वह उत्पन्न करनेवाला है; (३) वह अधिकार रखता है; अर्थात् वह स्वामी है, वह उत्पन्नकर्त्ता है, वह शक्तिमान् है। परन्तु मौलाना इस प्रकार फ़रमाते हैं कि वह स्वामी है, इसलिए कि वह उत्पन्न करता है। वह इसलिए कि वह शक्तिमान् है। और वह उत्पन्न करनेवाला कैसा है कि—अपनी शक्ति से, अभाव से भाव की सृष्टि कर देता है। सत्य तो यह है कि समूचे क़ुरआन में अभाव से सृष्टि-उत्पत्ति का कहीं स्पष्ट वर्णन नहीं आया। ऊपर लिखी ईश्वर-सम्बन्धी तीनों विशेषताओं को हम भी स्वीकार करते हैं, परन्तु यहाँ उत्पन्न करने का अर्थ अभाव से सृष्टि करना नहीं मानते हैं और यहाँ क़दीर (शक्तिशाली) शब्द इसलिए प्रयुक्त भी नहीं हुआ कि उसने अभाव से सृष्टि उत्पन्न कर दी, अतः हम क़ुरआन को सम्मानपूर्वक एक ओर रखकर मौलाना के तर्क का उत्तर देते हैं।

मौलाना ने स्वामित्व का आधार मोल लेने को माना है, तो ईश्वर जीव को मोल किससे लेता है ? और उसका मूल्य क्या है ? अतः लिखा है कि आत्मा (जीव) उसकी 'ख़ानाज़ाद' हो। ख़ानाज़ाद का अर्थ है

'घर में उत्पन्न हुआ'। यदि 'ज़ादन' का अर्थ शरीर ग्रहण करना हो तो जीव ईश्वर के घर में ही तो शरीर को ग्रहण करता है, अतः जीव ईश्वर का ख़ानाज़ाद हुआ। मौलाना को 'ख़ानाज़ादी' का विचार इसलिए भी आया कि पुराने युग में दास-प्रथा प्रचलित थी, गुलामों पर स्वामियों का अधिकार होता था। अब तो वह रहा नहीं ! परन्तु चलो, पुरानी परम्परा पर ही विचार कर लो ! तब भी आक़ा (मालिक) अपने 'खानाज़ादों' को उत्पन्न तो नहीं करते थे ? खानाज़ाद होना और बात है और 'मख़लूक' होना और। 'मख़लूक' तो खानाज़ाद भी परमात्मा के थे, परन्तु उनपर अधिकार उनके स्वामियों का था। मौलाना बताएँ, ऐसा क्यों ? आज दास-प्रथा समाप्त हो चुकी है, तो भी स्वामित्व तो आज भी रहता है। सन्तान पर माता-पिता का स्वामित्व तब तक तो रहता ही है जब तक सन्तान वयस्क न हो। यह किस अधिकार से ? सन्तान भी मनुष्य और माता-पिता भी मनुष्य। गुरु का शिष्यों पर अधिकार शिक्षाकाल में तो होता ही है। हमारी दृष्टि में स्वामित्व का अर्थ है उपयुक्त प्रयोग; यही सम्बन्ध जीवों का ईश्वर से है। जीव ईश्वर के सम्मुख सदा बच्चे ही हैं, अतः बच्चे होने के कारण ईश्वर की इच्छा के आधीन हैं। सांसारिक सम्बन्धों में राजा-प्रजा, स्वामी-सेवक, गुरु-शिष्य इत्यादि स्वामी तथा सेवक का सम्बन्ध रखते हैं, और इस स्वामित्व के लिए कोई किसी को उत्पन्न तो नहीं करता, अपितु ज्ञान की न्यूनाधिकता ही कारण होता है। स्वामित्व उसी का अधिकार है जो स्वामित्व की योग्यता रखता है। जैसे आपकी दृष्टि में जीव तथा प्रकृति दोनों उत्पन्न हुए हैं, परन्तु मनुष्य पशुओं का स्वामी है, यद्यपि आपके दृष्टिकोण में दोनों 'मख़लूक' हैं। मनुष्यों में बड़ाई-छोटाई से स्वामी-सेवक का सम्बन्ध बन जाता है। इसका कारण यह नहीं होता कि जीव प्रकृति को, अथवा मनुष्य पशु को, या एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को अभाव से भाव में लाया। यहाँ स्वामित्व का आधार यह है कि जीव चेतन है, प्रकृति जड़ है। मनुष्य पशु से अधिक ज्ञान रखता है। एक मनुष्य स्वामी बन जाता है जब वह दूसरे से बुद्धि में बढ़कर हो। आखिर आप जिन वस्तुओं को उत्पन्न हुआ मानते हैं, उनमें आपस में स्वामी-सेवक-सम्बन्ध का कोई आधार बताइये !

पृष्ठ १३९ पर आप स्वामी की परिभाषा इस प्रकार देते हैं--"स्वामी (मालिक) उसको कहते हैं जो किसी वस्तु पर पूरा अधिकार

रखता हो, उसपर इतना पूर्ण अधिकार हो कि जो वह चाहे, वैसा ही हो जाये, और उसके प्रयोग का उसे पूरा अधिकार भी हो।" दृष्टान्त देते हैं—"मृत्यु-शय्या पर पड़ी पत्नी का पति चाहता है कि यह जीवित हो उठे, परन्तु ऐसा नहीं हो पाता। पं० लेखराज का हत्यारा छुप जाता है, सरकार भागदौड़ करती है, परन्तु क्या सरकार के स्वामित्व ने कोई परिणाम निकाला? इकलौते बच्चे मर जाते हैं, परन्तु माता-पिता उन्हें जीवित नहीं कर सकते···इत्यादि।" धृष्टता क्षमा करें, ज़रा अल्लाह मियाँ से ही इन्हें जीवित करा देते, और ईश्वर से मौ० गुलाम अहमद कादियानी की मृत्यु का प्रकार ही बदलवा देते (मौलाना कादियानी की मृत्यु शौचालय में हुई थी)। आख़िर विशूचिका (हैज़ा) मसीह मौऊद (गुलाम अहमद कादियानी) की शान के बराबर की मौत तो न थी? पं० लेखराम की हत्या के वर्णन से मौलाना को खूब आनन्द आया होगा, क्योंकि यह मसीह मौऊद की भविष्यवाणी का वर्णन है। हत्यारे का छुप जाना भी खूब रहा! आखिर कादियानी वीरता ही तो थी? हमें देखना है कि क्या इस्लाम के खुदा पर स्वामी शब्द की परिभाषा पूरी उतरती है कि नहीं? क्या परमात्मा नहीं चाहता कि उसके बन्दे नेक हों? क्या पैग़म्बरों का एक के पश्चात् दूसरे का आना ईश्वर की इस इच्छा का प्रमाण नहीं? परन्तु परिणाम? क्या मनुष्य नेक बन गये? क्या खुदा नहीं चाहता कि मनुष्य शैतान के बहकावे में न आये, अथवा शैतान मनुष्य को न बहकावे? परन्तु क्या शैतान अपने कार्य से पीछे हटा? स्वयं क़ुरआन में स्थान-स्थान पर पश्चात्ताप के अश्रु टपकाये गये हैं। क्या यह सब आपके विचार में खुदा की विवशता का प्रमाण नहीं? मरते हुए को जीवित उसी समय न आपने किया न अल्लाह मियाँ ने; नेक बनाना चाहा, पर बना न सका; चाहा कि शैतान सभ्य हो जाये, पर यह कार्य भी न कर सका। इसी प्रकार मनुष्यों को अनन्त काल तक (जीवों को) जीवित रहनेवाला (अब्दी) आपने माना और कहने को कह दिया कि "खुदा चाहे तो इन्हें नष्ट कर सकता है, परन्तु करेगा नहीं"; यह चाहना भी क्या हुआ? इस अवस्था में तो खुदा भी स्वामी न रहा? स्वामित्व की उपयुक्तता का प्रश्न तो तब उठे जब पहले स्वामित्व सिद्ध हो। आपके कहे स्वामित्व का तो अस्तित्व ही नहीं, विवाद किस पर? श्रीमान् जी, स्वामित्व वही है जिसकी परिभाषा हम दे चुके हैं, अर्थात् उचित उपयोग। परमात्मा में इस अधिकार की चरम सीमा है।

अनीश्वर शक्तियों में इसका कुछ अंश मिलता है, परन्तु है अवश्य। उपमा सदा अंश तक सीमित रहती है; यदि वह पूर्ण हो तो उपमान तथा उपमेय दोनों एक हो जाएँगे, दो नहीं रहेंगे। सरकार का प्रजा पर भी अधिकार है, क्योंकि वह उन्हें दुष्कर्मों का फल दे सकती है, उससे कर ले सकती है। हाँ, इसमें कभी-कभी वह अशक्त भी हो जाती है, जैसे पंडित लेखराम के हत्यारे 'खैरुलमा करीन' के शिष्यों को वह न खोज सकी। परन्तु अधिकार से इन्कार का तो प्रमाण तब मिलता, जब हत्यारा प्रकट होता और सरकार की आज्ञा न मानता, बन्दी न बनता या सूली पर न चढ़ता। माता-पिता का भी बच्चों पर अधिकार है, क्योंकि उनकी आज्ञा का पालन करना बच्चों का कर्त्तव्य होता है। जीव पर परमात्मा का अधिकार इसमें है कि ईश्वरीय आदेश के पालन की सब जीवों पर पाबन्दी है; जो उल्लंघन करता है ईश्वर उसे दण्ड दे सकता है। बात वही है, जो ऋषि दयानन्द ने लिखी है, परन्तु आपने उसे तोड़-मरोड़कर बीसियों पृष्ठ उसके अशुद्ध अर्थ करने, और उस अशुद्धि के प्रत्याख्यान में लगा दिये। ऋषि कहते हैं—"जब परमेश्वर सारे संसार का बनानेवाला तथा जीवों को कर्मों का फल देनेवाला, सबका ठीक-ठीक रक्षक और असीम शक्तिवाला है, तो सीमित शक्तिवाला जीव तथा प्रकृति की वस्तुएँ उसके अधिकार में क्यों न हों?" इसमें स्वामित्व की व्याख्या की है, स्वामित्व का औचित्य बताया है। स्वामी कौन होना चाहिए? (१) वह, जो कर्मों का फल दे सके। फल क्योंकर देगा? संसार के बनाने से अर्थात् प्रकृति को कारण से कार्यावस्था में लाने से; (२) सबकी ठीक-ठीक रक्षा करने से कि कहीं कार्य, कार्यरूप धारण करते ही कारण में परिवर्तित न हो जाए, (३) जीवों तथा प्राकृतिक पदार्थों का भोग्य-भोक्ता का सम्बन्ध बना रहे और अपनी असीम शक्ति से, जो फल देने में प्रयुक्त होती है। सीमित शक्तिवाले जीव और प्राकृतिक पदार्थ, अपनी ससीमता से विवश हैं कि परमात्मा का दिया हुआ कर्मफल भोगें। परमात्मा का असीम ज्ञान इसी असीम शक्ति में सम्मिलित है। सरकार (अर्थात् वह सरकार जो सरकार के गुणों को रखती हो) प्रजा पर इसलिए अधिकार का औचित्य रखती है क्योंकि वह प्रजा से अधिक समझदार और प्रजा के अच्छे-बुरे से अधिक परि-चित होगी। माता-पिता का बच्चों पर अधिकार इसीलिए है कि वे बच्चों के भले-बुरे को न केवल जानते हैं, अपितु व्यवहार में भी उसे

लाने की क्षमता एवं निश्चय रखते हैं। इसी प्रकार परमात्मा भी है, क्योंकि वह सर्वज्ञ भी है, और रक्षक भी, निश्चय से भी तथा कर्म से भी।"

मौलाना ने स्वामित्व के सम्बन्ध में हमारे दार्शनिक दृष्टिकोण की आलोचना करते हुए, वेद के परमात्मा को कहीं 'डाकू' बनाया है, कहीं सर्वथा 'असमर्थ', इस्लामी मख़लक से भी गया-बीता। यह मौलाना की दर्शनशास्त्र से उदासीनता का द्योतक है। हम कह चुके हैं कि मौलाना का प्रस्तावित स्वामित्व तो एक भ्रमपूर्ण विचार है, जो परमात्मा में है ही नहीं, और हमने जिस स्वामित्व का वर्णन किया है वह एक गुण है, जिसमें ईश्वर तथा जीव दोनों साँझीदार हैं, यद्यपि यह साँझादारी पूर्ण-रूपेण नहीं, आंशिक है।

देखिये, लोहा एक धातु है जिससे आप हथियार बना सकते हैं। हथियार बन सकता है या नहीं? आप इसे गलाकर सयाल बनाना चाहें, बना लेंगे; इसी प्रकार आप उसे जो रूप देना चाहें, दे सकेंगे, आपका अधिकार पूर्ण है, आपका स्वामित्व पूरा है, आप उसे जो चाहते हैं बना देते हैं, आप उसके स्वामी हैं। हाँ, आप उसका अभाव नहीं कर सकते। ज़रा अल्लाह मियाँ से कहो कि अभाव कर दे! सब्ज़ी को आप काट सकते हैं, उसे भून और तल सकते हैं, परन्तु पौधे से जुदा हुई सब्ज़ी को फिर हरा नहीं कर सकते। ज़रा अल्लाह मियाँ से कहिये कि कर दे। एक बकरे को पकड़कर कत्ल कर देना और उसे भूनकर खा जाना, आप उचित मानते हैं, आप यह कर भी सकते हैं। परमात्मा करे वह समय आ जाये जब यह उचित न समझा जाये और आप कर भी न सकें; परन्तु अभी तो आपका बकरे पर अधिकार है, परन्तु भूने हुए बकरे को आप फिर जीवित नहीं कर सकते। क्या क़ुरआन का खुदा यह कर सकता है? कभी यह चमत्कार भी देखें! लीजिये, मौलाना को पहले तो ईश्वर से अतिरिक्त किसी के स्वामित्व से इन्कार था, अब मान भी गये और उसका कारण भी बताते हैं। पृष्ठ १४२ पर लिखते हैं—"आर्यो! तुम पूछा करते हो कि मुसलमानों ने जब घोड़ों-गधों को पैदा नहीं किया तो उनपर अधिकार क्यों रखते हैं? और किस कारण से उनपर स्वामित्व रखते हैं?" श्रीमन्, जब अधिकार भी रखते हो, उनका उपयोग भी करते हो, तो पहले ईश्वर से अतिरिक्त के स्वामित्व पर इतना तूफ़ान क्यों उठाया? हाँ, अब बताइये, आपने जब उन्हें

उत्पन्न नहीं किया तो स्वामी क्यों हैं? उत्तर में फरमाते हैं—"यद्यपि घोड़े-गधे को हमने उत्पन्न नहीं किया, तो भी उत्पन्न करनेवाले खुदा का 'परवाना' (क़ुरआन की आज्ञा) तो हमारे पास है!" (पृष्ठ १४४)

सम्भव है इस उत्तर के सम्मुख आपकी इस्लाम-सम्बन्धी श्रद्धा नतमस्तक हो जाए, परन्तु दर्शन तो मौन नहीं रहेगा, जिसकी दृष्टि में इस परवाने का कोई मूल्य नहीं। आपको तो क़ुरआन की सचाई दार्शनिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करनी है। क़ुरआन तो विवादास्पद है। आप विवादास्पद को प्रमाणरूप में उपस्थित कर रहे हैं, यह दार्शनिक ज्ञान का बढ़िया प्रमाण है! एक गीदड़ के हाथ कहीं से काग़ज़ का एक टुकड़ा लग गया, लगा वह अपने गीदड़ भाइयों को दिखाने कि वह परवाना है—जिसे परवाना दिखाया जाएगा वह सलाम करेगा और भेंट देगा। एक दिन वास्ता एक सिंह से पड़ गया। श्री शृगाल-वलसलाम को भागना ही पड़ा और जब सजातीयों ने पूछा कि मियाँ, वह परवाना दिखा दो तो उनका सन्तोष इस रहस्य को बताकर किया कि शेर अनपढ़ है। मौलाना! दर्शन भी अनपढ़ शेर है। उसे फिर भी आक्षेप करना है। वह पूछता है कि आख़िर अल्लाह मियाँ ने किस बुद्धिमत्ता से यह परवाना आपको दे दिया? मख़लूक होने के कारण मनुष्य, बकरा, घोड़ा, गधा, सोना-चाँदी उसके लिए सब समान हैं तो फिर एक मख़लूक मारकर खानेवाली और दूसरी मारी जानेवाली, एक मख़लूक सवार और दूसरी सवारी, एक शोषित और एक शोषक क्यों बना दिये गये?

दूसरे शब्दों में, एक स्वामी और दूसरा दास क्यों बनाया गया? कहिये—क्या अल्लाह मियाँ की इच्छा से? इस प्रकार की स्वेच्छाचारिता तो तरङ्गियों की होती है—अफ़ीम की पीनक में किसी को कुछ और किसी को कुछ बना दें; अल्लाह मियाँ तो तरङ्गी नहीं? और मौलाना, वह परवाना आपको तो सुनाया गया, क्या बकरे को भी सुनाया गया कि तुमपर एक बादशाह भेजा जाता है, जो तुम्हें खा जाएगा? और फिर इन्सान खाने-ही-खानेवाला है या खाया जानेवाला भी? कभी निहत्थे किसी चीते के सम्मुख आ जाएँ तो परवाने का मूल्य लग जाए।

दर्शन के इन प्रश्नों का तो एक ही उत्तर है कि ईश्वर मनुष्य को जीवों में सबसे अधिक बुद्धिमान् जानता है, उसे स्वामी बना देता है और

सब वस्तुओं पर उसे उचित उपयोग का अधिकार देता है। मनुष्यों में भी अपने सजातीयों से—जिसे अधिक विद्वान्, अधिक बुद्धिमान जाना, उसे अल्पबुद्धिवालों पर अधिकार दे दिया, क्योंकि ईश्वर का अपना अधिकार पूर्ण ज्ञान अथवा सर्वज्ञता के आधार पर है। इसके विरुद्ध यदि स्वामित्व का अधिकार उत्पन्न करने के आधार पर होता, तो सांसारिक मालिकों को भी दासों को उत्पन्न करनेवाला बनाया जाता। सांसारिक स्वामियों का कम-स्वामित्व अधूरे ज्ञान के कारण है और ईश्वर का पूर्ण-स्वामित्व पूर्ण ज्ञान के कारण है।

चौथे तर्क की व्याख्या में मौलाना एक अप्रासंगिक विवाद में जा उलझे हैं जो ६० पृष्ठों में भी पूरा नहीं हो पाया। पृष्ठ ३८ पर आपने अपने आक्षेपों को संक्षिप्त रूप में लिखा है। व्याख्या दार्शनिक दृष्टिकोण से रहित है, अतः उसपर विचार करने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं; हम केवल संक्षिप्त प्रश्नों को लेकर ही मौलाना की तर्कसंगत बातों का उत्तर देंगे। मौलाना लिखते हैं—(क) "यदि ईश्वर जीव पर अधिकार करके उसे उपयोग में न लाता, तो क्या जीव नष्ट हो जाते?" श्रीमान् जी, अधिकार किया नहीं गया, अपितु अनादि काल से है। जीव को अनश्वर आप भी मानते हैं और हम भी। अन्तर आपमें और हममें इतना है कि आप ईश्वर को जीव का रचयिता भी मानते हैं। आप ही बताइये, यदि आपके मन्तव्यानुसार ईश्वर जीव को उत्पन्न करके उस पर अधिकार न करता, अपितु उसे स्वतन्त्र ही रहने देता, तो क्या जीव नष्ट हो जाते? अथवा (ख) "जीव का कोई गुण नष्ट हो जाता?" इसका उत्तर भी वही है, जो 'क' भाग में आया है। जीव उत्पन्न किया हो अथवा अनुत्पन्न, ईश्वर के स्वामित्व-अस्वामित्व का उसके शेष गुणों पर कोई प्रभाव नहीं; और फिर अधिकार करने-न-करने का प्रश्न आप पर तो आता है, हमपर नहीं। हम तो ईश्वर, जीव, दोनों को अनादि मानते हैं। उनका आपसी सम्बन्ध, स्वामी-दास का भी अनादि मानते हैं। आप जीव की उत्पत्ति मानते हैं; अधिकार तो उत्पन्न करने के पश्चात् होगा। प्रश्न आपपर है कि यदि जीव को उत्पन्न करके ईश्वर उसपर अधिकार न करता, तो जीव का कौन-सा गुण नष्ट हो जाता? (ग) "क्या जीव दुःखों में फँस जाते?" यहाँ इस मन्तव्य पर भी ध्यान दें कि सनातन काल से निरवयव (without combination) पदार्थ अपनी निरवयवता से थककर शरीर में बन्दी होना चाहता है।

यहाँ आपका संकेत हमारे इस सिद्धान्त की ओर है कि हम आत्मा को निरवयव मानते हैं, अर्थात् जीव सावयव नहीं। आप जीव की वास्तविकता से अपरिचित नहीं, जैसे कि भूमिका में लिखा जा चुका है। परन्तु सत्य तो सत्य ही है ! जब आपने आत्मा की सत्ता को स्वीकार कर लिया तो उसके गुण भी वही मानने होंगे जो जीव तथा प्रकृति के हैं; और दार्शनिक विद्वान् जैसा कहते हैं। आपने स्वयं पृष्ठ १४५ पर जीव के सम्बन्ध में लिखा है कि "जीवात्मा अकेली तथा अवयवरहित है, कुछ तत्त्वों से उसका निर्माण नहीं हुआ।" लीजिये, आपके मज़हव में भी जीव अवयवरहित है; और शरीर से सम्बन्ध होने में उसका निरवयव होना विरोधी है, तो इस आक्षेप को पहले अपने ऊपर कर लीजिये। सनातन काल से न सही, उत्पन्न होने के पश्चात् सही, एक निरवयव सत्ता अपनी अवस्था से थककर शरीर में वन्दी होना चाहती है। वस्तुतः निरवयव का विपरीतार्थक तो सावयव है; शरीर से सम्बन्ध उसका विपरीतार्थक नहीं है। जीव पहले भी निरवयव था, अब भी अवयवरहित है, आगे भी रहेगा। शरीर से सम्बन्ध होने को सावयव होना तो नहीं कहते ? मुक्ति की अवस्था में यह शरीर का सम्बन्ध भी टूट जाता है, परन्तु अब शरीर से सम्बन्ध है; सनातन अवस्था न यह है और न मोक्ष वाली, क्योंकि हर मोक्ष से पूर्व शरीर से सम्बन्ध और हर शरीर-सम्बन्ध से पूर्व मोक्ष की दशा रही है। मोक्ष तथा शरीर से सम्बन्ध उतना सनातन है जितना ईश्वर का जीव पर अधिकार। हाँ, इस अधिकार में परिवर्तन नहीं होता; मुक्ति तथा शरीर से सम्बन्ध की दशा बदलती रहती है, क्योंकि यह आत्मा के स्वकर्मों पर आधारित है; ईश्वर तो कर्मफल-प्रदाता ही है।

(घ) "यदि जीव पर ईश्वर अधिकार न करता तो वह अपवित्रता के समुद्र में प्रविष्ट हो जाता।" हम नहीं जानते कि अपवित्रता के समुद्र से आपका क्या अभिप्राय है। यदि नरक से है तो वह तो निश्चय ही अल्लाह मियाँ की अनधिकार-चेष्टा का परिणाम है। पहले तो उसने जीव को स्वयं उत्पन्न किया और वैसा बनाया जैसा वह चाहता था, अर्थात् पापी। यदि जीव को वह पापी न बनाता, तो उसका कौन-सा गुण नष्ट हो जाता ? शायद 'कह्हार' (अत्याचार ढानेवाला) को स्वयं को कह्हार प्रमाणित करने के लिए जीव में पाप करने की क्षमता दी। जब जीव ने उस क्षमता का उपयोग किया, अर्थात् अपने कर्ता के कर्तृत्व

को सार्थक सिद्ध किया, तो उसे नरक में डाल दिया। प्रथम तो ईश्वर यदि जीव को न बनाता तो क्या कमी आ जाती ? अपनी रचना-शक्ति का निशाना किसी और को बना लेता ! बनाया था, तो पाप करने की क्षमता न देता, क्षमता दी थी तो दण्ड का विधान न करता। किसी ने सच कहा है—**"ए मित्र, समुद्र के मध्य में तूने मुझे बाँधकर डाल दिया है और फिर कहता है कि वस्त्र का कोई भाग भीगने न देना, यह कैसे सम्भव है ?"**[1] दूसरे मुसलमानों की अपेक्षा कादियानियों का नरक नश्वर सही, परन्तु नश्वर नरक में भी कौन गिरना चाहता है ? किसने आवेदन-पत्र दिया था कि अल्लामियाँ, हमें अभाव से भाव में लाओ हमें अस्तित्व दो, और अस्तित्व भी वह जिसमें पाप करने की क्षमता हो, और जब मैं उस क्षमता का उपयोग करूँ, जो आपने स्वयं दी, तो नरक में डाल दो; आखिर यह कहाँ का न्याय है ? प्रथम तो पाप का मूल कारण ईश्वर ही ठहरता है। यदि यह न भी मानें, तो पाप करने में उसकी सहायता तो है ही, इसका कुछ दण्ड तो होना चाहिये ! वही कातिल, वही मुखबिर है, वही मुनसिफ़ भी। अकरबा मेरे करें खून का दावा किस पर ? अथवा (ङ) "क्या ईश्वर के अधिकार में आकर जीव दुःखों से छूट गया और धरती पर कुत्ते, सुअर, बिल्ले, बन्दर इत्यादि नहीं रहे ?"[2]

इसका उत्तर भी ऊपर दिया जा चुका है। आप ही बताइये कि नरक की सम्भावनाएँ अभी हैं अथवा समाप्त हो गईं ? आप तो समष्टि और व्यष्टि (कसरत तथा वहदत) के युगों को क्रमशः मानते हैं, अर्थात् कभी खुदा रचयिता के गुण को सार्थक करने के लिए संसार बनाने लग पड़ता है, कभी संहारक के गुण के आधीन सब-कुछ नाश करने लग जाता है। क्या आज से पूर्व कभी प्रलय हुई है या नहीं ? यदि हो चुकी है तो प्रलय से पूर्व की पापी आत्माएँ दोज़ख़ में गईं या नहीं ? नहीं गईं तो इस अन्याय तथा दोज़ख़ का वर्णन ही व्यर्थ है। यदि गई हैं तो पूर्व-काल

---

१. दरमियाने कारे-दरिया तखता बन्दम करदा ई।
बाज़ मेगोई कि दामन तर मकुन हुशयार बाश !

२. बिल्ले-बन्दर का संकेत सम्भवतः आयत (हमने कहा हो जाएँ बन्दर) की ओर है। यह आयत क्या एक ही समष्टि के युग के लिए थी, या हर युग में यह आयत चलेगी ? अन्तिम अवस्था में प्रश्न आप पर हो जाता है।

का दोज़ख़ तो मिट चुका, भविष्य में नया तैयार होगा; और यदि अनन्त काल तक यह सिलसिला चलना है, तो दोज़ख़ भी अपने प्रकार से अनन्त काल तक के होंगे। अपवित्रता तथा पाप का समुद्र अथाह है, और उसका रचयिता होने के कारण ईश्वर (खुदा) पाप का स्रष्टा है। इस पाप का कारण आप जिसे मानें, आख़िर अनादि सत्ता तो आप एक ही मानते हैं!

(च) अथवा "जीव जन्म-मरण के चक्र में प्रविष्ट होकर पवित्र हो गया और संसार से झूठ, फ़रेब, पाप, धोखा सब मिट गया।" मौलाना! मिटने की तो बाद में सोचना, पहले यह तो सोचिये कि इन बुराइयों का केन्द्र (स्रोत) कौन है? आखिर ये सब पाप गुण ही तो हैं! इनका गुणी कौन है? ध्यान रहे कि गुणी वह होगा जो अपनी सत्ता में स्वतन्त्र और अनादि हैं, और आपकी दृष्टि में वह अल्लाह मियाँ ही हैं। यदि अल्लाह मियाँ ने इन पापों को रचा हो तो उनका गुणी होने की अपेक्षा और बुरा हुआ कि उसने झूठ, धोखा, क़ुफ़्र इत्यादि पापों को घड़-घड़कर अपने रचित जीवों को भेंट कर दिया, अथवा जीवों को यह क्षमता दे दी कि वे यह पाप कर सकें; न करें तो ईश्वर-प्रदत्तक्षमता व्यर्थ जाए, अर्थात् ईश्वर की दी शक्ति का प्रयोग न करके उस शक्ति को व्यर्थ सिद्ध करें; यदि इस क्षमता का उपयोग करें तो दोज़ख़ में जाएँ।

रहा इन बुराइयों का बाक़ी रहना, सो आप ही बताइये कि जब खुदा ने सदा जीवों को उत्पन्न करते रहना है, तो क्या उसने किसी आपके पवित्र ग्रन्थ में यह विश्वास दिलाया है कि भविष्य में उत्पन्न होनेवाले जीव सारे-के-सारे धर्मात्मा होंगे? रचना का ईश्वर का गुण आपके मन्तव्य में निश्चित है, अनन्त काल तक यह गुण चलता रहेगा, तो बतलाइये, भविष्य की रचना में ये पाप रहेंगे या नहीं? यदि नहीं रहेंगे तो खुदा का पापों के सृजन का अब तक का गुण, कि वह पापों की सृष्टि करता रहा, और नहीं तो पाप करने की क्षमता ही देता रहा, क्या खुदा का यह गुण भविष्य में नष्ट हो जाएगा? अथवा (छ) "जीवों पर ईश्वर के अधिकार से कोई सन्तोषप्रद परिणाम निकला हो, अर्थात् जीवों को सदा का मोक्ष मिल गया हो, और अब उसे पवित्र होने के पश्चात् दुःखों से छूटने के साथ, दुःखों का भय भी न रहा हो।"

इस लम्बे विवाद में, जो अपवाद-रूप में आप ले आए हैं, आपने मोक्ष के सान्त अथवा अनन्त होने पर विचार किया है। आप मोक्ष को

शुभ कर्मों का फल नहीं मानते, अपितु परमेश्वर की कृपा का परिणाम मानते हैं। खुदा के करम (कृपाएँ) अनन्त हैं, अतः उसका परिणाम बहिश्त अथवा निजात (मुक्ति) भी आप अनन्त मानते हैं। लीजिए, आपका मन्तव्य आपके दूसरे मन्तव्य से कटता है। आप खुदा में उत्पन्न करने और विनष्ट करने के गुणों को अनादि मानते हैं। आपका विश्वास है कि कभी खुदा को समष्टि का युग आनन्द देता है, तो वह अपने अतिरिक्त अन्य जीवों को अस्तित्व प्रदान कर देता है, और जब उसे व्यष्टि-रूप में रुचि जागती है, तो अपने अतिरिक्त शेष सबका विनाश कर देता है। तो ये रुचियों के दौरे पहले भी तो आ चुके होंगे, क्योंकि ये अनादि हैं ? यदि आ चुके हैं, तो जब व्यष्टि का युग था तब सारे बहिश्त-दोज़ख़ समाप्त कर दिए होंगे ? यदि ऐसा न करता तो व्यष्टिपन में रुकावट होती; यदि सबको मिटा दिया तो फिर बहिश्त सदा कैसे रहा ? उसकी भी वही अवस्था रही जो हमारे मोक्ष की; तब ईश्वर की अनन्त कृपाओं को क्या कीजिएगा ? यदि आपका विश्वास यह हो कि व्यष्टि के दौरे से पूर्व स्वर्ग-नरक बनाए ही नहीं थे, तो इससे पूर्व समष्टि के युग के जीवों को कर्म-फल कैसे मिला ? आखिर व्यष्टि के युग में तो वे सब समाप्त हो गए होंगे, उसके पश्चात् उनका जन्म असम्भव; जो रचे जाएँगे वे नए होंगे। यदि उन्हें फिर जीवित किया जावे जिन्हें प्रलय के युग में मिटा दिया, तब विनाश पूर्ण न हुआ ! आप किसी रूप से सोचें, आपकी जन्नत (स्वर्ग) उतनी ही नश्वर है जितना हमारा मोक्ष, अपितु इससे भी अधिक, क्योंकि खुदा के समष्टि-व्यष्टि की रुचि के दौरे पर कोई प्रतिबन्ध तो नहीं ! वह ठहरा कादिरे-मुतलक (सर्वशक्तिमान्), यदि अभी व्यष्टि की रुचि जाग उठे, तो स्वर्ग समाप्त !

कादियानी बहिश्त (स्वर्ग) पर एक दृष्टि

इस्लामी बहिश्त (स्वर्ग) का जो रूप जन-साधारण के सम्मुख रहता है, सर सैयद अहमद उसे घृणित स्थान से उपमा देते हैं। वह रूप जनता में प्रसिद्ध है, अतः उसपर अधिक आलोचना की आवश्यकता नहीं। अहमदी मित्रों ने स्वर्ग का वह रूप बदल डाला। बहिश्त की हूरें (अप्सराएँ), ग़िलमान (सुन्दर छोकरे), शराब, शहद (मधु) इत्यादि वस्तुओं को आत्मिक आनन्द के रूप में प्रस्तुत किया। इसी सन्दर्भ में

ख्वाजा कमालुद्दीन 'जिन्दा मज़ाहब की कान्फ्रेंस' में लन्दन में इस्लाम की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं—"क्या आत्मिक स्वर्ग का विचार इससे सुन्दर रूप में उपस्थित किया जा सकता है? निश्चय ही क़ुरआन में बाग़ों, वृक्षों, दूध, मधु, मेवे इत्यादि कई वस्तुओं का वर्णन है, परन्तु ये शब्द केवल अलंकारिक शब्द हैं।" परन्तु यह मोड़ अहमदी जमात के कादियानी ग्रुप को पसन्द नहीं। जब एक बार शारीरिक सुख का चस्का पड़ गया तो उसे छोड़ना कठिन ही तो है!—

छुटती नहीं है मुँह से यह काफ़िर लगी हुई!

श्री मौ० मुहम्मद इसहाक तो आर्यों के मोक्ष को असम्भव अवस्था-सी बताते हुए लिखते हैं—"जब संसार में कोई सुख शरीर के बिना प्राप्त नहीं हो सकता, तो दूसरी दुनिया में कैसे प्राप्त होगा?" हमें ऐसा लगता है कि मौलाना ने तो क्या, मौलाना के बड़ों ने भी कभी समाधि की अवस्था का आनन्द नहीं उठाया। नहीं तो यहाँ ही वाणी मूक हो जाती। ख़ैर, यह तो कुछ दूर की बात है और सतत तपस्या के पश्चात् यह अवस्था प्राप्त होती है। कभी आप पल-भर के लिए ईश्वर के ध्यान में मग्न हुए हो? आख़िर आप धार्मिक वृत्ति के मुसलमान हैं, भक्ति का आनन्द कभी तो मिला होगा? क्या इस आनन्द की अनुभूति शरीर तथा इन्द्रियों से होती है? और क्या इस आनन्द की तुलना में शारीरिक सुखों का कुछ मूल्य है? आर्यों का मोक्ष केवल आत्मिक आनन्द की दशा है, जिसका कुछ रूप ईश्वर की भक्ति में एकाग्रता प्राप्त करने पर हम यहाँ भी देखते हैं। समाधिस्थ योगी को भी कुछ काल के लिए वह आनन्द की अवस्था प्राप्त हो जाती है। परन्तु मौलाना की दृष्टि में भक्ति के क्षणों में भी क्या होता होगा? लिखा है—**"बहिश्त में ख़ालिस शहद की नहरें होंगी...हर प्रकार के पवित्र पक्षियों का मांस भी वहाँ मिलेगा।"** (पृष्ठ १०९)

इस मांस के लिए क्या बहिश्त में नये पक्षी उत्पन्न किये जाएँगे, अथवा इस संसार से बहिश्त में पक्षियों को transfer किया जाएगा? अर्थात् क्या बहिश्त में मनुष्यों के अतिरिक्त पक्षी भी जाने के अधिकारी होंगे? क्या उन्हें कत्ल भी किया जाएगा? इस कर्तव्य को कौन ईश्वर-भक्त मोमिन निभाएगा? ख़ैर, आपका बहिश्त सलामत! वहाँ हत्या तो होगी नहीं, परन्तु आपको क्या? आपको तो खाने के लिए मांस चाहिए। फिर फ़रमाते हैं—"मोती के समान सुन्दर बच्चों का मधुबाला

बनकर पवित्र शराब के प्याले, फिर इन प्यालों पर स्वर्ग-निवासियों की आपस में शिष्टाचारपूर्ण छीना-झपटी, फिर नवयुवती, सुन्दर, गोरे रंग की, काली आँखों वाली, समान आयु की कुमारी, लजालु पवित्र पत्नियाँ—एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं, अपितु सत्तर-सत्तर (७०) होंगी, परन्तु आपस में ईर्ष्या का नाम नहीं होगा। कोमलता इस प्रकार की कि पिण्डली का गूदा (मांस) नज़र आएगा।" (पृष्ठ ११०)

हम तो आपके इस कथन से ही अनुमान लगाते हैं कि मुसलमान क्यों फ़सादों में प्रायः लोगों की पत्नियों पर हाथ उठाते हैं? जहाँ नमाज़ का, क़ुर्आन के पाठ का, यहाँ तक कि हर धार्मिक कृत्य का लक्ष्य पिण्डली का गूदा, काली आँखें, गोरा रूप प्राप्त करना हो, वह भी एक नहीं, सत्तर-सत्तर, वहाँ शान्ति तथा अम्न का चिह्न भी कैसे मिल सकता है? किसी का क्या सम्मान सुरक्षित होगा? शारीरिक सुखों का परिणाम तो गन्दगी का ढेर ही है। मौलाना जो मांस भक्षण करेंगे, तो उसका भी मल बनेगा या नहीं? इसके लिए बहिश्त में मेहतरों का प्रबन्ध भी तो चाहिए! क्या मेहतर भी बहिश्त के सुख को प्राप्त कर सकेंगे? श्रीमान्‌जी, शारीरिक सुखों के साथ शरीर की घृणित वस्तुएँ भी साथ हैं। आप फिर लिखते हैं—"इस संसार में कई सुखों से उकता-कर दूसरे सुख की इच्छा जागती है। यह बात संसार में शारीरिक अंगों की दुर्बलता, यहाँ के पदार्थों की त्रुटि के कारण है।" (पृष्ठ ११४) फिर फ़रमाते हैं—"बहिश्त में न रोग हैं, न हमारे खानों में व्यस्त रहने से माल में कमी, न कर्तव्य से प्रमाद!" (पृष्ठ १२४) "इस संसार में शराब प्रायः कड़वी होती है, परन्तु बहिश्त की शराब अत्यन्त मधुर।" (पृष्ठ १२७) "सत्तर-सत्तर हूरें होंगी, परन्तु इस संसार के समान बुरा परिणाम न होगा कि एक पुरुष अधिक स्त्रियों को नहीं सँभाल सकता, अतः वे दूसरे पुरुषों की ओर रुचि लेने लगती हैं। वहाँ पुरुषों में दुर्बलता तथा त्रुटि नहीं होगी।" (पृष्ठ १२९)

प्रश्न यह है कि इन हूरों (अप्सराओं) का पुरुष करेंगे क्या? क्या वही जो यहाँ करते हैं? या कुछ और? यह मान लिया कि पुरुषों में दुर्बलता नहीं आएगी, क्योंकि बहिश्त में आपने पुरुषों में शक्ति संसार के पुरुषों से कई गुना अधिक मान रखी है, तो क्या इसी हिसाब से स्त्रियों में भी शक्ति होगी या कम होगी? मोमनात को क्या मिला? शक्तिशाली पुरुष? जो एक-एक सत्तर-सत्तर का पति हो? चलो, इसे

छोड़िए कि आप ने बहिश्त में शक्ति की क्षीणता को रोकने तथा बाल-बच्चों के पैदा न होने के क्या उपाय किये हैं, क्योंकि यहाँ भी सन्तान की अधिकता को रोकने के उपाय हैं, मगर स्वर्ग में इनपर क्या प्रतिबंध होगा ? हमें तो रह-रहकर यह विचार आता है कि स्वर्ग में कर्म क्या होगा ? इन हूरों-ग़िलमान में मनुष्य का क्या करते समय बीतेगा ? फिर आप कहते हैं कि कर्तव्य-पालन में भी प्रमाद न होगा। क्या वहाँ हूरों-ग़िलमान के वासनामय जीवन में नमाज़ होगी ? अथवा यही सुख ही नमाज़ समझा जावेगा ? इसका उत्तर आपने पहले इस प्रकार दिया है—"हम बहिश्त में केवल शारीरिक सुख ही नहीं मानते, अपितु उससे बढ़कर आत्मिक आनन्द पर विश्वास रखते हैं।" (पृष्ठ १३४) ठीक, तो हूरो-ग़िलमान का सुख तो आत्मिक सुख में सम्मिलित नहीं; तो जनाब, इन दो प्रकार के सुखों में प्रसन्नता की कमी-बेशी तो होगी ही; या नहीं ? यदि आत्मिक आनन्द शारीरिक सुख से अधिक सुखद हो तो क्या अच्छा न होगा यदि शारीरिक सुख के स्थान पर भी आत्मिक आनन्द ही मिले ? क्योंकि जो समय शारीरिक सुखों में कटेगा, वह आत्मिक सुखों से तो वंचित करनेवाला समय होगा ! एक और प्रार्थना भी यहाँ करनी है कि उन आत्मिक सुखों की प्राप्ति शरीर के किस अंग से होती है ? यदि यह सुख शरीर की सहायता के बिना सीधा आत्मा को प्राप्त हो सके तो क्या आप अपने मन्तव्य पर दोबारा दृष्टि-पात करेंगे ?

"आर्यों का मोक्ष एक विचित्र अवस्था का नाम है, जिसका वर्णन सुनकर ज़रा भी मोक्ष-प्राप्ति की इच्छा नहीं होती, क्योंकि हमने इस संसार में शरीर के बिना केवल आत्मा की अनुभूति का कोई उदाहरण नहीं देखा।" (पृष्ठ १९) श्रीमन्, उदाहरण तो आपको भक्ति के क्षेत्र में दिखा दिया और बहिश्त की आत्मिक आनन्द की अवस्था में भी; यदि अब भी मानने से इन्कार है तो शरीर के उस अंग का नाम बताइये जिससे आत्मिक आनन्द प्राप्त होता है। अंतर इतना रहा कि आर्यों के मोक्ष में केवल आत्मिक आनन्द है, जो सर्वोत्तम है; आपके बहिश्त में आत्मिक सुख के अतिरिक्त हूरों से शुग़ुल भी है जो आत्मिक सुख की तुलना में तुच्छ है। और क्या आपसे भी हूरों से सम्बन्ध का वह उदाहरण माँगा जा सकता है, जिसमें दुर्बलता या क्षीणता न आए ? उस शराब का नमूना माँगा जा सकता है जिससे बुद्धि का नाश न हो ?

उस भोजन के सम्बन्ध में उदाहरण पूछा जा सकता है, जिसके अधिक खाने-पीने पर भी पेट न भरे, और न रोग हो ? क्या यह बहिश्त संसार में प्रसिद्ध तथा प्रचलित अवस्था का द्योतक है। आर्यों के मोक्ष पर आक्षेप किया, और अपने बहिश्त को ही खो बैठे ! आख़िर आपने ही तो लिखा है—"अप्रसिद्ध वस्तुओं की ओर मनुष्य का ध्यान नहीं जाता।" ग़रीब मोमनात (मोमिन स्त्रियों) का क्या बना, यह हम नहीं समझे, उनकी शक्ति बढ़ी या कम हुई और उस शक्ति का उपयोग ?

मौ० मुहम्मद अली अपनी क़ुर्आन की व्याख्या में तथा ख़्वाजा कमालुद्दीन अपने वक्तव्य में लिखते हैं कि 'हूरों' (अप्सराओं) से अभिप्राय इसी संसार की पत्नियाँ हैं, जो अपने पतियों के साथ स्वर्ग में जाएँगी। परन्तु वे स्वर्ग में सत्तर-सत्तर की संख्या में कैसे हो जाएँगी ? और यदि पत्नी अपने कर्मों से स्वर्ग की अधिकारिणी न हुई, तब ? क्या उसके नरक में रहने तक स्वर्ग में रहनेवाला पति ब्रह्मचारी रहेगा ? और यदि पतिदेव अपने अशुभ कर्मों से नरक को प्राप्त हुए तो उनकी पवित्र पत्नी स्वर्ग में पति की प्रतीक्षा करेगी ? अथवा देवी के पवित्र कर्मों का फल उतने समय के लिए टाल दिया जाएगा ?

122967

ज्ञान की कमी (अल्पज्ञता)

पाँचवें तर्क का उत्तर—

कुछ देर के लिए हम अपने विवादास्पद विषय से अलग हो गए थे, इसका कारण मौलाना का एक विषय पर विचार-विनिमय से हटकर दूसरे असम्बद्ध विषय पर विवाद करना रहा। हम इस विषय पर अधिक नहीं लिख पाये, केवल मौलाना को उनकी स्थिति की दुर्बलता दिखाना हमें अभीष्ट था।

मौलाना महोदय का पाँचवाँ तर्क क़ुर्आन की एक आयत पर आधारित है। इस आयत में जीव के स्वरूप के सम्बन्ध में प्रश्न किया गया है—**"यस लोनक अलरूह ?"** अर्थात् 'लोग तुझसे पूछते हैं कि जीव क्या वस्तु है ?' उपयुक्त तो यही था कि मौलाना सर्वप्रथम क़ुर्आन शरीफ़ के शब्दों में ही आत्मा के स्वरूप को बता देते, परन्तु उनका बहुत झिझक के पश्चात् क़ुर्आन से इस विषय को कहना प्रमाणित करता है कि स्वयं मौलाना को क़ुर्आन की बताई परिभाषा से सन्तोष नहीं है। सुनिये

क़ुर्आन का इस प्रश्न पर उत्तर—**कुल अलरूह ?**

"ऐ मुहम्मद ! कह कि जीव परमात्मा के आदेश से हैं और तुम नहीं दिये गए हो (इसका) ज्ञान, परन्तु थोड़ा-सा।"

यह वह अनुवाद है जो प्रायः मुसलमान इस आयत का किया करते हैं। हज़रत इमाम ग़ज़ाली से पूर्व इस आयत की यही व्याख्या प्रचलित थी, और अब भी है। मौ० आज़ाद सुबहानी, जिनके वक्तव्य की भूमिका से यह उद्धरण प्रस्तुत किया गया है, इस आयत की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं—"जीव के सम्बन्ध में प्रश्न किया गया था, परन्तु यदि उत्तर दिया जाता तो यहीं से इस्लाम में व्यर्थ विवाद आरम्भ हो जाता।" इन शब्दों का अभिप्राय स्पष्ट है कि क़ुर्आन ने प्रश्न का उत्तर नहीं दिया, बल्कि प्रश्नकर्ता को यह कहकर टाल दिया है कि तुम्हें बहुत थोड़ा ज्ञान दिया गया है। प्रश्न पर क़ुर्आन का अल्लाह स्वयं रसूल और उनके साथियों को कुछ प्रकाश डालने से इन्कार करता है। इसपर क़ादियानी मौलाना का वाद-विवाद करना स्वयं को रसूल या उसके साथियों से अधिक विद्वान् प्रमाणित करने का प्रयास नहीं तो क्या है ? सत्य यही है कि क़ुर्आन और क़ुर्आन का लेखक आतमा तथा उससे सम्बद्ध प्रश्नों को अपने मज़हब से दूर ही रखना चाहता है। सम्भव है इसका कारण उस युग की (जब क़ुर्आन बना) अज्ञानता हो, अथवा इस इन्कार में कोई और नीति कार्य करती हो।

इमाम ग़ज़ाली क़ुर्आन की आयत की इस व्याख्या से सहमत नहीं। क़ुर्आन में कहे शब्द 'अमरे रब्बी" में 'अमर' के अर्थ वह निरवयव का उत्पन्न करना मानते हैं, सावयव का नहीं। यह ग़ज़ाली महोदय की अपनी व्याख्या है। मौ० सुबहानी लिखते हैं—"न्याय यही है कि आयत में जीव के सम्बन्ध में विस्तार से नहीं है, और विस्तार से न होना ही उपयुक्त है।"

व्याख्याकारों का मत है कि उपर्युक्त आयत प्रश्न के उत्तर में मौन है। अहमदी मित्रों ने इस विषय में अपना मन्तव्य मौ० ग़ज़ाली की व्याख्या के आधार पर बनाया है। श्री मुहम्मद इसहाक़ साहब लिखते हैं—"जीव केवल ईश्वर के आदेश से प्रकट होता है। वह न सावयव है और न सनातन, बल्कि निरवयव और उत्पन्न हुआ-हुआ है।" (पृष्ठ १४६) आयत के दूसरे भाग का भाव स्पष्टतया यही है कि तुम्हें आत्मा-सम्बन्धी प्रश्नों के सम्बन्ध में थोड़ा ज्ञान दिया गया है; इससे अधिक

पूछने का व्यर्थ प्रयास अथवा दुस्साहस न करो। परन्तु इन मौ० महोदयों को इन शब्दों में आत्मा के सादि होने का प्रमाण लगता है; लिखते हैं—"तुमको थोड़ा-सा ज्ञान है, अर्थात् केवल इस जन्म का, इससे पूर्व किसी जन्म का तुमको कोई भी ज्ञान नहीं। इससे सिद्ध हुआ कि इससे पूर्व कोई जन्म न था, अतः आत्मा अनादि नहीं।" श्री गज़ाली तो केवल 'अमर' (आदेश) शब्द की व्याख्या तक पहुँचे थे, परन्तु इस व्याख्या को कई सौ वर्ष निकल गए। इस विषय में कुछ तो प्रगति होनी चाहिए थी। अतः अब 'थोड़ा ज्ञान' की भी व्याख्या की गई कि 'केवल इस जन्म का ज्ञान'। ये अर्थ किस कोश के आधार पर किये गए हैं? क्या क़ुर्आन के लेखक के पास शब्द कम थे कि 'इल्मे-क़लीला' (थोड़ा ज्ञान) के स्थान पर **'इलाअलयात मौजूदा'**—'इस जन्म के ज्ञान' शब्द न लिखे और स्वयं मुसलमानों में, विवाद का सदा का कारण प्रस्तुत कर दिया? वास्तविकता यह है कि स्वयं क़ादियानी महानुभाव क़ुर्आन के इस कथन से सन्तुष्ट नहीं हैं। इस कथन में शाब्दिक हेरा-फेरी नहीं कर सकते तो अर्थ की हेरा-फेरी तो रोज़ करते रहते हैं।

अब हम मौ० साहब के तर्क का विश्लेषण करते हैं। इस तर्क का आधार व्यर्थ ही क़ुर्आन की आयत को बना दिया गया है। तर्क ग़लत है, इस तरह से क़ुर्आन को व्यर्थ में ग़लत होने का बोझ लेना पड़ेगा। मौ० का तर्क है कि क्योंकि किसी पूर्व-जन्म का ज्ञान हमें नहीं है; अतः इस जन्म से पूर्व कोई जन्म हुआ ही नहीं। क्या मौलाना ने इस तथ्य पर कभी ध्यान दिया है कि इस जन्म की भी कई घटनाएँ कुछ काल के पश्चात् स्मृति से खो जाती हैं? क्या भूल जाने के कारण इन घटनाओं के वस्तुतः होने पर भी कोई सन्देह होगा? मौ० आर्यों के इस तर्क पर फ़रमाते हैं कि जहाँ कई ऐसी घटनाएँ हैं जो कुछ काल पश्चात् भूल जाती हैं, वहाँ कई जीवन-तथ्य ऐसे भी हैं जो भुलाने पर नहीं भूलते, जैसे आर्यों को पं० लेखराम का बलिदान-दिवस सदा याद रहता है। अच्छा होता यदि मौलाना इस दुःखद घटना के स्थान पर किसी और घटना का वर्णन कर देते, या कम-से-कम लेखनी से नश्तर का कार्य न लेते। आप लिखते हैं कि **"इलाया दुश्मने नादानो बेराह, बतरस अज़ तेग़े-बुर्रानि-मुहम्मद।"** (ऐ नादान! शत्रु मुहम्मद की तेज़ तलवार के वार से भय खा।) के अनुसार "मुहम्मद-सल-अला सलेह-वा सलअम की तलवार के तेज़ वार ने तुम्हारे सिपह-सालार का ख़ात्मा कर

दिया था।"

उपर्युक्त पद्य, अर्थसहित मौ० ग़ुलाम अहमद क़ादियानी का है। इसमें हुतात्मा पं० लेखराम को क़त्ल की धमकी दी गई है। पं० जी को क़त्ल करनेवाला एक मुसलमान था, जो आया तो था शुद्ध होने, और पं० जी से आर्य धर्म की शिक्षा लेने, परन्तु निकला बर्बर अत्याचारी। ऐसे कायर को हज़रत मुहम्मद की तलवार बताना मुहम्मद साहब के महत्त्व को बढ़ाना तो नहीं हो सकता! निश्चय ही यह तलवार जनाब क़ादियानी पैग़म्बर की थी। पं० लेखराम का बलिदान, और वीरतापूर्ण बलिदान में भय का स्थान ही नहीं। इस बलिदान ने तो मित्र, शत्रु, सबसे प्रशंसा प्राप्त की है और भविष्य में भी सदा इस बलिदान का प्रशस्ति-गान होता रहेगा। हाँ, जनाब मसीह मौऊद (ग़ुलाम अहमद क़ादियानी) की अपनी मृत्यु जो हैज़ा के रोग से हुई, उससे शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए।

(श्री मनोहर लाल शहीद का यह शे'र इस अवसर पर हम भुला नहीं सकते, जो उन्होंने मिर्ज़ा क़ादियानी की इस बुरी मृत्यु पर लिखा था—

तू था इल्हामज़दा और मरा टट्टी में,
यह सज़ा दावाए-बातिल की पाई मिर्ज़ा!)

क्या जाने, हमारा अपना परिणाम क्या हो, मौलाना! मृत्यु किसी व्यक्ति की तलवार से नहीं, अपने कर्मों की तलवार से होती है। परमात्मा सबको शुभ कार्य करने की सुमति दे! पं० लेखराम की उदारता तो आर्य-अनार्य सबके लिए अनुकरणीय है कि अपने क़ातिल पर भी दया की और अन्तिम समय में उसे भी मुहब्बत से याद किया!

मौलाना के लिखने का अभिप्राय यह है कि वर्तमान जन्म की कई घटनाएँ, विशेष रूप से वे घटनाएँ जो या तो बार-बार दोहराई जाएँ अथवा जिनका व्यक्ति के मन पर गहरा प्रभाव रहा हो, स्मरण रह जाती हैं। प्रश्न यह है कि क्या बीते जन्मों में कोई ऐसी घटना नहीं हुई जिसकी याद रह जाती?

आपने स्वयं आर्यों की ओर से उत्तर में कहा है कि नवजात शिशु का माता के स्तन की ओर जाना, कभी हँसना, कभी रो पड़ना, पूर्व-जन्मों के अभ्यास का परिणाम है, नहीं तो इस जन्म में तो इन कार्यों की शिक्षा हुई ही नहीं। परन्तु मौ० साहब ने इस उत्तर से स्वयं आँखें मूंद

ली हैं; बताया नहीं कि नवजात शिशु के ये कार्य किस दी हुई शिक्षा के किये उस अभ्यास का परिणाम है ? यदि मौलाना बौद्धिक[1] चेतना के ज्ञान से परिचित हों, तो उन्हें ज्ञात हो कि कोई भी इरादे से की गई क्रिया अथवा अनुभूति, पूर्व-जन्म अथवा वर्तमान जन्म के अभ्यास के बिना सम्भव नहीं।

पूर्व-जन्म की अनुभूतियों के स्मरण का दूसरा उदाहरण मृत्यु का भय है जो बच्चे से लेकर वृद्ध व्यक्ति पर सदैव छाया रहता है। यद्यपि मृत्यु को इस जीवन में स्वयं किसी ने नहीं देखा (फिर भी भय है), इस प्रश्न का भी कोई उत्तर मौलाना के पास होता तो लिख देते; मातृदुग्ध के समान प्रश्न को पी ही तो गए !

पूर्व-लिखित दोनों कर्म तथा अनुभूतियाँ हर व्यक्ति के जीवन में आते हैं और बार-बार आते हैं। अन्तिम (मृत्यु) की घटना तो हृदय को हिला देती है, इसलिए इन तीनों का प्रभाव मन पर सबसे गहरा होता है। वह प्रभाव अथवा संस्कार प्रत्येक जीव हर जन्म में अपने साथ ले जाता है।

इन सब उदाहरणों से आँख मूँदकर मौलाना का कहना है कि बचपन की घटनाएँ और अनुभूतियाँ इस कारण भूल जाती हैं कि जीव चिन्तन तो स्वयं करता है, परन्तु चिन्तन के साधन मस्तिष्क तथा पुट्ठे बचपन में पूरे सशक्त नहीं होते, इसलिए शैशव-काल की घटनाएँ स्मरण नहीं रहतीं। यही तर्क किसी काल्पनिक आर्य से पूर्व-जन्मों की घटनाओं के विस्मरण में भी आपने दिला दिया है। जनाब, कोई प्रमाण ही दे देते, तर्क देनेवाले का नाम दे देते तो बात भी थी। स्वयं तर्क घड़ना, किसी काल्पनिक व्यक्ति से उसे जोड़ देना और फिर उसका उपहास करना कहाँ की शिष्टता है और कहाँ का तर्क। किसी बुद्धिवादी से पूछ लेते कि पाँच या छह वर्ष में अथवा उसके पश्चात् भी मनुष्य का मस्तिष्क किसी वस्तु के स्मरण के योग्य नहीं होता ? यदि सचमुच ऐसा होता तो आप दो वर्ष के बच्चे को बाबा, चाचा, मामा वगैरह बोलना न सिखाते ! यह शिक्षा तो शैशव-काल में दी जाती है, परन्तु प्रायः बच्चों को इस आयु की कोई और घटना स्मरण नहीं रहती। और तो और, कई मुसलमान बन्धु अपने बच्चे का इस आयु में

---

१. (इल्मुलजरान)

ख़तना (लिंग के आगेवाले चमड़े के भाग को काट देना) भी करा देते हैं, इससे बच्चे को कष्ट भी होता है, उस कष्ट का मन पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है, बच्चे के रोने से यह प्रभाव स्पष्ट व्यक्त होता है, परन्तु क्या बड़ी आयु में वह इसे याद कर पाता है कि अमुक अवस्था में अमुक स्थान पर उसका **ख़तना** हुआ था ? और यदि ऑपरेशन भी हो जाए तो क्या बड़ी आयु में बच्चे को याद रहता है ? एक लड़की के तो शैशव-काल में सात ऑपरेशन हुए, परन्तु बड़ी आयु में उसे एक भी याद न था।

इसपर आपका प्रश्न है कि यदि पूर्व-जन्म में किसी जीव ने हिरन के रूप में किसी सिंह से मृत्यु देखी हो, तो उसे दूसरे जन्म में स्मरण क्यों न रहे ! यह मौलाना का सत्य से आँखें मूँदना है। भला सात आपरेशन सिंह के आक्रमण से कम भयानक होते हैं ? हम स्मृति को जीव का कार्य मानते हैं; शरीर के अंग इसमें सहयोग दे सकते हैं; परन्तु इन अंगों पर स्मृति आधारित नहीं। योगी समाधिस्थ होकर पूर्व-जन्मों के हालात को जानता है। बुद्धि के विकास के ज्ञाता यह कहते हैं कि यह पूर्ण नियम है कि शरीर के पुराने भाग धीरे-धीरे जीर्ण होते जाते हैं और नये कण हर क्षण उन जीर्ण कणों का स्थान लेते रहते हैं; यहाँ तक कि सात वर्ष में पूर्ण शरीर ही बदल जाता है। यदि स्मरण-शक्ति मस्तिष्क अथवा पुट्ठों की शक्ति ही हो तो पुराना मस्तिष्क और पुट्ठों के साथ वह स्मृति भी खो जाए, परन्तु ऐसा नहीं होता। घटनाएँ जीव के सम्मुख रहती हैं और उन घटनाओं का रिकॉर्ड (Record) भी जीव के पास ही होता है, परन्तु पूर्ण एकाग्रता और मानसिक प्रकाश के अभाव में यह स्पष्ट नहीं होता। योगी उस परदे को अपनी एकाग्रता की शक्ति से हटाता है, अतः योगी के सम्मुख वे सारी घटनाएँ अपने पूरे विवरण के साथ, जो जीव के पास विद्यमान थीं, योगी को स्पष्ट हो जाती हैं। तभी तो श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन से कहा—"मेरे और तेरे कई जन्म बीत चुके हैं, जिन्हें मैं जानता हूँ परन्तु तू नहीं जानता—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन !
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ।। (गीता)

और मौलाना रूम फ़रमाते हैं—

हमचू सब्ज़ा बारहा रोईदा अम।
हश्त सद हफ़ताद् क़ालिब दीदा अम ।।

(मैंने सब्ज़ा के समान सैकड़ों शरीर देखे हैं, मैंने कई बार जन्म लिया है)।

मौलाना रूम तो निश्चितरूपेण आर्यसमाजी नहीं थे, परन्तु समाधि-अवस्था में पहुँचते होंगे, और उन्होंने उस सत्य को स्पष्ट होकर अपने नाम से कहा, जिसे आर्य लोग सनातन काल से कहते आये हैं।

परन्तु श्रीमन्! आपने उस घटना का क्या किया, जिसे पं० लेखराम के आवागमन के प्रमाणों से उद्धृत किया है कि ग्राम कन्धा में में मोहनलाल ठाकुर बन्दूक से मारा गया और उसी वर्ष गरीबपुर ग्राम में एक लड़का उत्पन्न हुआ जो तीन वर्ष की आयु में बन्दूक की आवाज़ सुनकर रोने लगा। पूछने पर उसने अपने भय का कारण बताया कि पूर्व-जन्म में उसे हरवल्लभ ने बन्दूक से मार दिया था। उसने उसके पश्चात् हरवल्लभ को पहचान भी लिया और इस घटना का सबने अनुमोदन किया। क्या यह घटना पूर्व-जन्म की सिद्धि का स्पष्ट प्रमाण नहीं? और यदि मौलाना समाचारपत्रों को पढ़ने के अभ्यस्त हों, तो इस प्रकार की घटनाएँ पत्रों में प्रायः आती रहती होंगी! स्टेशन हलद्वानी के स्टेशनमास्टर श्यामसुन्दर लाल गोकुल गए। वहाँ उनकी पुत्री एक घर में प्रविष्ट हुई और अपने वाक्यों का प्रयोग पुंल्लिग में किया। उसने अपनी पूर्व-जन्म की माता को पहचाना, अपनी पुरानी चौकी पर जा बैठी, घाट पर आई तो कहा कि यहीं मुझे एक मकर (मगरमच्छ) ने मारा था। वृद्धा ने इन घटनाओं का अनुमोदन किया।

ऐसी घटनाएँ भारत तथा योरुप के पत्रों में प्रायः छपती रहती हैं। लेखक की हिन्दी पुस्तक **'वैदिक दर्शन'** में भी ऐसी दो घटनाएँ लिखी हैं। इस प्रकार की घटनाओं ने पश्चिम के विद्वानों को न केवल जीव के अस्तित्व को मनवा लिया है, अपितु वे आवागमन के सिद्धान्त को भी स्वीकार कर रहे हैं। परन्तु भारत के मौलाना हैं कि ज़मीं जुम्बद, न जुम्बद गुल मुहम्मद'—सारा संसार परिवर्तित हो जाए, परन्तु यह अपनी रूढ़िवादिता त्यागने को तैयार नहीं हैं!

लीजिये, अब तो पूर्व-जन्मों का आँखों-देखा प्रमाण मिल गया, इसपर क्या कहियेगा? आपने ऐसे बच्चों का वृत्तान्त पढ़ा होगा जो बिना किसी पूर्व-शिक्षण के कई विद्याओं में पारंगत पाए गए। उदाहरणार्थ, पत्रिका 'थियोसोफ़िस्ट' में न्यूयॉर्क के पत्र 'ईवनिंग पोस्ट' (Evening Post) से एक बालक का वृत्तान्त उद्धृत किया है, जो आठ

वर्ष में ही संगीत विद्या में निपुण है। बालक के पिता का नाम निकोलीन डडलर है जो अमेरिका के नेशनल आरकैस्ट्रा का प्रबन्धक है। स्टील के स्थान पर रहनेवाली लॉरंस लुईस सिंगरीन तीन वर्ष की बालिका है। वह प्यानो पर कई कठिन-से-कठिन गीत गा सकती है। राबल मारो एक विचित्र बालक है; दो वर्ष की आयु में उसने शिक्षा आरम्भ की, और साढ़े तीन वर्ष की आयु में इतिहास, भूगोल, बौद्धिक विकास आदि विषयों के सम्बन्ध में विस्तृत परिचय रखता है; लातीनी भाषा में गिनती कर सकता है, गान-विद्या में निपुण है। इस प्रकार के अन्य भी कई दृष्टान्त हैं। यह पूर्व-जन्मों के अभ्यास का ही तो परिणाम है, नहीं तो कोई दार्शनिक उत्तर दीजिये जो बुद्धिवादी को सन्तुष्ट कर सके। अतः आपका यह तर्क कि 'पूर्वजन्म का ज्ञान नहीं, अतः पूर्व-जन्म है ही नहीं' उपर्युक्त उदाहरणों के द्वारा स्वयं निरस्त हो गया। अब कृपया अपनी कल्पना क़ुर्आन पर न थोपें कि अल्पज्ञान का अभिप्राय है केवल इसी जन्म का ज्ञान। क़ुर्आन तो ठीक कहता है कि आपका ज्ञान अल्प है; यथा—उन घटनाओं का आपको ज्ञान नहीं, जिनका ऊपर हमने वर्णन किया है। ऐसे दृश्यों का ज्ञान नहीं जिसमें स्मरणशक्ति ने जीव का नहीं, मस्तिष्क का कार्य किया हो; ऐसे किसी नियम का ज्ञान नहीं कि पाँच या सात वर्ष की आयु के बच्चे के पुट्ठे घटनाओं को स्मरण करने में सक्षम नहीं होते, इत्यादि; और सबसे बढ़कर इस सिद्धान्त का ज्ञान नहीं कि जीव आवागमन के चक्कर में रहता है!

प्रत्येक परिवर्तनशील वस्तु नश्वर नहीं

छठे तर्क का उत्तर—

मौलाना ने अपनी छठी दलील का आधार क़ुर्आन की इस आयत को बनाया है।

अर्थ—"संसार में प्रत्येक वस्तु (ईश्वर के अतिरिक्त और उसके गुणों तथा महत्त्व के अतिरिक्त) नाशवान् और परिवर्तनशील तथा नश्वर है।"

इनसे कोई पूछे कि 'नश्वर है' किस शब्द का अर्थ किया है? वहाँ तो खुदा के अतिरिक्त हर वस्तु को नाशवान् कहा है, तो आप फ़रमाइये कि स्वर्ग (बहिश्त) में रहनेवाले नाशवान् हैं या नित्य? यदि आप कहें

कि विनाश इहलौकिक (सांसारिक) वस्तु का होता है, पारलौकिक का नहीं, तो भी जन्नत में रहनेवाले होंगे तो इसी धरती के वासी ? हाँ, इतना अवश्य है कि एक बार वे मृत्यु को देख चुके होंगे। परन्तु यदि यही मृत्यु ही आपकी दृष्टि में विनाश है, तब तो हर वस्तु नाशवान् भी हो सकती है और नित्य भी। इस विनाश से तो हमें भी इन्कार नहीं। इस मृत्यु पर, जिसके होने से जीव के नित्य और हमारे विचार में अनादि होने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, हमें भी स्वीकार है और आपको भी। हाँ, ईश्वर इससे बचा हुआ है, तो फिर आपने इससे यह अर्थ कैसे जाना कि जीव तथा प्रकृति नश्वर हैं ? क़ुर्आन को आप ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं, कृपया अपनी अधूरी कल्पनाएँ क़ुर्आन से मत जोड़िये ! आपका तर्क है कि जो वस्तु परिवर्तनशील होगी, अवस्थाओं को बदलेगी, वह सनातन नहीं हो सकती, अपितु नश्वर होगी (पृष्ठ १७२)। यदि आप इसमें एक शब्द बढ़ा दें, अर्थात् 'जो वस्तु' के स्थान पर 'जो कार्यरूप में परिवर्तित वस्तु' लिख दें तो हम भी आपसे सहमत हैं। 'अवस्था' एक गुण है जो गुणी पर लागू होती है। गुणी यदि कार्य है तो नश्वर है, यदि कार्य न हो तो उसे नश्वर नहीं कह सकते। हर कार्य का कारण होता है। वह कारण यदि किसी का 'कार्य' हो तो नश्वर होगा, परन्तु यदि कार्य न हो तो सनातन है। हम जीव को कार्य नहीं मानते, अतः जीव नश्वर नहीं है।

यदि आपका आग्रह ही है कि परिवर्तनशील वस्तु चाहे कार्य हो या कारण, नश्वर होती है, तब आइये, आपके अपने तर्क से आपका मन्तव्य निरस्त करें। आपकी दृष्टि में सनातन अथवा अविनाशी तो केवल परमात्मा ही है, क्योंकि वह परिवर्तनशील नहीं, तो कृपया बताएँ, यह 'परिवर्तन' किसका गुण है ? संसार में परिवर्तन का अस्तित्व तो आप मानते ही हैं, और यह भी मानेंगे कि यह एक गुण है अथवा क्रिया, अवस्था है अथवा शक्ति, अथवा किसी रूप में मानें, इनमें कोई भी स्वयंसिद्ध सत्ता तो नहीं हो सकती। गुण को गुणी चाहिए, अवस्था को अवस्था का केन्द्र, शक्ति को शक्तिमान्, रूप को रूपवान् अर्थात् गुणी। वह गुणी कौन-सा है जिसका गुण-परिवर्तन है ? क्या ईश्वर ? यदि वह नहीं, तो ईश्वर से अतिरिक्त सत्ता को अनादि मानिए। जो अनादि न होगा, वह गुणी (जौहर) नहीं हो सकता।

अच्छा, एक और दृष्टिकोण से विचार कीजिए। परिवर्तन का गुण

सनातन है या नश्वर ? यदि यह गुण नश्वर है तो ईश्वर की रचना का गुणी कैसे व्यक्त होता रहा ? आपका मन्तव्य है कि संसार प्रवाह से सनातन है; क्या यह प्रवाह से सनातन संसार परिवर्तनशील है या अपरिवर्तनशील ? परिवर्तनशील है तो विवाद कैसा ? क्योंकि प्रत्येक परिवर्तनशील वस्तु नश्वर होती है। कम-से-कम आपको यह तो मानना पड़ेगा कि हर परिवर्तनशील वस्तु प्रवाह से अनादि है। इससे आपका मन्तव्य (कि जीव-प्रकृति को ईश्वर ने उत्पन्न किया) स्वयं निरस्त हो जाता है। एक पग और आगे बढ़ाइये—आपने संसार को प्रवाह से अनादि माना, ताकि अनादि ईश्वर के अनादि गुण 'सत्ता' में रुकावट न पड़े। आप ज़रा यह तो फरमाएँ कि रचना व्यष्टि की होती है या समष्टि की ? क्या सनातन स्रष्टा व्यष्टि को रचे बिना समष्टि के प्रकार को बना सकता है ? बात गहरी है, ज़रा गम्भीर विचार-शक्ति से काम लें। मनुष्य के प्रकार की रचना आप सनातन मानते हैं, क्योंकि इसके स्रष्टा का सृष्टि करना गुण सनातन है। अब प्रश्न यह है कि क्या ईश्वर अनादि काल से मनुष्यों के प्रकार को बनाता आया है या व्यक्ति को ? व्यक्ति के बनाए बिना प्रकार का समूह तो उत्पन्न हो नहीं सकता। व्यक्ति के समूह का नाम ही समष्टि या उसका 'प्रकार' है। जब अनादि काल से व्यक्ति उत्पन्न होते आए हैं तो व्यक्ति को अनादि मानने में क्या दोष रहेगा ? प्रश्न होता है कि व्यक्ति परिवर्तन-शील है या नहीं ? आपका उत्तर 'हाँ' में होगा, क्योंकि अपरिवर्तनशील तो केवल ईश्वर की सत्ता है, तो फिर आपके दृष्टिकोण से परिवर्तन-शील भी सनातन हो गए, अतः जीव परिवर्तनशील होकर भी सनातन है।

जीव के परिवर्तनशील होने के विवाद में मौलाना ने जीव के स्वाभाविक गुणों को मिटाने का प्रयास किया है। सत्य तो यह है कि जीव का स्वरूप मौलाना की समझ में ही नहीं आया, अतः लिखते हैं—"दर्शन के अनुसार जीव की परिभाषा है—इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख तथा ज्ञान।" (पृष्ठ १७६)।

यह परिभाषा आपको किसने पढ़ा दी ? श्रीमन्, यह परिभाषा नहीं, हमारे दर्शन में इन्हें लिङ्ग कहा जाता है। लिङ्ग के अर्थ हैं गुण। इन सबके रहने या न रहने से जीव के अस्तित्व में कोई अन्तर नहीं आता। जीव गुणों से तो परिवर्तित होता है, अपने स्वरूप से नहीं।

आवागमन का चक्र; और इस वर्तमान जन्म में जीव के व्यवधान, अस्थायी गुणों में परिवर्तन तो ला देते हैं, परन्तु उसके स्वरूप में, जिसका रूप जीवत्व है, परिवर्तन नहीं आता। जीव किसी भी अवस्था में हो, ज्ञानयुक्त होता है। आपने निद्रा का उदाहरण दिया कि निद्रा में ज्ञान नहीं रहता, यदि ऐसा होता तो गहरी नींद से जागने पर आप यह न कहते कि मैं आज गहरी नींद सोया ! गहरी निद्रा का ज्ञान आपको है। आपके जीव के सम्मुख गहरी निद्रा के अतिरिक्त और कुछ नहीं था, तभी आप प्रातःकाल उठते हैं, अपनी निद्रा के आनन्द को स्मरण करते हुए मज़े से कहते हैं—"आज खूब नींद आई !" फ़रमाइये, यह ज्ञान का अभाव है या अस्तित्व ? एक अन्य अवस्था जिसमें आप ज्ञान के अभाव की कल्पना करते हैं वह पौधों की अवस्था है। श्रीमान् जी, पौधे फलते-फूलते हैं; यदि आपने जीव-विज्ञान (Biology) पढ़ा होता, तो आपको ज्ञान होता कि पौधों के फलने-फूलने में, उनकी जड़ों से जीवन-तत्त्व का चढ़ाव है जो वनस्पति के शरीर में वही स्थान रखता है, जो पशुओं के शरीर में रक्त का प्रवाह। दोनों स्थानों पर जीवन-तत्त्व के प्रवाह से अंगों का सिकुड़ना-फैलना होता है। जड़ों के इस फैलने-सिकुड़ने में सूर्य का प्रकाश बिजली के समान गति देता है। पशुओं के ज्ञान में (जिनमें मनुष्य भी सम्मिलित है) शारीरिक साधन यही पुट्ठे हैं, जो बाहर के प्रभाव को प्राप्त करते हैं। ये पुट्ठे एक ओर तो जीव की बौद्धिक क्रिया मे सहायक होते हैं, दूसरी ओर शरीर के जीवित रखने में सहायक होते हैं। यदि ज्ञान का यह भौतिक साधन कार्य न करे, तो न तो पशु जीवित रह सकें, न उनकी बौद्धिक शक्तियों का प्रकाश अपनी चमक दिखा सके। इस प्रकार आप देखेंगे कि वनस्पति-जगत् में भी जीव का यह ज्ञान-तत्त्व रहता है, अर्थात् उसकी अभिव्यक्ति वनस्पति-जगत् में नहीं हो पाती, क्योंकि अभिव्यक्ति का साधन जो पुट्ठे हैं वे अभी विकास का पूर्ण रूप प्राप्त नहीं कर पाये। विस्तार से देखना हो तो जगदीशचन्द्र बोस की विश्व-विख्यात रचनाएँ पढ़िये ! संक्षेप में कहें तो यह कि जीव गुणों से परिवर्तनशील है, स्वरूप से नहीं। ऊपर हम स्पष्ट कर चुके हैं कि परिवर्तनशील कार्य तो नश्वर होता है, परन्तु परिवर्तित का कारण नश्वर नहीं होता; जीव गुणों से परिवर्तित, कारण है, कार्य नहीं, अतः नश्वर भी नहीं।

संयोगवश चमत्कार कैसे ?

सातवें तर्क का उत्तर—

जीव-प्रकृति के नश्वर सिद्ध करने के लिए मौलाना ने अपने सातवें तर्क का आधार क़ुर्आन को नहीं बताया, बल्कि स्वयं फ़रमाया है—"यदि यह माना जावे कि जीव तथा प्रकृति सदा से हैं, ईश्वर ने इन्हें नहीं बनाया, अपितु ईश्वर के समान अनादि हैं, और उनके अस्तित्व अथवा गुणों में ईश्वर का कोई हाथ नहीं है, जीव तथा प्रकृति अपने सभी गुणों के साथ अनादि काल से हैं, तो ऐसा मानने पर यह सारा विचित्र संसार और पूरा जगत् एक संयोगवश चमत्कार ही मानना पड़ेगा (पृष्ठ १८०)। हमने जहाँ तक साहित्य का अध्ययन किया है, संयोगवश (By chance) उस घटना को कहते हैं, जिसके लिए पूर्व से तैयारी न की जाए, जो अनहोनी हो जाए। हमारे मन्तव्य में जब जीव, ईश्वर तथा प्रकृति तीनों अनादि हैं और उनका आपसी सम्बन्ध भी अनादि है तो पता नहीं यह 'By chance' का विचार कैसे आ टपकता है? मौलाना बात को व्यर्थ बढ़ाते हुए लिखते हैं—"इधर-उधर जो दृष्टि डाली तो ईश्वर ने देखा, कुछ जीव तथा प्रकृति भी सनातन काल से चले आ रहे हैं। बस, प्रसन्नता की सीमा न रही। झट उनपर अधिकार जमा लिया (पृष्ठ ८०)।"

मौलवी साहब को तर्क की संख्या बढ़ाने का शौक है, अथवा अनादित्व का विचार आपकी स्थूल बुद्धि में स्थान नहीं ले सका, नहीं तो दृष्टि डालने का प्रश्न ही कहाँ है? और अधिकार जमाने के अर्थ भी क्या हैं? श्रीमन्! ईश्वर अनादि हैं, अपने गुणों के साथ अनादि हैं। उनका अधिकार भी अनादि है और ज्ञान भी अनादि। वह सदा से जानते हैं कि जीव तथा प्रकृति अनादि हैं और उनपर ईश्वर का अधिकार है। अतः वह न तो संयोगवश इधर-उधर दृष्टि घुमाते हैं, न किसी पर By chance अधिकार करते हैं। वस्तुतः यह संयोगवशात् कार्य का दोष तो जीव तथा प्रकृति को अनादि न मानने पर आता है कि पहले तो कुछ था नहीं, एक दिन अल्लाह मियाँ के मन में तरङ्ग उठी कि चलो, व्यर्थ बेकार बैठने से क्या लाभ? कुछ बना ही डालो! फिर जनाब ने कुछ जीव बनाए, कुछ Matter (माद्दः) बनाया। परन्तु यदि जीवों की परिस्थिति में रंगारंगी अन्तर न हो, सबमें समानता ही दिखाई दे तो क्या

मज़ा आया ? अल्लाह मियाँ ठहरे रंगीन ! तमाशा देखने के शौक़ीन ! अतः किसी को अमीर बना दिया तो किसी को ग़रीब, किसी को रोगी तो किसी को स्वस्थ। भला कोई पूछे, इस अन्तर का कारण क्या है ? क्या कोई उत्तर है, सिवाय संयोगवश कहने के ? अथवा, आप कहेंगे ईश्वर की इच्छा। आख़िर इस इच्छा का कोई कारण ? (किसी की जान गई, आपकी अदा ठहरी !—अनु०) इस इच्छा और संयोग में अर्थ का कोई अन्तर नहीं। दर्शन के दृष्टिकोण से बिना कारण की इच्छा का नाम है चिड़चिड़ापन ! सृष्टि-रचना में संयोगवश का दोष आप तभी हटा सकेंगे जब आप जीवों की विभिन्न विषमावस्था का कोई उपयुक्त कारण बता सकें, और विभिन्न अवस्थाओं का उपयुक्त कारण बिना पूर्व-जन्म के कर्मों के और हो नहीं सकता। पूर्व-जन्म के कर्मों के लिए, जीवों का पूर्व-जन्म में अस्तित्व मानना आवश्यक है। पूर्व-जन्म में अवस्थाओं की भिन्नता के लिए फिर कोई कारण चाहिए, इस प्रकार आपको अन्ततोगत्वा जीवों को अनादि मानना पड़ेगा। आपने ख़ुदा को सनातन काल से बेकारी से बचाने के लिए यह तो मान लिया कि वह सनातनकाल से जीवों को बनाता आया है और सृष्टि की रचना करता आया है, परन्तु आप जीवों की किस्म, प्रकार (नौ) की रचना मान गए ! इसमें इतना दोष रह गया कि सृष्टि-रचना के समय अल्लाह मियाँ जीवों को उत्पन्न कर बाहुल्य (कसरत) में आनन्द लेते हैं और प्रलय के समय अकेला रहने में सुखी होते हैं। यह अकेला रहना भी तो अल्लाह मियाँ की बेकारी का कारण बनेगा। क्या अल्लाह प्रलय के पश्चात् स्रष्टा रहता है या नहीं ? रक्षक का गुण उसमें रहता है या नहीं ? आख़िर प्रलय के पश्चात् वह करता क्या है ? क्या उसके ये गुण तब समाप्त हो जाते हैं ? यदि आप **प्रलय के पश्चात् भी पुनः सृष्टि-रचना को मान लें**, तो ईश्वर के साथ उसके ये गुण भी सदा रह पाएँगे। वह **स्रष्टा भी रहेगा और रक्षक भी !** यदि आप दो बाहुल्य वाली रचनाओं के बीच अकेलेपन की अवस्था को समाप्त कर दें, तो हमारे समान आप अल्लाह के हर गुण को स्थायी गुण मानेंगे।

फिर भी सृष्टि की रचना में जीवों कें बाहुल्य के पश्चात् ईश्वर को प्रलय के समय अकेलापन क्यों पसन्द है ? अकेलेपन (वहदत) के समय ईश्वर अहमदियों के मन्तव्यों में जीव तथा प्रकृति का भी नाश कर देता है तथा नई सृष्टि में फिर नये बनाता है। इसका कोई कारण ? क्या

आपके पास सिवाय 'ईश्वरेच्छा' के कोई उत्तर है ? और फिर 'वहदत' (अकेलेपन) के पश्चात् बाहुल्य का शौक किसलिये ? यह भी खुदा की मर्ज़ी ? हमने निवेदन किया है कि दर्शन के दृष्टिकोण से 'संयोगवशात्' उस कृत्य को कहेंगे, जिसका कोई उपयुक्त कारण न हो, और खुदा की मर्ज़ी भी बिना किसी कारण के केवल संयोग (By chance) ही समझनी चाहिए। अतः सिद्ध हुआ कि जीव तथा प्रकृति को यदि अनादि न मानें तो जहाँ सृष्टि-रचना तथा प्रलय भी केवल संयोगवश माननी पड़ेगी, वहाँ रचना के पश्चात् जीव का विभिन्न अवस्थाओं में वैषम्य भी केवल संयोग से मानना पड़ेगा। परन्तु यदि जीव तथा प्रकृति को अनादि माना जावे, तो परमात्मा का उनपर अधिकार और रचना का गुण भी सनातन होने से किसी अन्य कारण की सृष्टि-रचना में आवश्यकता ही नहीं रह जाती। परमात्मा सृष्टि का रचयिता है, यह उसका सनातन गुण है। जीवों को विभिन्न अवस्थाओं में जाना पड़ता है, क्योंकि उनके पूर्वकृत कर्मों में विभिन्नता है और उन्हें उन कर्मों का फल भोगना है। ईश्वर कभी सबको समाप्त कर बेकार नहीं रहता, क्योंकि यह बात उसके तथा जीवों के गुणों के विपरीत है; अतः सृष्टि-रचना संयोगवशात् कैसी ? सम्भव है आप अपनी वहदत के दौर को सिद्ध करने के लिए पूछें कि ईश्वर प्रलय के पश्चात् क्या करता है और कहें कि भगवान् तब भी तो बेकार रहता होगा, परन्तु यह ग़लत है। प्रथम तो प्रलय में भी जीव तथा प्रकृति का अस्तित्व ईश्वर के अस्तित्व के साथ है, अतः परमात्मा बेकार नहीं, उसके अस्तित्व से जीव-प्रकृति में स्थिरता है। दूसरा, प्रलय हर लोक में एक ही समय में नहीं होती, अपितु जब एक लोक में प्रलय होती है, दूसरे लोक में सृष्टि चल रही होती है, इस प्रकार परमेश्वर का हर गुण सदैव कार्य में ही रहता है।

ज्ञान और रचना

आठवें तर्क का उत्तर—

आठवीं दलील में फिर क़ुर्आन को प्रस्तुत किया है, फ़रमाया है— **इलायलम मिन ख़ल्क ?** अर्थात् जिसने उत्पन्न किया क्या वह भी नहीं जानता ? अतः इस आयत से एक नियम सिद्ध हुआ कि जिस व्यक्ति को जिस वस्तु का पूर्ण ज्ञान तथा सत्य ज्ञान हो, वह उसको बना भी

सकता है; और जिसको कोई बना भी नहीं सकता, उसे उसका पूर्ण ज्ञान भी नहीं होता (पृष्ठ १८४)। (अभिप्राय यह है कि यदि जीव को ईश्वर ने बनाया नहीं, तो उसे उसका पूर्ण ज्ञान भी नहीं। अनु०)

हम किसी अरबी के विद्वान् से पूछते हैं कि ऊपर की आयत में "पूर्ण ज्ञान" के लिए कौन-सा शब्द आया है? आयत में तो केवल 'इल्म'—ज्ञान ही आया है, तो क्या मौलाना की दृष्टि में ज्ञान का कारण रचना ही है? मौलाना अपने तर्क के दोष को जानते हैं कि यदि ज्ञान का कारण रचना को ही मानें तो मनुष्य पूरा न सही, अधूरा ज्ञान तो रखता ही है; इसे भी स्रष्टा मानना पड़ेगा। अतः लिखते हैं—"चूंकि हम किसी वस्तु का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं रखते हैं···इसलिए हम तो निस्सन्देह स्रष्टा नहीं कहला सकते" (पृष्ठ १८६)। मौलाना ने मनुष्य के अल्प ज्ञान का कोई कारण बता दिया होता, जो अल्प शक्ति वाले मनुष्य के अल्प ज्ञान का कारण होता, तो वह अल्प कभी पूर्ण होकर ईश्वर के पूर्ण ज्ञान का कारण बन जाता। दार्शनिक दृष्टिकोण से ज्ञान का कारण बताना होगा। यदि कारण पूर्ण होगा तो कार्य भी पूर्ण होगा; कारण में दोष होगा, तो कार्य भी दोषयुक्त होगा। प्रश्न है कि क्या मनुष्य अधूरा स्रष्टा है, उन वस्तुओं का, जिनका वह अधूरा ज्ञान रखता है? और यदि रचना से ही ज्ञान बनता है, तो अधूरा ज्ञान तो मनुष्य भगवान् का भी रखता है। क्या यह इस तर्क से ईश्वर का भी अधूरा रचयिता है? बाकी संसार की तो बात ही क्या कहें! जनाब, मनुष्य के ज्ञान का कारण उसका स्वाभाविक गुण समझने की शक्ति है। यह क्योंकि मनुष्य में अल्प है, इसलिए मनुष्य का ज्ञान भी अल्प है। ईश्वर में यह शक्ति पूर्ण है, अतः उसका ज्ञान भी पूर्ण है; रचना से इसका सम्बन्ध ही नहीं। ईश्वर के अतिरिक्त अनादि संसार आप भी मानते हैं (ध्यान रहे कि क़ादियानी यह स्वीकार करते हैं कि अनादि ईश्वर अनादि काल से सृष्टि-रचना करता आया है, परन्तु हर सृष्टि में जीव तथा प्रकृति को नया उत्पन्न करता है।—अनु०) चाहे उसे प्रकार में मानें, चाहे व्यक्ति में, उनका ईश्वर को पूर्ण ज्ञान था, और है, या नहीं? और अनादि अस्तित्व अभाव से भाव में नहीं आ सकता, जिस प्रकार ईश्वर को इसका ज्ञान हुआ। ऐसे शेष सृष्टि की भी कल्पना कर लीजिए।

आर्यों की ओर से एक और आक्षेप मौलाना ने कल्पित किया है

कि क्या परमात्मा को स्वयं अपना ज्ञान भी है या नहीं ? यदि है तो क्या (रचना से ज्ञान मानने पर) वह अपना स्रष्टा भी स्वयं है ? इसके उत्तर में कहा कि 'वह अपना स्रष्टा नहीं क्योंकि वह एक है, अद्वितीय है। स्वयं के स्रष्टा मानने पर उसके एक होने का गुण समाप्त होता है।' तो श्रीमान् जी, जीव तथा प्रकृति का भी रचयिता (अभाव से भाव में लानेवाला) इसलिए नहीं कि ईश्वर के अनादि गुण रक्षक तथा मालिक होने के ग़लत हो जाते हैं। अनादि मालिक को अनादि मिलकियत चाहिए, चाहे वह प्रकार से हो; परन्तु प्रकार भी व्यक्ति के बिना सम्भव नहीं। जब एक भी माना हुआ अस्तित्व (ईश्वर के अतिरिक्त) अनादि हो गया, तो अभाव से भाव में आने की बात तो समाप्त हुई, क्योंकि अनादि के अर्थ हैं जिसका अभाव कभी नहीं था। इस आक्षेप का एक और उत्तर भी आपने दिया है—"निस्सन्देह खुदा को अपना पूर्ण ज्ञान है और वह ज्ञान यह है कि मैं अद्वितीय हूँ (पृष्ठ १८७)।"

तो हज़रत ! जीव तथा प्रकृति के सम्बन्ध में भी ईश्वर यह जानता है कि ये अनादि हैं। इन्हें कोई अभाव से भाव में नहीं लाया, अपितु ये सनातन हैं और मेरी अनादि मिलकियत तथा आधीन हैं...इत्यादि। क्या स्वयं को अद्वितीय अनुपम जानने के लिए रचयिता होने की आवश्यकता तो नहीं ? अपितु रचयिता होने से अद्वितीय होना असत्य हो जाता है और जीव तथा प्रकृति पर अपना अनादि अधिकार जानने के लिए रचयिता होना आवश्यक है ? यहाँ रचयिता होने से अधिकार का अनादित्व असत्य नहीं हो जाता। वास्तविकता यह है कि ज्ञान के लिए रचयिता होना आवश्यक नहीं है। जैसे मनुष्य का अधूरा ज्ञान उसकी अधूरी समझ की शक्ति के कारण है, परमात्मा की सर्वज्ञता भी उसके पूर्ण (इदराक) ज्ञानशक्ति के कारण से हुई और होती है।

पुण्यकर्मफल अथवा पारितोषिक

नवाँ तर्क और उसका उत्तर—

नवें तर्क में मौलाना ने क़ुर्आन का आधार फिर छोड़ दिया है; अपने मस्तिष्क की कल्पना ही लिख पाये हैं; फ़रमाया है—"थोड़ी देर के लिए कल्पना करो कि सब जीवों ने वेद की शिक्षा पर आचरण किया तो परिणामतः सबको मुक्तिघर में जाना पड़ेगा, और जब सभी जीव

मुक्त हो गए तो संसार का कार्य-व्यवहार ठप हो गया, ईश्वर के रचयिता आदि सभी गुण भी समाप्त ! और यदि मुक्ति की अवधि सीमित है तो जब पूर्णतया शुद्ध होकर जीव मुक्त हो गए तो उन्हें संसार के कार्य को चलाने के लिए जन्म-मरण के चक्कर में डालना घोर अन्याय है (पृष्ठ १८६)।"

मौलाना का अभिप्राय प्रथम तो यह है कि मोक्ष का समय सीमित न हो। जन्म-मरण पापों का दण्ड होता है और मुक्त जीव पापरहित हो चुके, फिर उन्हें जन्म-मरण के चक्कर में क्यों लाया जाए ? और जब मोक्ष अनन्तकाल के लिए हो गया (जिसके लिए बौद्धिक उड़ान पर मौलाना ने बहुत बल दिया है) तो संसार का कार्य समाप्त हो जाएगा और अल्लाह तआला के सभी गुण भी बेकार हो जाएँगे। अल्लाह-तआला के बेकार होने की मौलाना को चिन्ता अधिक है। इस चिन्ता ने ही तो जनाब मसीह मौऊद (ग़ुलाम अहमद कादियानी) से अनादि काल से सृष्टि की रचना और प्रलय का मंतव्य घड़वाया है (ध्यान रहे कि इस्लाम इसे इस रूप में नहीं मानता।—अनु०) यह और बात है कि प्रत्येक सृष्टि के पश्चात् प्रलय और नये जीवों की सृष्टि की कल्पना ने बार-बार बीच में आनेवाली खुदा की बेकारी का भी सिल-सिला जोड़ दिया है। यह और बात है कि बहिश्त (स्वर्ग) को अनन्त मानकर फिर उस प्रलय में केवल ईश्वर को बचाकर स्वर्ग की अनन्तता को समाप्त भी कर दिया है ! श्रीमन् ! आपका बहिश्त अनन्तकाल तक कैसे हुआ, जब आप प्रत्येक सृष्टि के पश्चात् प्रलय में केवल ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार करते हैं और ईश्वर के अतिरिक्त सबका नाश मानते हैं ? क्या आपका विचार है कि एक वार स्वर्ग के द्वार खुलने पर अल्लाह तआला पर (प्रलय-काल में) केवल अकेला रहने का दौरा (नशा) समाप्त हो जाएगा ? अथवा स्वर्ग में भी यह प्रलयंकारी दृश्य भी कभी-कभी उपस्थित हो जाया करेगा ?[1]

यदि प्रत्येक प्रलय में केवल ईश्वर के अस्तित्व को मानना अभीष्ट

---

१. कादियानी एक ओर तो मानता है कि स्वर्गीय जीव अनन्त काल तक स्वर्ग में रहेंगे, दूसरी ओर उसका सिद्धान्त है कि प्रलय में सब जीव नष्ट हो जाएँगे और केवल खुदा ही रहेगा। नई सृष्टि में फिर नये जीव उत्पन्न किये जाएँगे। ये दोनों सिद्धान्त इकट्ठे कैसे माने जा सकते हैं ? (अनु०)

है तो आप आर्यों के मोक्ष के ससीम होने पर आक्षेप न करें, आपका बहिश्त भी अस्थिर तथा ससीम है। हाँ, बहिश्त की अस्थिरता में केवल ईश्वर के रहने पर उसकी बेकारी का दोष रहेगा। आर्यों के सावधि-मोक्ष पर (जीवों के रहने के कारण) ईश्वर पर बेकारी का दोष नहीं आ सकता। आप जन्म-मृत्यु को पाप-कर्मों का फल मानते हैं, इसमें कोई प्रमाण भी लिख देते। मोक्ष भी तो फल ही है! क्या असीम काल का मोक्ष, ससीम कर्मों का फल हो सकता है? हमारा मन्तव्य है कि जीव स्वभाव से अनादि काल से कर्म करता आया है; कर्म करने के लिए उसका शरीर से सम्बन्ध होता है; पाप-कर्मों का फल दु:ख के रूप में तथा पुण्य-कर्मों का फल उसे सुख के रूप में प्राप्त होता है। मोक्ष अत्यन्त सुख का नाम है जो अत्यन्त पुण्य-कर्मों के फलस्वरूप उसे प्राप्त होता है। चूंकि जीव के अत्यन्त पवित्र कर्म भी सीमित हैं, अत: उनका फल भी सीमित मिलता है। हम जानते हैं कि आप 'स्वर्ग-प्राप्ति' कर्मों के फल-स्वरूप नहीं मानते, अपितु अल्लाह तआला की ओर से पारितोषिक-स्वरूप मानते हैं। आपने लिखा भी है कि—"पवित्र कर्म तथा नेकी जनअत=मोक्ष में प्रविष्ट होने के लिए आवश्यक है, परन्तु जनअत में प्रवेश के पश्चात् सदा के लिए वहाँ रहना, यह किसी पुण्य कर्म का फल नहीं, अपितु ईश्वर का दिया पारितोषिक है" (पृष्ठ ६६)।

हमारा निवेदन है कि जो पापी लोग नरक में भरती किए जाएँगे, उनके भी नरक के प्रवेश के लिए पाप-कर्मों की शर्त है अथवा नरक में सदा रहने के लिए भी? [इस्लाम के मन्तव्य में स्वर्ग अथवा नरक में प्रवेश पानेवाले जीव सदा के लिए वहाँ रहेंगे—अनु०] क्या नरक में पापी लोगों का सदा के लिए वहाँ रहना भी ईश्वर का दिया पारि-तोषिक है? मौलाना, क्षमा करना। अन्य मुसलमान तो स्वर्ग तथा नरक को अनन्त काल तक का मानते हैं, आपने इस विषय में सुधार कर लिया है कि नरक सीमित समय के लिए है और स्वर्ग अनन्त काल के लिए। अब आपसे प्रश्न है कि नरक के समय की समाप्ति पर नारकीय जीवों का स्वर्ग में प्रवेश होगा या नहीं? यदि पुण्य पवित्र कर्मों के बिना सदा का स्वर्ग उनके लिए दे दिया जाएगा, तो स्वर्ग में प्रवेश के बिना तो वे अनन्त काल तक का स्वर्ग न भोग सकेंगे? तो कृपया बताइये, स्वर्ग के इस प्रवेश के लिए पुण्य-कर्म कहाँ से आ पाएँगे? कल्पना कीजिए, एक व्यक्ति के कर्म-भण्डार में एक भी पुण्य-कर्म नहीं है…आखिर आप

तो बौद्धिक कल्पना की उड़ान को स्वीकार करते हैं, इसलिए ऐसा मानने में आपको कोई आक्षेप नहीं हो सकता; अब नरक के समय के बीत जाने पर पुण्य-कर्म है ही नहीं, अथवा मान लो, नरक में रहने के कारण वह कोई पुण्य-कार्य करना ही नहीं चाहता, आख़िर आपकी कल्पना में तो सब समान है, ऐसे व्यक्ति को फिर नरक में स्थान मिलेगा या स्वर्ग में? स्वर्ग में प्रवेश के लिए आपने पुण्य-कर्मों का टिकट लगा दिया, और वह उसके पास नहीं है।

और लीजिए, स्वर्ग के इस प्रवेश के लिए कितना पुण्य-कर्म चाहिए? किसी व्यक्ति के पुण्य तथा पाप-कर्मों का हिसाब किया गया, पुण्य-कर्म अधिक निकले; क्या केवल अधिक होने के कारण ये पुण्य-कर्म स्वर्ग में प्रवेश का टिकट बन जाएँगे? अथवा इस अधिकता में भी परिमाण अथवा संख्या का ध्यान किया जाएगा? यदि यह ध्यान न किया गया, तो अधिक पुण्य-कर्मों में तथा थोड़े पुण्य-कर्मों में कोई अन्तर न रहा, फिर अधिक पुण्य-कर्म क्यों किए जाएँ? थोड़े ही पर्याप्त हैं। इतना ध्यान रह जाए कि पाप-कर्म, पुण्य के कर्मों से बढ़ न जाएँ! यदि जनअत की अनन्तता ईश्वर का दिया पारितोषिक है तो जनअत के प्रवेश पर टिकट क्यों लगा दिया? इतना बड़ा इन्आम देते हुए थोड़ी रियाअत और प्रदान कर देते और स्वर्ग के प्रवेश पर टिकट न लगाते, इससे अल्लाह तआला की कृपा का महत्त्व बढ़ ही तो पाता, कोई कमी तो न आती थी! फिर अल्लाह ने यह कृपणता क्यों दिखाई?

मौलाना ने ताँगेवाले का उदाहरण देते हुए लिखा है कि "वह आपको सवार करके ले आया, गन्तव्य स्थान पर पहुँचा दिया, आपने उसे आठ आने देने थे, परन्तु आपने कृपापूर्वक उसे एक रुपया थमा दिया, वह दुआएँ देता चला गया, इसमें आठ आने तो किराया था, और आठ आने इन्आम के!" मौलाना उदारहृदय लगते हैं। जहाँ आठ आना देने हों, वहाँ एक रुपया प्रदान कर देते हैं; एक रुपया के स्थान पर पचास रुपये दे दीजिए, सौ रुपये दे दीजिए या हज़ार रुपये दीजिए, अथवा अपनी सारी सम्पत्ति दे डालिए, फिर देखिए संसार के लोग आपके सम्बन्ध में क्या सम्मति देते हैं? श्रीमान् जी, एक ताँगे-वाले को ही क्यों? बाज़ार में वस्तु खरीदते हुए पैसों के स्थान पर रुपये लुटा दीजिए, फिर देखिए कि घरवाले आपको किस नाम से पुकारते हैं? और कहाँ भरती करने को ले जाते हैं? आप इस इन्आम की

प्रशंसा करते हैं जो बेहिसाब इन्आम देनेवाले की गत तो बना ही देता है, लेनेवाले का चरित्र भी बिगाड़ देता है, उसका स्वभाव चापलूस और आलसी बना देता है। कृपया ताँगेवाले को अधिक न बिगाड़ियेगा, नहीं तो सवारी मिलना कठिन हो जाएगा! चलो, उदारता ज़ोरों पर है तो इसकी भी चिन्ता नहीं, सवार होने के पश्चात् ही काहे को इन्आम दो? सवार ही न हूजिये, मार्ग में जानेवाले को अपनी सम्पत्ति प्रदान कर दीजिए। अपने वंशजों को लोग सम्पत्ति देते ही हैं, तो क्या मनुष्य ईश्वर का पुत्र नहीं? उसकी रचना ही तो है! क्या बिगड़ता था जो कर्म किए बिना ही इसे वह जनअत में प्रवेश दे देता? अल्लाह क़ह्हार (रुद्र) है तो हो, यह रौद्र रूप अपने लिए सुरक्षित रख ले। मनुष्य ने क्या पाप किया कि उसे रौद्रता का लक्ष्य बनाए और इसके लिए उसे कर्म-क्षेत्र में उतारे? आख़िर मनुष्य को पाप करने की क्षमता किसने दी है? जिसने यह शक्ति दी है पाप भी उसी के सिर पर! मनुष्य क्यों जाए? और जब अन्त में उसने कृपा करनी है तो प्रारम्भ में ही क्यों न कर दे? पहले रचना करे, फिर रौद्र रूप और दयालु रूप में दंगल हो, दयालुता विजयी हो, रुद्र-रूप पराजित हो, यह सब क्रमशः क्यों हो, रचना से पूर्व ही हो जाएँ?

लगता है, इस्लामी व्यवस्था में गणित का काम ही नहीं! स्वर्ग में प्रवेश के लिए तो शुभकर्मों का टिकट चाहिए। स्वर्ग में अनन्त काल तक रहना तो बहुत बड़ा सुख है। वह पहले से भी अधिक शुभकर्मों का फल होना चाहिए। और यदि वह भी शुभकर्मों का फल हो गया, तो स्वर्ग का काल सीमित तो हो जाएगा, क्योंकि शुभ कर्मों की सीमा होगी।

हम तो जन्म-मरण को कर्मों का क्षेत्र मानते हैं—इस हाथ दे, उस हाथ ले! कर्म अत्यन्त पवित्र हो गये तो मोक्ष मिल गया! उन पवित्र कर्मों का फल भी समाप्त हो गया, तो पुनः कार्यक्षेत्र में उतर आए! आप कहेंगे कि मोक्ष की अवस्था में भी तो ईश्वर का भजन होता रहेगा, फिर उसका फल आगे के मोक्ष के रूप में क्यों न हो? श्रीमान् जी! वास्तविकता यह है कि आप कर्म के रहस्य को समझते ही नहीं। दण्ड अथवा सुख पाने का वही कर्म अधिकारी माना जाता है जिस कर्म के करने या न करने, अथवा उलटा करने का कर्ता को अधिकार भी हो, अवसर भी हो, और वह सम्भव भी हो, परन्तु कर्ता उस अवसर तथा

सुविधा को छोड़कर पुण्य-कर्म ही करे; वह फलदायक होगा। जैसे मैं कोई पवित्रकार्य करता हूँ; यदि मैं इस अवसर पर पाप करने की शक्ति ही नहीं रखता, तो वह शुभ कर्म, फल पाने का अधिकारी नहीं। फल, उस कर्म का मिलता है जिसे हम स्वतन्त्रतापूर्वक करते हैं। मुक्ति की अवस्था में पाप करना सम्भव ही नहीं। इसलिए मोक्षकाल में जो ईश-भजन होगा, उसका प्रतिफल नहीं मिल सकता। यदि आप यह बात अब भी न समझे हों, तो एक और प्रकार से मानें। परमात्मा का दृष्टान्त लीजिए, वह स्वभाव से पवित्र है, पवित्र-कार्यों में व्यस्त है तो क्या उसे इन शुभ कर्मों का फल मिलेगा? क्यों नहीं मिलेगा? इसलिए कि ईश्वर में पाप न सम्भव है और न उसे पाप का अवसर। पाप उसके स्वभाव के विरुद्ध है, यही अवस्था मोक्ष में जीव की है!

जीव की यह क्षमता है कि या तो कर्म करे, अथवा कर्मों का फल भोगे। मोक्ष में शुभ कर्मों का फल मिलता है। जब वे कर्मफल समाप्त हो गए, तो जीव फिर कर्मक्षेत्र में आ जाता है। इस प्रकार न तो परमात्मा बेकार रहता है और न उसपर अत्याचार का आरोप लगता है। हमें आश्चर्य है कि जब आप मोक्ष को पारितोषिक मानते हैं तो क्या पारितोषिक न देनेवाला अत्याचारी होता है? आपने फ़रमाया कि यदि ईश्वर मुक्त जीवों को मुक्ति से लौटा दे तो वह अत्याचारी है। हमारा विचार है यहाँ आपने मोक्ष को शुभ कर्मों का फल स्वीकार किया है, क्योंकि यदि यह इन्आम है, वही आठ आने किराये के साथ आठ आने इन्आम की बात, तो फिर इन्आम देना या न देना सवार की इच्छा पर है। परमात्मा ने मोक्ष से लौटा दिया, अर्थात् आपके दृष्टिकोण में इन्आम न दिया तो अत्याचारी कैसे? ताँगेवाले को सवार ने किराया देकर आठ आने इन्आम न दिया और अहमदी ताँगे-वाला झट गाली देने लगा कि तू ज़ालिम है! मियाँ, ज़ालिम तो तब था यदि किराया न देता! किराया दे दिया, तो जा। अहमदी मियाँ, यदि ईश्वर को ज़ालिम कहना है तो जनअत को शुभ कर्मों का फल मानो; फल मानोगे, तो सीमित कर्मों का फल सीमित ही होगा; फल नहीं मानते इनआम मानते हो, तो न मिलने पर ज़ालिम न कहो!

हमने निवेदन किया है कि पारितोषिक सीमा में रहे तो मज़दूर को मानसिक प्रसन्नता होती है, उसे अधिक कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। यदि पारितोषिक 'असीम' हो तो मज़दूर को लालची और निकम्मा

वना देगा। उपयुक्त पारितोषिक को आर्यसमाज स्वीकार करता है, तभी तो सीमित पुण्य-कर्मों के फलस्वरूप कल्प-भर मोक्ष का विश्वास रखता है। अनन्त काल तक का मोक्ष किसी नियम की सीमा में नहीं होता, और उसका परिणाम भी क्या होता है ?—भविष्य में कर्म करने की स्वतन्त्रता से वंचित होता है। मुसलमान होने पर अनन्त काल तक सत्तर-सत्तर हूरों (अप्सराओं) और उनके अतिरिक्त ग़िलमान (लौंडों) तथा शराब-कबाब में व्यस्तता। आख़िर मज़दूरी के बदले में असीम पारितोषिक का यही तो परिणाम होगा ! ताँगेवाले का यह परिणाम होगा तो अहमदी मियाँ का इससे अलग तो न होगा ?

स्वर्ग या कारागार

मौलाना ऋषि दयानन्द पर बहुत क्रुद्ध होकर फ़रमाते हैं—"दीन (धर्म) इनके लिए एक खेल है और मज़हब खिलवाड़। 'ईश्वर का जाप' समय बिताने का साधन, तो 'मोक्ष' दिल्लगी। ताश न खेले, तो जीव-प्रकृति के अनादित्व पर शास्त्रार्थ कर लिया; शतरंज में समय न बिताया, तो मोक्ष पर चर्चा कर ली !

यह है धर्मगुरुओं का वह सम्मान, जिसपर कादियानी दोस्त गर्व किया करते हैं ! आख़िर इस तिलमिलाहट का कारण ? केवल एक महापुरुष के अपमान की इच्छा, अथवा कुछ और ? ऋषि दयानन्द का वचन उद्धृत करते हैं कि "यदि वहाँ (मुक्ति) से वापस न आना हो, तो आजन्म जेल से इस मोक्ष में इतना अन्तर है कि इसमें शारीरिक श्रम नहीं करना पड़ता !" श्री मुहम्मद इसहाक़ साहब फ़रमाते हैं—"क्या इस मोक्ष के लिए, जिसे स्वामी जी क़ैद, क़ैदखाना, जेलखाना (कारागार) के नाम से पुकारते हैं ?"

ज्ञात होता है मुहम्मद इसहाक़ साहब ऋषि दयानन्द का संकेत समझ गये हैं। जिस जनअत को जनाब ने अनन्त माना है, वहाँ आख़िर है क्या ? हूरों का, ग़िलमान का, पिण्डली के गूदे का दीदार, शराब-कबाब, यही तो है ! कारागार के क़ैदी इन्हीं के लिए तरसते हैं और जहाँ उनका बस चले, इस प्रकार की विलासिता का सामान इकट्ठा करते हैं। कारण यह है कि जीव की उन्नति का सबसे बड़ा साधन है—कर्म करने की स्वतन्त्रता। यदि यह स्वतन्त्रता अनन्त काल के लिए जीव

से छीन लो, तो उसे सिवाय विलासिता के, पाप-कर्मों के करने के और क्या शुग़ल रहेगा ? जेल में परिश्रम करना पड़ता है, परन्तु उस परिश्रम में क़ैदी स्वतन्त्र नहीं होता, अतः उसका अच्छा प्रभाव क़ैदी के मन पर नहीं पड़ता। अनन्त काल के स्वर्ग में इतना परिश्रम भी नहीं है। वहाँ के रहनेवालों की अवस्था का अनुमान करना कठिन है।

ऋषि दयानन्द के तथा श्री कादियानी जी के दृष्टिकोण में सैद्धान्तिक अन्तर है। ऋषि दयानन्द उस परिस्थिति को पसन्द नहीं करते, जो सदा के लिए कर्मों के करने से वंचित कर दे। ऐसा स्थान ऋषि की दृष्टि में नैतिक रूप से कारागार है; परन्तु कादियानी साहब को केवल हूरो-कसूर (अप्सराओं तथा लौंडों) की तमन्ना है—यदि यह सदा के लिए मिल जाए तो उन्हें और कोई इच्छा ही शेष नहीं रहती। ऋषि के मन्तव्य में कर्म वह है जो स्वतन्त्रतापूर्वक किया जाए, और जिसका आत्मिक आनन्द, सतत नैतिक तथा आत्मिक तप का परिणाम हो। आर्यसमाज के मोक्ष का स्वरूप यही है—वह आनन्द, जो तपस्या से प्राप्त हुआ है और जिसमें शारीरिक वासनाओं का लेश भी नहीं; परन्तु कादियानी बहिश्त इसके उलट है, जो तपस्या से नहीं, पारितोषिक-रूप में प्राप्त हुआ है, और जिसमें काली व मोटी-मोटी आँखों, गोरे-गोरे गालों और पिण्डली का गूदा है। आर्यसमाज की मुक्ति नई तपस्या की तैयारी के लिए है; थके यात्री की थकान उतारने का साधन है; कादियानी बहिश्त विलासिता की गहरी खाई है, जिसके अँधेरे में तप या शुभ कर्मों की किरन न अतीत में है न भविष्य में। कर्मयोगी दयानन्द की दृष्टि में यह जेल है, बल्कि जेल से भी बुरी, क्योंकि इसमें केवल विलासिता है, जेल का दण्डस्वरूप परिश्रम भी नहीं।

व्याप्य तथा व्यापक

दसवें तर्क का उत्तर

"जीव तथा प्रकृति दोनों व्यापक हैं, तथा आकाश व्याप्य। व्याप्य अथवा मकान का अस्तित्व व्यापक सत्ता से, अथवा मकान में रहनेवाले से पूर्व होता है (पृष्ठ १९८)—

आर्यों की ओर से इस तर्क का उत्तर अपनी कल्पना में इस प्रकार दिया गया है—'जैसे व्याप्य अर्थात् आकाश सनातन है, वैसे ही जीव

तथा प्रकृति भी सनातन काल से हैं। हाँ, एक सनातन काल से व्याप्य है, दूसरा सनातन काल से व्यापक। जिस प्रकार दोनों (व्याप्य तथा व्यापक) सनातन हैं, ऐसे ही दोनों का व्याप्य और व्यापक होना भी सनातन काल से है।' (पृष्ठ १९३)।"

हाँ, हमारी दृष्टि में दोनों अनादि हैं, और अनादि तत्त्वों में पहले और पीछे का प्रश्न नहीं होता। लीजिये, अब आपसे हम पूछते हैं कि परमात्मा अनादि काल से स्रष्टा है, वह किसी व्यक्ति को न सही, एक प्रकार से सृष्टि को अनादि काल से बनाता आया है (यद्यपि सृष्टि का समूह भी व्यक्ति के बिना सम्भव नहीं)। वह अनादि सृष्टि (प्रकार से सही) व्याप्य है, या व्यापक ? यदि व्यापक है तो आपके नियमानुसार व्याप्य को उससे पूर्व होना चाहिये, तब वह अनादि काल से कैसे हुई ? यदि आप सृष्टि के प्रकार को (अनादि स्रष्टा के गुण को रखने के लिए) अनादि मानते हैं, तो उसके अनादित्व के साथ आकाश को भी उसका समकालीन मानना पड़ेगा; अथवा यह नया मन्तव्य बनाइये कि सृष्टि का प्रकार तो नश्वर है, परन्तु आकाश सनातन है। यह आपको स्वीकार नहीं। आर्यों के इस उत्तर पर आप कोई नया तर्क तो नहीं घड़ते, अपितु ऋषि दयानन्द का यह वचन उद्धत करते हैं—

प्रश्न—मनुष्य की उत्पत्ति पहले हुई अथवा ज़मीन आदि की ?

उत्तर—ज़मीन आदि की। क्योंकि ज़मीन इत्यादि के बिना मनुष्य कहाँ पर रहते तथा पोषण कैसे होता ?

ऋषि का अपना शब्द 'ज़मीन' नहीं, पृथिवी है, जिसके अर्थ ख़ाक (मिट्टी) के हैं। चूँकि ख़ाक मनुष्य के शरीर का उपादान-कारण है, इसलिए कारण को कार्य से पूर्व मानने में ऋषि ने व्याप्य-व्यापक का पहले तथा पीछे होने का दृष्टिकोण नहीं दिया। हाँ, कारण को कार्य से पूर्व माना है; और फिर मनुष्य के रहने के साथ पोषण का शब्द लगाकर बात को स्पष्ट कर दिया है कि मनुष्य के शरीर के लिए रहने-मात्र के लिए नहीं, उसके अस्तित्व तथा पोषण के लिए पृथिवी की आवश्यकता है। पूर्व होना तथा पश्चात् होना, कार्य-कारण अथवा दो कार्यों में तो सम्भव है, दो निरवयवों में नहीं। आर्य लोग जीव तथा प्रकृति के अनादित्व में आकाश को भी सनातन मानते हैं।

आवश्यकता का प्रश्न

ग्यारहवें तर्क का उत्तर—

मौलाना ने अपनी इस दलील का आधार क़ुर्आन की निम्न आयत को चुना है—**इ अल्लाह अहद अलाह अलसमद ··· कुफ़रन अहद ।"**

अर्थात् "ईश्वर एक है, सबको उसकी आवश्यकता है, वही किसी से उत्पन्न नहीं हुआ और न कोई उससे उत्पन्न होता है, उसके बराबर का कोई नहीं ।"

यह अनुवाद हमने मौलाना के अपने लिखे अथ से लिया है। आपने 'अलसमद' के अर्थ किये हैं वह सत्ता जिसकी आवश्यकता सबको है।"

आपने इससे यह भाव निकाला हैं कि ईश्वर के अतिरिक्त सबको अपने अस्तित्व के लिए ईश्वर की आवश्यकता है। ध्यान देने की बात यह है कि आयत में "अपने अस्तित्व के लिए" के अर्थ का कोई शब्द नहीं। यही नहीं, वल्कि आपने स्वयं जो अनुवाद किया है वहाँ ही 'अलसमद' का अर्थ 'आवश्यकता वाला' किया है, आदितत्त्व का वर्णन नहीं। अतः जीव तथा प्रकृति कई कारणों से ईश्वर की आवश्यकता रखते हैं। यथा प्रकृति को व्यवस्थित न किया जाय, तो जीवों का कोई कार्य ही न हो सके। ईश्वर इस व्यवस्था को स्थिर न रखे, तो परमाणुओं के बिखर जाने से संसार का ही विनाश हो जाए। परमाणुओं में जहाँ मिलने का गुण है, बिखरने का भी है। प्रलय में परमाणु जुदा-जुदा बिखर जाते हैं, सृष्टि में उनका मिलाप हो जाता है। मिलना तथा जुदा-जुदा होना, ये दोनों विरोधी गुण परमाणुओं में विद्यमान हैं जो अपने-अपने समय पर काम करते हैं। इस कारण ईश्वर व्यवस्थापक है; यह बात जीवों की शक्ति से वाहर है, अतः उन्हें ईश्वर की आवश्यकता है। और क़ुर्आन का संकेत इसी ओर है। परन्तु आपने तो दार्शनिक दृष्टिकोण से देखना ही नहीं ! अपनी बुद्धि-विरुद्ध कल्पनाओं को क़ुर्आन के मत्थे मढ़ देते हैं। भला जो स्वयम्भू सत्ता है, उसको भी अस्तित्व के लिए किसी अन्य की आवश्यकता होगी ? आप स्वयम्भू सत्ता (अनादि) केवल ईश्वर को मानते हैं; हम जीव तथा प्रकृति को भी अनादि मानते हैं।[1] आपका आक्षेप है—"जो स्वयं अनादि

१. वह आधीन क्यों हो ?

सत्ता है, और जो अपने अस्तित्व के लिए किसी दूसरे की आवश्यकता नहीं रखती, वह किसी अन्य सत्ता के आधीन कैसे हो सकती है?" (पृष्ठ १९४)

आप स्वयं न्याय करें, क्या यह तर्क आपके दिये चौथे तर्क की पुनरावृत्ति नहीं? आपने उस तर्क में कहा कि जो उत्पन्न नहीं करता, वह मालिक (स्वामी) नहीं बन सकता। यहाँ कहो—'जो अपने अस्तित्व के लिए दूसरे की आवश्यकता नहीं रखता'; बात तो एक ही है, 'आवश्यकता रखनेवाला' तथा 'उत्पन्न होनेवाला' एक ही तो अर्थ रखते हैं! फिर भला पुनरावृत्ति की क्या आवश्यकता थी? शायद यही कि तर्कों की संख्या तो बढ़ जाए। श्रीमान् जी! आधीन तो मनुष्य भी मनुष्यों का होता है। कोई आवश्यकता रखता है, कोई उसकी पूर्ति की क्षमता वाला होता है; शिष्य को विद्या की आवश्यकता है, गुरु उसकी पूर्ति करनेवाला है; दरिद्र धन का मोहताज है, धनी उसकी पूर्ति करनेवाला। क्या फिर यह माना जाना चाहिए कि गुरु ने शिष्य को जन्म दिया है? अथवा धनी ने निर्धन को जीवन बख्शा है? श्रीमान् जी, आधीन होना और बात है, उत्पन्न करना और बात है।

लीजिये, अब आप ही बतावें कि क्या ईश्वर के अतिरिक्त शेष संसार, अपने अस्तित्व के लिए ईश्वर की आवश्यकता रखता है? जब आरम्भ में ईश्वर के सिवाय आपके विचार में कोई अन्य न था, तब किसको अस्तित्व की आवश्यकता थी? क्या तब ईश्वर आवश्यकता की पूर्ति करनेवाला था या नहीं? इसके लिए कोई अस्तित्व तो चाहिए जिसको आवश्यकता हो! आवश्यकता रखना भी तो एक गुण है; इसके लिए गुणी चाहिए, क्या वह गुणी अनादि है? आपके विचार में तो अल्लाह के अतिरिक्त और कोई था नहीं, अतः अल्लाह ही मोहताज (आवश्यकता रखनेवाला) होगा। यदि आवश्यकता रखना, यह गुण सनातन नहीं, तो इसकी उत्पत्ति माननी पड़ेगी; अल्लाह ने इसको क्यों उत्पन्न किया? और किस प्रकार किया? उसमें स्वयं में तो कोई कमी है नहीं, यह कहाँ से लाया? (उसके अतिरिक्त तो कुछ था नहीं) यदि ऐसा नहीं तो आप अभाव से भाव की उत्पत्ति मानते हैं! यदि आवश्यकता (कमी) को ईश्वर उत्पन्न न करता तो क्या हानि थी? और जब कमी का अस्तित्व ही न होता, तो फिर अस्तित्व की

आवश्यकता किसे होती ? यह दार्शनिक प्रश्न है, गहरे चिन्तन से काम लें। जीव को आवश्यकता अथवा कमी का गुण अल्लाह ही तो देता है ! यह जीव का स्वाभाविक गुण तो नहीं ? ईश्वर ने जीव को कमीवाला क्यों बनाया ? अल्लाह ने जीव को दिया भी तो क्या—कमी, आवश्यकता। दी किसे गई ?—जीव को, तो जीव को आवश्यकता के गुण से पूर्व होना चाहिये। फ़रमाइये, जीव पहले हुआ या कमी का गुण ? आप कहेंगे, दोनों साथ-साथ उत्पन्न हुए, जैसे अल्लाह ने जीव को कमी वाला ही बनाया। कैसी कमी ? अस्तित्व की ? अस्तित्व की कमी तो तब तक रहेगी जब तक अस्तित्व न मिला; अस्तित्व मिल गया तो आवश्यकता समाप्त हो गई।

दूसरे शब्दों में, जब तक जीव अस्तित्व की कमी रखता है, वह है ही नहीं। अस्तित्व मिल गया तो आवश्यकता न रही। परमात्मा या तो अस्तित्व की आवश्यकता को उत्पन्न कर सकता है, या अस्तित्व को। अस्तित्व और अस्तित्व की आवश्यकता, दोनों एकदम उत्पन्न नहीं हो सकते। आप कहेंगे, आवश्यकता पहले आई और जीव का अस्तित्व उसके पश्चात्। हमने निवेदन किया है आवश्यकता एक गुण है, इसे गुणी चाहिये, क्या वह गुणी अल्लाह है ? यदि आवश्यकता के गुण का गुणी अल्लाह है तो स्वयं वह कमीवाला हो गया; यदि इस गुण का गुणी ईश्वर से अतिरिक्त कोई और है तो वह अनादि मानना होगा।

वास्तव में स्वयंसिद्ध सत्ता को सत्ता की आवश्यकता नहीं होती। स्वयंसिद्ध सत्ता सदैव रहती है, उसका रूप बदलता रहता है, जो उसका गुण है, परन्तु कार्यरूपों का कारण स्वयंसिद्ध अनादि है।

परमात्मा की आवश्यकता

बारहवें तर्क का उत्तर—

मौलाना का बारहवाँ तर्क है—"यदि हम जीव, प्रकृति तथा उनके गुणों को अनादि मान लें तो फिर यह संसार ईश्वर के महत्त्व का द्योतक नहीं रहता।"

आटे तथा पानी के अपने गुणों के साथ, पास-पास पड़े रहने पर भी किसी बुद्धिमान् मनुष्य के गूंधने के बिना स्वयमेव आटा नहीं गंध

जाता। आपने लोहे तथा चुम्बक का उदाहरण प्रस्तुत किया है कि देखो, लोहा चुम्बक के सम्मुख आते ही स्वयमेव उसकी ओर खिच जाता है। क्या यह आटे के स्वयमेव न गुँध सकने का उत्तर है? पानी तथा आटा आपस में मिल तो जाते हैं—आप पानी को आटे की ओर छोड़ दें, मिल तो जाएगा, परन्तु गुँधेगा नहीं, गीला हो जाएगा। यदि आप चुम्बक के उदाहरण पर ही अपने मन्तव्य का आधार रखते हैं तो लीजिये, मिले हुए लोहे तथा चुम्बक को बिना किसी जुदा करनेवाले के स्वयमेव अलग होता दिखा दीजिये! गुँधा जाना एक व्यवस्था का उदाहरण है। आटा तथा पानी गडमड तो हो जाते हैं, परन्तु गुँधने के लिए अलग गूँधनेवाली सत्ता चाहिए। एक चित्र को लीजिये, वह सिवाय कागज़ के टुकड़े तथा कुछ रंगों के अतिरिक्त क्या है? कागज़ पर रंग रख दीजिये, पानी डाल दीजिये, वे मिल तो जाएँगे ही, परन्तु चित्र न बन सकेगा; चित्र बनाने के लिए चित्रकार चाहिए। प्रकृति है, उसमें बनने की शक्ति भी है, परन्तु इस शक्ति को किसी व्यवस्था में बाँधकर कार्य-रूप में लाने के लिए एक ज्ञानवान् सत्ता की आवश्यकता है। पानी भी है, अग्नि भी है, मिला दीजिये, अग्नि बुझ जाएगी; हँडिया बीच में लाइये, भाप बनेगी; उसे बन्द कर दीजिये, बड़ी शक्तिशाली क्रिया का कारण बनेगी; कुछ देर तक रुके रहने दें, हँडिया-सहित उड़ जाएगी। बुद्धि से कार्य लें। कितनी कलों में कार्य करती है! जड़ प्रकृति में शक्ति तो है, परन्तु अन्धी शक्ति। उस शक्ति को किसी व्यवस्था में लाकर छोटे-छोटे कार्यों को करने के लिए जीव की आवश्यकता है और बड़े स्तर पर कार्य के लिए व्यापक ब्रह्म की आवश्यकता है। आप एक छोटे-से कार्य अर्थात् जोड़ने-तोड़ने के लिए किसी अदृश्य शक्ति की आवश्यकता न समझें, परन्तु उस अदृश्य शक्ति का प्रमाण सृष्टि का कण-कण दे रहा है। रंग विद्यमान है, कागज़ भी रखा है, पानी भी हो, परन्तु चित्रकार के बिना चित्र का बनाना सम्भव नहीं है। आप इसे साधारण बात समझें, परन्तु कलाकार की दृष्टि में रंग अथवा कागज का वह मूल्य नहीं, जो चित्रकार का है। सबसे बड़ा कार्य तो यही है। भला प्रातःकाल उषा के सौंदर्य को निहारें, क्या इससे सुन्दर कोई रूप बन सकता है? और क्या यह सौन्दर्य केवल रंगों के मिलाप से ही बन गया? ज़रा आप भी रंग मिला करके तो देखें!

हम Matter में बनने तथा बिगड़ने की दोनों शक्तियाँ स्वीकार

करते हैं। ये दोनों शक्तियाँ इस ब्रह्माण्ड में कार्य करती दीखती हैं। पानी सूक्ष्म होकर बिखरा तो वाष्प के रूप में आ गया, और मिलने की शक्ति ने काम किया, तो पानी बन गया; अधिक जुड़ा तो हिम का रूप ले लिया, हिम में बिखरने की शक्ति ने काम किया तो पानी बन गया, और सूक्ष्म हुआ तो वाष्प का रूप धारण कर लिया। यही बिखराव वाष्प से आगे भी चलता है, ऐसा रसायनशास्त्र (Chemistry) के ज्ञाता बताते हैं। प्रलयावस्था में प्रत्येक प्राकृतिक पदार्थ अत्यन्त सूक्ष्म अवस्था में हो जाता है, इसके पश्चात् (समय पर) प्रकृति के ये परमाणु मिलना आरम्भ करते हैं और सृष्टिरचना होती है। परन्तु बिगड़ने के पश्चात् बनना स्वयमेव नहीं हो पाता; बिगाड़, बनाने की विरोधी क्रिया है। इस प्रकार प्रकृति के परमाणु-अवस्था से उसे सृष्टि के रूप में लाने के लिए कोई ज्ञानयुक्त सत्ता चाहिए, और वही परमात्मा है। चुम्बक की अवस्था में आपने देखा कि लोहा चुम्बक की ओर खिंच तो गया, परन्तु उससे अलग स्वयमेव नहीं हो सकता; उसके लिए कोई ज्ञानयुक्त सत्ता चाहिये। साधारण लोहा चुम्बक का कार्य नहीं कर सकता, परन्तु उसमें चुम्बक भर दीजिये तो लोहे को खींचने लग जाएगा। संसार में इस खींचने तथा अलग करने का कार्य मनुष्य करता है। जब चाहे, मनुष्य लोहे को मिकनातीस (चुम्बक) से खींच ले, जब चाहे उससे जुदा कर दे। परन्तु सारे विश्व का कार्य मनुष्य की शक्ति से परे है; वह व्यापक ज्ञानयुक्त सत्ता के हाथ में है, जिसे हम परमात्मा कहते हैं। इस प्रकार न केवल आटे तथा पानी का उदाहरण, अपितु आपकी दी हुई चुम्बक की मिसाल भी हमारे मन्तव्य का अनुमोदन करती है, आपके दृष्टिकोण का नहीं! आपने व्यर्थ ही उत्तर-प्रत्युत्तर देने का कष्ट किया। आपके लेख में काम की बात कम है, पुनरावृत्ति अधिक। एक ही उत्तर के दो भागों को आप दो उत्तर समझ लेते हैं। आपने पानी तथा आटे के दृष्टान्त पर यह क्या लिख दिया? सोचो तो सही! जिसका अस्तित्व स्वयं का न हो, जिसकी शक्तियाँ स्वयं की न हों, वह स्वयमेव मिल कैसे सकता है? अर्थात् आपके विचार में न तो आटे का अस्तित्व अपना है, न शक्तियाँ अपनी हैं, तो ये किसकी हैं? अल्लाह की? बहुत अच्छा, तो कहिये अल्लाह से, मिल जाया करे, गुँध जाया करे! श्रीमान् जी, अल्लाह की शक्ति है मिलाना, न कि मिलना। यदि प्रकृति में मिलने की शक्ति न हो, तो अल्लाह मिलायेगा किसे? मिलना एक गुण है, इसे

गुणी चाहिये, क्योंकि गुण गुणी के बिना नहीं रहता। यहाँ मिलने का गुण प्रकृति का मानिये या अल्लाह का। हमने यह गुण प्रकृति (Matter) का माना है, आप अल्लाह का मान लीजिये। [परन्तु इससे अल्लाह, अल्लाह न रहेगा, परिवर्तनशील प्रकृति बन जायेगा—अनु०]।

अविभाज्य तत्त्व

तेरहवें तर्क का उत्तर

तेरहवें तर्क में मौलाना ने एक शर्त लगा दी है—"यदि वास्तव में यह सिद्ध हो जाए कि संसार उन सूक्ष्म परमाणुओं से बना है, जो अविभाज्य हैं, तो तुम (आर्य) सच्चे, और हम प्रकृति को अनादि मान लेंगे।" (पृष्ठ २०२)

मौलाना यह सिद्ध करना चाहते हैं कि अविभाज्य तत्त्वों का अस्तित्व ही नहीं होता, अर्थात् कोई ऐसा तत्त्व नहीं जिसका फिर आगे भाग न हो सके। आप लिखते हैं—"दो परमाणुओं को हम इस प्रकार (··) साथ-साथ रखते हैं फिर उनके ऊपर ठीक मध्य में एक परमाणु (∴) रखकर पूछते हैं कि ऊपर का परमाणु तथा नीचे के दो परमाणुओं को स्पर्श करता है? सिद्ध हुआ कि ऊपर के परमाणु के दो भाग हैं, तभी तो उसका एक भाग दाएँ ओर रक्खे परमाणु को छूता है, दूसरा नीचे के बाईं ओर रक्खे परमाणु को स्पर्श करता है (पृष्ठ २०३)।

ऐसे ही तीन परमाणुओं को साथ-साथ (०००) निश्चित करके लिखते हैं—"मध्य का परमाणु दक्षिण तथा वाम-भाग में रक्खे परमाणु से मिलता है" (पृष्ठ २०३)।

मौलाना का तर्क इस भ्रम पर आधारित है कि परमाणु की दक्षिण तथा वाम दिशा होती है। यदि यह कल्पना न करें, तो कभी परमाणु का दायाँ तथा बायाँ (वाम) शब्द प्रयुक्त न कर सकें। मौलाना इसी बात को दूसरे शब्दों में पुनः कहते हैं—"उस परमाणु में लम्बाई-चौड़ाई नहीं तो परमाणुओं से मिलकर बननेवाली वस्तुओं में लम्बाई-चौड़ाई कहाँ से आ जायेगी?" (पृष्ठ २०३)

मौलाना के सारे प्रश्नों के मूल में उनका ज्यामिति से अपरिचय कार्य कर रहा है। ज्यामिति में एक पारिभाषिक शब्द है 'बिन्दु'। बिन्दु (नुक़ता) की परिभाषा यह है कि जिसमें लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई,

तीनों में से कोई न हो, वह बिन्दु है। ज्यामिति में बिन्दु की कल्पना और रसायनशास्त्र में परमाणु की कल्पना एक-सी है। बिन्दुओं का समूह 'रेखा' बनता है, रेखाओं का समूह (सतह) ऊपर का भाग और फिर सतहों का समूह वस्तु के रूप में आता है। विचारणीय है कि बिन्दु में कोई दिशा नहीं, परन्तु रेखा में एक दिशा बन गई—लम्बाई। यह लम्बाई कहाँ से आ गई ? बिन्दु में तो नहीं थी ? रेखा में केवल लम्बाई है, चौड़ाई नहीं, ऊँचाई भी नहीं, परन्तु रेखाओं के समूह से निर्मित सतह (ऊपर का भाग) में लम्बाई भी है और चौड़ाई भी। यह चौड़ाई कहाँ से आ गई ? सतह में लम्बाई-चौड़ाई है, परन्तु ऊँचाई नहीं, जबकि वस्तुएँ जो सतह से मिलकर बनी हैं, लम्बाई-चौड़ाई और ऊँचाई तीनों रखती हैं। फिर भी आप प्रश्न करें कि परमाणु में लम्बाई-चौड़ाई नहीं तो उससे निर्मित वस्तुओं में कहाँ से आ गई ? तो जनाब, ज्यामिति का अध्ययन कीजियेगा ! आप फ़रमा सकते हैं कि बिन्दु तो एक काल्पनिक सत्ता है, वास्तविक नहीं। ध्यान रहे, आप दर्शन के क्षेत्र की बात कर रहे हैं, दर्शन में अनुमान से काम लिया जाता है, इस कल्पना के द्वारा दर्शन का दृष्टिकोण आगे बढ़ता है। जैसे ज्यामिति में बिन्दु के बिना काम नहीं चल सकता, ऐसे ही दार्शनिक क्षेत्र में परमाणु के बिना काम नहीं चलता। और ज़रा देखिये, विज्ञान भी दर्शन तथा ज्यामिति की ही भाषा बोलता है। परमाणु में दिशाएँ नहीं होती हैं। आपने हरबर्ट स्पेन्सर का वाक्य उद्धृत किया है, परन्तु यह तब का है जब अभी रेडियम का आविष्कार नहीं हुआ था। अब तो रेडियम के द्वारा कणों का विभाजन भी हो चुका है और जिस अन्तिम सीमा तक विज्ञान आज तक पहुँचा है, उसका नाम 'इलेक्ट्रॉन' है। यह अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्व है जो सूक्ष्म प्रयुक्त यन्त्रों से भी पकड़ में नहीं आता। इन्द्रियाँ उसे नहीं जान सकतीं, और कोई दूरदर्शक-यन्त्र उसे दिखा नहीं सकता। इसका केवल अनुमान किया जाता है। वह (इलेक्ट्रॉन) स्थान नहीं घेरता, इसलिए उसकी कोई दिशा नहीं। जब दिशाएँ नहीं तो विभाजन कैसा ? क्योंकि विभाजन या तो लम्बाई का होता है या चौड़ाई या ऊँचाई का; बिन्दु में तीनों का अभाव है, इसलिए ज्यामिति का ज्ञाता इसे काट नहीं सकता। इलेक्ट्रॉन में भी तीनों (लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई) का अभाव है, इसलिए उसका विभाजन नहीं हो सकता। यही परिभाषा परमाणु की है जो प्रकृति का भाग है, जिसमें दिशाएँ नहीं, अतः अविभाज्य है।

चूंकि इलेक्ट्रॉन इन्द्रियों अथवा भौतिक यन्त्रों से अनुभव नहीं हो सकता, इसलिए रसायनशास्त्र के ज्ञाता इसे एक शक्ति मानते हैं; परन्तु दर्शन का यह दृष्टिकोण नहीं भूलना चाहिये कि शक्ति एक गुण है, इसे गुणी चाहिए। इलेक्ट्रॉन को यदि गुण माना जाए, तो उसके सूक्ष्म तत्त्व का नाम प्रकृति होगा, जिसका विभाजन नहीं हो सकता।

अब मौलाना को अधिकार है कि अपनी शर्त पूरी करें, और प्रकृति को अनादि स्वीकार करें, अथवा अपने स्वभावानुसार इसे नश्वर और उत्पन्न हुआ मानें।

रूपवान् नश्वर नहीं

चौदहवें तर्क का उत्तर—

प्रकृति के नश्वर होने में चौदहवाँ तर्क यह दिया है—"माद्दः (Matter) किसी-न-किसी रूप से रूपवान् होता ही है, और जिस रूप से वह रूपयुक्त होता है, वह रूप नश्वर होता है" (पृष्ठ २०४)।

हम निवेदन कर चुके हैं कि रूप गुण है, परन्तु रूपवान् गुणी। गुण नश्वर भी होते हैं और सनातन भी, परन्तु गुणी, यदि कार्य हो तो नश्वर होगा, परन्तु यदि वह स्वतःसिद्ध सत्ता है तो नश्वर नहीं हो सकता। यदि गुणी भी स्वतः नश्वर हो, तो गुण विशेषण किसका होगा? मौलाना ने रूपवान् वस्तुओं के नश्वर होने का तर्क प्रस्तुत किया है— "यदि नश्वर न होता, तो नष्ट न होता।" यह सत्य है कि रूप तो नष्ट हो जाते हैं, परन्तु क्या रूप के साथ उसका गुणी, मूल सत्ता भी नष्ट हो जाती है? आप सोचिये, हिम से जल बन गया; हिम का रूप तो मिट गया, परन्तु क्या हिम का Matter जो गुणी था, वह भी मिट गया? यदि वह मिट जाता, तो जल कहाँ से आता? पानी को आँच पर रखिये, वाष्प बन जाएगा, यहाँ पानी का रूप भी मिट गया, परन्तु क्या पानी का मूल Matter भी नष्ट हो गया? यदि वह नष्ट हो जाए तो भाप न बन सके। रूप बदलते रहते हैं; मूल सत्ता स्थिर रहती है।

वस्तुतः रूपों का परिवर्तन, **मूल सत्ता की स्थिरता का प्रमाण है।** यदि Matter न रहे तो रूप का परिवर्तन ही असम्भव हो, अपितु सिरे से वस्तु ही और हो जाये। क्या बर्फ़, पानी का परिवर्तित रूप नहीं? या कोई नई वस्तु है? कौन बुद्धिमान् इसे मानेगा? परन्तु मौलाना को तो

बुद्धि से वैर है; फ़रमाते हैं—"जो वस्तु नश्वरता के आधार पर है वह स्वयं नश्वर है (२०५)।" जनाब, नश्वरता का आधार रूप है, वह नष्ट हो जाता है, वह गुण है एक तत्त्व का, जो सनातन है, अर्थात् प्रकृति।

पन्द्रहवीं दलील से उन्नीसवें तर्क तक मौलाना ने आर्य ग्रन्थों के कुछ प्रमाण दिये हैं जिनसे जीव-प्रकृति के सादि तथा नश्वर होने की चर्चा सिद्ध की है। उन प्रमाणों की व्याख्या तथा दूसरे भी कई प्रमाण हम एक स्थान पर किसी अगले अध्याय में देंगे।

क्या अल्लाह ज़रूरतमन्द है ?

बीसवें तर्क का उत्तर—

बीसवाँ तर्क यह है—"यदि जीव तथा प्रकृति ईश्वर की सृष्टि नहीं, तो संसार को चलाने के लिए ईश्वर को इनकी आवश्यकता के लिए 'मोहताज' (आधीन) होना पड़ेगा और जो दूसरों का मोहताज हो, वह ईश्वर कैसा ?"

ग्यारहवें तर्क के उत्तर में हमने निवेदन किया था कि आवश्यकता एक गुण है, उसे गुणी चाहिये। आप जीव तथा प्रकृति को अपने अस्तित्व के लिए ईश्वर का मोहताज मानते हैं। जीव तथा प्रकृति को अपने अस्तित्व की आवश्यकता उनके उत्पन्न होने से पूर्व होती है या पश्चात् ? यदि उत्पत्ति से पूर्व होती है तो किसे होती है ? यदि पश्चात् होती है तो किसलिए ? अस्तित्व तो हो गया, उसकी आवश्यकता कैसी ? यदि जीव-प्रकृति ईश्वर के समकालीन हैं, तो भी आवश्यकता नहीं हो सकती। क्योंकि जो वस्तु विद्यमान है, वह अस्तित्व के लिए भिखारी क्यों बने ? और यदि जीव तथा प्रकृति अपने अस्तित्व के लिए किसी के भिखारी नहीं, तो अनादि सिद्ध हो गये। अब आपने ईश्वर की आवश्यकता की चर्चा की है। जब किसी आर्य ने कहा कि आवश्यकता उस वस्तु की होती है जो प्राप्त न हो, तो आप बिगड़ गये, और उसे पागल तक कह दिया कि क्या जार्ज पंचम को सेना प्राप्त नहीं ? परन्तु फिर भी उसे सेना की आवश्यकता है।

श्रीमान् जी, जार्ज को सेना की आवश्यकता, तब थी जब वह नहीं थी। अब आवश्यकता है सेना को स्थायी रखने की, तथा समय पर उससे कार्य लेने की, न कि सेवा की।

आप लिखते हैं कि क्या प्रलयकाल में ईश्वर सूर्य-चन्द्रमा…का मोहताज होता है ? जनाब, प्रलयकाल में भी सूर्य-चन्द्रमा के परमाणु विद्यमान रहते हैं, इसलिए ईश्वर के मोहताज होने का प्रश्न नहीं उठता; और फिर प्रलयकाल में सूर्य-चन्द्रमा का कार्य भी नहीं, इसलिए आवश्यकता का प्रश्न कहाँ ? आपने आवश्यकता की परिभाषा दी है—"किसी वस्तु का ऐसा होना कि उसके बिना कार्य न चल सके।" चलो, यह ही ठीक, क्या ईश्वर का कार्य जीव तथा प्रकृति के बिना चल सकता है ? चल सकता है तो चलाये ! क्यों व्यर्थ में परिश्रम करता है, और जीव-प्रकृति को बार-बार बनाता है ? क्या कोई बोझ है जिसे उतारने के लिए वह पुनः-पुनः उत्पत्ति करता है ? आप कहेंगे, उसका अनादि काल से स्रष्टा का गुण, उसे सृष्टि के लिए विवश करता है। क्या यह गुण सृष्टि के घड़े बिना भी रह सकता है ? आपका कहना है कि Matter को तो संसार के लोग स्वयं भी बना सकते हैं। हमारा यहाँ बना सकने अथवा न बना सकने पर विवाद नहीं, विवाद है काम न चल सकने से। क्या ईश्वर का कार्य जीव-प्रकृति के बिना चल सकता है ? स्वयं बना लिये तो क्या, और पहले से अस्तित्व में आये हुओं से काम लिया तो क्या, आवश्यकता तो बराबर है ! जो अपने से अलग है उसकी आवश्यकता है। यदि स्वयं में कोई ऐसा गुण हो, जो दूसरे की सत्ता के बिना प्रकट न हो सके, तो दूसरे की सत्ता की आवश्यकता है। हाँ, यह हो सकता है कि आप ईश्वर के अतिरिक्त शेष सबको उसका गुण बना दें अथवा अंग बना डालें, शक्ति या गुण बना डालें, तो समस्या का समाधान सम्भव है। वस्तुतः आवश्यकता की आपकी परिभाषा ठीक नहीं। आवश्यकता उस वस्तु की होती है जिसके बिना काम न चले तथा जो प्राप्त न हो। ईश्वर का कार्य जीव-प्रकृति के बिना चल नहीं सकता, क्योंकि उसके कई गुण, दूसरे के अस्तित्व पर आधारित हैं, यथा स्रष्टा, न्यायकर्ता, मालिक, ज्ञान, न्याय, दया आदि। इनकी अभिव्यक्ति के लिए दूसरा अस्तित्व चाहिए; यदि जीव और प्रकृति न होते तो ईश्वर मोहताज रहता; परन्तु चूँकि प्राप्त हैं, अतः मोहताजी का दोष ईश्वर पर नहीं आता। आप पूछते हैं कि मोक्ष विद्यमान है, फिर जीव उसकी आवश्यकता क्यों रखता है ? आवश्यकता इसलिए रखता है कि विद्यमान होने पर भी मोक्ष जीव को प्राप्त नहीं। परमात्मा को जीव तथा प्रकृति केवल अस्तित्व होने से प्राप्त ही नहीं, वह उनका स्वामी भी है,

नहीं तो विद्यमान तो संसार में क्या-क्या नहीं ?

हाँ, मुझे प्राप्त उतना है जिसपर मेरा अधिकार है। परमात्मा का अधिकार सब पर है। जीव का मोक्ष पर स्वाभाविक अधिकार नहीं; ईश्वर के द्वारा, शुभ कर्मों के फलस्वरूप इसे मोक्ष प्राप्त होता है। यदि जीव मोक्ष का मालिक होता तो उसे इसकी आवश्यकता न होती ! आप पुनः लिखते हैं "जीव तथा प्रकृति को ईश्वर ने बनाया तो है नहीं कि जब चाहे वह इन्हें बना ले; हाँ, संयोगवश ईश्वर का इनपर अधिकार हो गया (पृष्ठ २१८)।" अधिकार संयोगवश नहीं मिला, अनादि काल से है, और जीव-प्रकृति को जब चाहे खुदा को इनके बनाने की आवश्यकता नहीं; ये अनादि काल से उसे प्राप्त हैं। हम आश्चर्य में हैं कि ईश्वर इनका मोहताज कैसे बन गया ?

आप पूछ सकते हैं कि यदि जीव तथा प्रकृति न हों तो ईश्वर क्या करेगा ? हमारे मन्तव्य में कोई ऐसा काल नहीं, जब जीव तथा प्रकृति न हों। इनका न होना असम्भव है, अतः खुदा का मोहताज होना भी असम्भव ! परन्तु आप कुतर्क पर तुले हैं तो बताइये, यदि खुदा को एक बार "बहुत होने" (कसरत) की सनक न जागी तो कहाँ जाएगा उसका न्याय ? क्या होगा उसके स्वामित्व के गुण का ? ;सब धरे के धरे रह जाएँगे या नहीं ? अब बताइये **आवश्यकता** की दुर्बलता किस मन्तव्य में है ?

प्रेम तथा सृष्टि-रचना

इक्कीसवें तर्क का उत्तर—

मौलाना का २१वाँ तर्क यह है कि "जीव ईश्वर की जब रचना नहीं, तो क्या कारण है कि जीव अपने में ईश्वर का प्रेम पाता है ?" किसी ने कह दिया 'हज़रत, प्रेम तो संसार में सौन्दर्य से होता ही है, आख़िर लैला, सस्सी, सोहनी आदि ने मजनूँ, पुन्नूँ, महींवाल को उत्पन्न तो न किया था (परन्तु प्रेम था)। आप फ़रमाते हैं कि वे (सुन्दर) दृष्टि से दृष्टिगत होते थे, परन्तु खुदा तो दृष्टि में आता नहीं ?" (पृष्ठ २१९)

किसी कवि ने बहुत उपयुक्त कहा है—**हो देखना तो दीदाए-दिल वा करे कोई** (जो ईश्वर को देखना चाहे, तो हृदय के नेत्र खोले)। समाधि की अवस्था में स्थित किसी योगी से पूछिये, क्या आनन्द मिलता है ?

स्वयं आपने बहिश्त की चर्चा में यह वाक्य लिखा है "फिर उस व्यापक सत्ता के आनन्ददायक दर्शन" (पृष्ठ ११०); तब तो उसके दर्शन भी सम्भव हुए ? हाँ, वह दर्शन भौतिक नहीं, आत्मिक है जो आत्मा को स्वयं में हाता है। मोक्ष में यह आनन्द की अवस्था सदा बनी रहती है। यहाँ समाधि-अवस्था में उस आनन्द को प्राप्त किया जाता है। हमारा मन्तव्य है कि प्रत्येक जीव कई बार जन्म-मरण के बंधन में आता है, कई बार मुक्त होता है, इसलिए मोक्ष के आनन्द की धुँधली-सी स्मृति उसे रहती है।

इस प्रेम का कारण मौलाना ने और भी लिखा है "ये जो कई बार सुन्दर देवियों के प्रेमी होते हैं, ये वस्तुतः ईश्वर के सौन्दर्य के प्रेमी होते हैं। ईश्वर अपने सौन्दर्य की थोड़ी-सी झलक किसी को प्रदान कर देता है, इसलिए जीव उस थोड़ी-सी झलक को पाकर दीवाने हो जाते हैं (पृष्ठ २२०)। यह क्या उपहासास्पद बात है, पहले तो कहा कि खुदा का शरीर ही नहीं, फिर फ़रमाया, वह थोड़ी-सी झलक डालता है ? अकाय की भी झलक होती है ? और क्या यह सुन्दर स्त्रियों के बाज़ार में जो इश्क के सौदे होते हैं, यह अल्लाह तआला का इश्क़ है ? वाह साहब वाह ! यदि खुदा का जलवा उसके सुन्दर शरीरवाले हसीनों में है तो यह क्या कहना कि वह दिखाई नहीं देता ? इस इश्क (प्रेम) का कारण यही समझ लीजिये। जैसे यहाँ किसी से प्रेम करने के लिए उसका रचयिता होना आवश्यक नहीं, वैसे ही जीव का ईश्वर से प्रेम भी उसके जीव की रचना के कारण नहीं है। आख़िर यह क्या तर्क है कि हम प्रेमी हैं इसलिए नश्वर नहीं ? (इस्लाम जीव को उत्पन्न तो खुदा से मानता है, परन्तु उसको स्वर्ग में अनन्त काल तक मानता है) [बाईसवीं दलील फिर एक प्रमाण है जिसे हम आगे लेंगे]।

भाव का मूलस्रोत अभाव

तेईसवें तर्क का उत्तर—

तेईसवीं दलील में कहा है "**अस्तित्व**, सब उच्चताओं का केन्द्र तथा आधार है और **अभाव** सब दोषों-हानियों का केन्द्र ! जीव तथा प्रकृति सब दोषों से मुक्त हैं, अतः उनका अस्तित्व अपना नहीं (पृष्ठ २२३)।"

हम यही तर्क जीव तथा प्रकृति के अनादित्व में देते हैं। मौलाना

विचार करें कि क्या दोषों का, पापों का, संसार में अस्तित्व है या नहीं? अगर विश्व में पाप है ही नहीं तो झगड़ा समाप्त, हम और आप सभी निर्दोष तथा पूर्ण ठहरे। यदि पापों का अभाव नहीं, अस्तित्व है, तो इनका मूल केन्द्र कौन-सा है ? अस्तित्व का मूल अभाव तो नहीं होता ? यदि ऐसा मान लें तो फिर उच्चताओं का केन्द्र भी अभाव ही मानना पड़ेगा, इससे तो अल्लाह तआला का भी अभाव से आगमन मानना पड़ेगा, क्योंकि वही तो सर्वश्रेष्ठ हैं ! अभाव ही मूल केन्द्र हो गया, शेष से छुटकारा पाया। जनाव ! पापों, दुर्बलताओं का अस्तित्व है, परन्तु ये गुण हैं, इन्हें गुणी चाहिए और वे जौहर (तत्त्व) हैं जीव तथा प्रकृति ! आपके क्या कहने, आप तो सब पापों, दोषों, दुर्बलताओं का मूल अल्लाह को ठहरायेंगे, या कम-से-कम इस क्षमता की प्राप्ति उसी से मानेंगे और साथ ही कहेंगे कि अल्लाह पूर्ण है, कामिल है, अर्थात् पूर्ण पापी, पूर्ण दुर्बल अथवा यह नहीं तो पूर्ण पापों का, दुर्बलताओं का, दोषों की क्षमता देने का स्रष्टा तो खुदावन्द करीम है—यह भी क्या मन्तव्य है ?

भक्ति तथा अनादित्व

चौबीसवें तर्क का उत्तर—

चौबीसवाँ तर्क, इक्कीसवें तर्क की पुनरावृत्तिमात्र है; फ़रमाते हैं—"यदि जीव को ईश्वर ने रचा नहीं तो उसे ईश्वर की भक्ति तथा उसका सेवक बनवा (जीव को) भार ही तो लगेगा ?" (२२४)

हाँ, कइयों को यह भार लगता है। क्या पापी भक्ति करते हैं ? अभिमानी स्वयं को ईश्वर का बन्दा समझते हैं ? अथवा असंतुष्ट व्यक्ति उसके स्वामित्व को प्रसन्नता से स्वीकार करते हैं ? प्रसन्नता से तो भक्ति वे करते हैं जो उसके दीवाने हैं, और जो मोक्ष अथवा समाधि की स्मृति को प्रतिदिन अपने शुभकर्मों से चमका देते हैं। परन्तु भक्ति का 'रचना' होने से क्या सम्बन्ध ? मान लो जीव ईश्वर की रचना है तो क्या यह मानने से जीव स्वयमेव ईश्वर के भक्त हो गए ? जो मनुष्य अभिमानी हैं, पापी हैं, तो क्या वे उसकी रचना नहीं है ? अथवा ईश्वर ने उन्हें स्वयं अभिमानी बना दिया ? अथवा पापों की रुचि स्वयं ईश्वर ने दी ? आख़िर पापों का मूल केन्द्र कौन है ? क्या पाप का वह गुण

ईश्वर ने स्वयं बनाया है ? तब तो दार्शनिक दृष्टि से पापों का मूल-केन्द्र ही अल्लाह मियाँ ठहरेंगे। मियाँ ! मान लो, जीव अनादि है और उसका अभिमान या भक्ति के संस्कार भी सनातन हैं। परमात्मा को सबका स्रष्टा मानकर सब पापों का उसे केन्द्र न बनाओ !

पच्चीसवाँ तर्क फिर एक प्रमाण है. जिसकी व्याख्या आगे होगी।

जीव तथा प्रकृति की आवश्यकता

छब्बीसवें तर्क का उत्तर—

छब्बीसवाँ तर्क भी ग्यारहवें तथा तेईसवें तर्क की आवृत्ति है; पूछते हैं—"जीव तथा प्रकृति, स्वतःसिद्ध सत्ता हैं, अनादि हैं, तो सुनो कि स्वतःसिद्ध सत्ता का खुदा होना आवश्यक है··· जिसका अस्तित्व अत्यन्त आवश्यक है, उसके लिए अनिवार्य है कि वह सब श्रेष्ठताओं का केन्द्र हो।···देखो जो दुर्बल है उसका अस्तित्व न हो तो क्या घट जायेगा ?" (पृष्ठ २२७)

हमारा तो कुछ नहीं घट जाएगा। कठिनाई यह है कि दुर्बल का अस्तित्व है, आप उसे अनावश्यक मानें, अधूरा मानें, तो भी उसका अस्तित्व है; और यदि आप अपने मस्तिष्क से उसे अनावश्यक मानने पर तुले ही हों, तो सब उच्चताओं के केन्द्र के न होने पर भी क्या कमी रह जाएगी ? आखिर कमी का निर्णय तो आपने और हमने ही करना है। हम ही न हुए तो खुदा भी हमारी बला से न हो, उसकी आवश्यकता किसे होगी ? जनाब ! यह आवश्यकता दर्शन को है; दर्शन में उस सत्ता की आवश्यकता रहती है जिसके अभाव में संसार की समस्या का समाधान नहीं हो पाता। यथा, संसार में जो जीवनशक्ति मिलती है उसका 'जौहर'-गुणी चाहिए, वह जीव है। संसार में जड़ता भी दृष्टिगोचर होती है, उसका गुणी भी चाहिए, वह प्रकृति है। संसार में दुर्बलताएँ, विवशताएँ तथा पाप भी दीखते हैं, इन गुणों के गुणी हैं जीव तथा प्रकृति। संसार में व्यवस्था भी पाते हैं, श्रेष्ठता भी दीखती है। संसार पर दृष्टि डालें तो सारा विश्व एक ही व्यवस्था में चलता दृष्टिगोचर होता है। यह संसार का चित्र केवल कुछ रंगों का मेल नहीं, किसी चित्रकार की चित्रकारी का कमाल है। संसार का प्रत्येक कार्य नियम तथा व्यवस्था से बँधा हुआ दीखता है। नैतिकता के नियम हैं, जीवशास्त्र के

नियम हैं ये नियम किसी योग्य नियामक, पूर्ण व्यवस्थापक तथा शक्तिमान् स्वामी की ओर संकेत करते हैं और वह परमात्मा है। 'आवश्यकता' के यही अर्थ हैं; और यदि दर्शन से मुँह फेर लो, जैसे मौलाना होते हैं, तो न दुर्बल की आवश्यकता है और न पूर्ण की; और इस विवाद की भी क्या आवश्यकता जो मियाँजी ने व्यर्थ छेड़ रखा है ?

सत्ताईसवें तर्क से इकतीसवें तर्क तक फिर आर्यों की पवित्र पुस्तकों के प्रमाण दिये गए हैं, जिनपर हम आगे चलकर प्रकाश डालेंगे।

गुणी का विनाश नहीं

बत्तीसवें तर्क का उत्तर—

जीव के नश्वर होने में मौलाना ने बत्तीसवाँ तर्क यह दिया है कि "गुणों के विनाश के साथ स्वयं गुणी का भी नाश हो जाता है। जीवों को कुछ पापों के दण्ड-स्वरूप वनस्पति में, यथा वटवृक्ष में, जन्म दिया जाता है। अब जो जीव वट वृक्ष में एक सहस्र वर्ष तक रहता है, उस समय तक जीव के सारे गुण, तुम स्वयं मानते हो कि नष्ट हो जाते हैं (२३४)।"

इस साधारण चर्चा के पश्चात् मौलाना ने जीव के इच्छा-द्वेष आदि ६ गुणों का वर्णन किया है, और कहा है कि वनस्पति जगत् में ये गुण नहीं रहते। मौलाना का यह तर्क भी नया नहीं; छठे तर्क के अन्तर्गत आ जाता है। परन्तु मौलाना को तर्कों की संख्या अधिक दिखाने की सनक है, सो ठीक है। हम तो पहले भी निवेदन कर चुके हैं कि गुण दो प्रकार के होते हैं, स्थायी तथा अस्थायी; आत्मा का स्थायी गुण है उसकी चेतनता। इस चेतना के द्वारा एक ओर जीवों की बौद्धिक क्रिया चलती है, और दूसरी ओर जीवों की जीवन-शक्तियाँ पुष्ट होती हैं। स्वप्नावस्था में जीव के सम्मुख स्वप्न के अतिरिक्त कुछ नहीं होता, परन्तु कौन कहता है कि उसमें चेतनता नहीं रहती ? जब तक जीवन है, तब तक चेतनता है। वनस्पति-जगत् में जीवन-तत्त्व का जड़ों से खिचकर, ऊपर की ओर चढ़ना, इन्हीं पुष्ट पुट्ठों के द्वारा होता है जो पौधों तथा वृक्षों की छाल के भीतर होते हैं और उनका वनस्पति-जगत् में वही स्थान है, जो शेष जीव-जगत् में पुट्ठों का है। दोनों अवस्थाओं में पुट्ठों पर बाह्य वातावरण बिजली का-सा प्रभाव डालता है, जिससे ये पुट्ठे

फैलते तथा सिकुड़ते हैं, और वनस्पति-जगत् में भी जीवन-तत्त्व तथा शेष जीवों में रक्त का प्रवाह चलने लगता है। ये पुट्ठे चेतनता का भौतिक साधन हैं, इसलिए वट वृक्ष जो सहस्र वर्ष तक जीवित रहता है, उसमें जीवन-तत्त्व रहता है, और वह इन्हीं पुट्ठों के द्वारा जो वट में रहनेवाले जीव की चेतनता का भौतिक साधन हैं। अतः वट वृक्ष चेतन है, यद्यपि उसकी चेतनता का बौद्धिक क्षेत्र इस काल के लिए बन्द है।

अतः जब जीव का मूल गुण चेतनता रहती है, तो उसके गुणों का नाश नहीं होता, इसलिए गुणी अर्थात् जीव के नाश का भी प्रश्न नहीं उठता।

यदि प्रत्येक गुण के केवल रहने से नहीं, कार्य में आने से ही गुणी का होना अभीष्ट है तो सृष्टि-उत्पत्ति से पूर्व जब अल्लाह के गुणों-का उपयोग नहीं होता, वह मालिक नहीं होता, स्रष्टा भी नहीं होता, स्थिर रखनेवाला भी नहीं, वह रहता है या नहीं? आपके ही किसी भाई का कथन है **"अल्लाह के पल्ले में वहदत के सिवा क्या है?"** हाँ, तब अल्लाह के सम्बन्ध में आपका जो विचार हो, बना लें। वह आपके मन को जँच सके, आप स्वयं मालिक हैं!

विचाररहित तर्क

तेतीसवें तर्क का उत्तर—

"जीव के नश्वर होने की तेतीसवीं दलील 'कैंचवे' नाम के प्राणी से सम्बद्ध है, परन्तु इस तर्क पर मैंने स्वयं अभी विचार नहीं किया।"

ये मौलवी साहब के शब्द हैं। यदि विचार नहीं किया था, तो लिखने की जल्दी क्या थी? यही न कि तर्क-संख्या बत्तीस से तेतीस हो जाए? ग़लत दलीलों से ग़लती बढ़ेगी, शुद्ध तर्क एक भी पर्याप्त होता है। ख़ैर, यह आप जानें, आप पहले विचार कर लें, तो हम भी उत्तर में कुछ निवेदन कर देंगे।

दूसरा अध्याय

'हद्दूसे रूहो माद्दः' के पहले व तीसरे अध्याय पर

आर्यों के आक्षेप

एवं उनके उत्तर और आलोचना

मौलाना ने अपनी पुस्तक के प्रथम अध्याय में आर्यों की ओर से जीव तथा प्रकृति के अनादित्व के पक्ष में चार तर्क नकूल किये अथवा कल्पना से लिखकर उनका उत्तर देने की कृपा की है। इस्लाम के तर्कों का उत्तर देने के पश्चात् इस्लाम ने आर्यों के तर्क का जो उत्तर दिया है, उसकी आलोचना उपयुक्त रहेगी। प्रारम्भ करते हैं पहले अध्याय से।

मालिक बेमुल्क

प्रथम तर्क—

आर्यों की ओर से पहला तर्क जनाब ने यही दिया है—"जैसे ईश्वर अनादि है उसी प्रकार उसके गुण भी अनादि हैं। अन्य गुणों के अतिरिक्त, एक गुण उसका यह भी है कि वह जगत् का स्वामी है, यह गुण भी अनादि है। मालिक (स्वामी) होने का गुण माँग करता है कि कोई 'ममलूक', स्वामित्व की वस्तु, हो। यदि यह माना जाए कि खुदा तो अनादि है, और जीव तथा प्रकृति सादि, तो मानना पड़ेगा कि ईश्वर के मालिक होने का गुण भी नश्वर है! मौलाना ने इस तर्क की आलोचना में चार उत्तर दिए हैं—

सृष्टि प्रवाह से अनादि

(१) क़ादियानी उत्तर—

"वर्तमान जीव तथा प्रकृति निस्सन्देह नश्वर हैं, परन्तु खुदा सदा से पैदा करनेवाला तथा उनका मालिक होनेवाला है। इन वर्तमान

जीवों से पूर्व और जीव थे, उससे पूर्व और, और यह सिलसिला ऐसा है जिसका आरम्भ नहीं (पृष्ठ ५)।"

यह उसी पहली बात को दूसरे शब्दों में कहा गया है कि जीव प्रवाह से अनादि है, परन्तु स्वरूप से सादि और नश्वर। इससे साफ़ प्रकट हुआ कि अहमदी मित्रों का काम भी ईश्वरेतर सत्ता को अनादि माने बिना चलता नहीं। इस बात में तो अन्तर रख लिया कि जीव तथा प्रकृति प्रवाह से अनादि हैं। हम ऊपर लिख चुके हैं कि प्रवाह में भी अनादि काल से कुछ जीव तो होंगे ही। यदि परमात्मा अनादि काल से स्रष्टा का गुण रखता है तो अनादि काल से उसे जीव तथा प्रकृति की सृष्टि करनी चाहिए, और वे जीव अनादि ही होंगे।

अनादि स्रष्टा, केवल शक्ति के 'कारण'

(२) अहमदियों से भिन्न इस्लाम का उत्तर—

दूसरा उत्तर मौलाना ने उन लोगों की ओर से उद्धृत किया है, जो स्रष्टा की शक्ति तो ईश्वर में सनातन काल से मानते हैं, परन्तु सृष्टि के बनाने का आरम्भ मानते हैं। इस उत्तर पर अहमदी मौलाना ने यह लिखने का दुस्साहस भी किया है कि वस्तुतः यह इस्लाम का मन्तव्य नहीं है। जनाब ! यदि यह इस्लाम का मन्तव्य नहीं है, तो इस्लाम से इतर मन्तव्यों के भी आप उत्तरदायी हैं ? सत्य यह है कि यही मन्तव्य इस्लाम का है, परन्तु हाँ, अहमदी संस्था से भिन्न इस्लाम का। सो यह निर्णय तो अहमदी तथा उनसे भिन्न विचार के मुसलमान करें कि इस्लाम का मन्तव्य कौन-सा है। हमें तो मौलाना के लिखने पर केवल यह आपत्ति है कि वह जो उत्तर इस्लाम का नहीं मानते, व्यर्थ में उसे क्यों प्रस्तुत करते हैं ? क्या संख्या-वृद्धि के विचार से ? अथवा अपने ज्ञान का अधिक प्रदर्शन अभीष्ट है ? मौलाना का यह उत्तर **'इलज़ामी'** है (जिस अपने मन्तव्य को विरोधी के मन्तव्य से सिद्ध किया जाये, वह उत्तर **'इलज़ामी'** जवाब कहलाता है--अनु०) मौलाना लिखते हैं "आर्य-समाज मानता है कि प्रत्येक सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों को वेद का ईश्वरीय ज्ञान दिया जाता है। परन्तु इसके पश्चात् चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष तक ईश्वर के ज्ञान देने की शक्ति निष्क्रिय रहती है। परन्तु क्या कोई आर्य कह सकता है कि ईश्वर गूंगा है ?" (पृष्ठ ६)

शब्द गूँगा का प्रयोग मौलाना यदि न करते, तो कोई अन्तर न पड़ता, भाव भी स्पष्ट हो सकता था। ख़ैर, आपने इस मन्तव्य को स्पष्ट किया है कि ईश्वर इसी प्रकार से अनादि काल से सृष्टि रचने की शक्ति तो रखता है, परन्तु क्रिया में केवल इसी सृष्टि के रचनाकाल में वह शक्ति अभिव्यक्त हुई। आपने उदाहरण दिया कि ज्ञान भी तो ईश्वर सृष्टि के आरम्भ में ही देता है ? केवल एक बार। परन्तु हमारे मन्तव्य तथा इस इस्लामी मन्तव्य में आकाश-पाताल का अन्तर है। हम ज्ञान का प्रदान-काल हर सृष्टि के आरम्भ में मानते हैं और सृष्टि-रचना अनादि काल से हो रही है, इसलिए हमारे मन्तव्य में ज्ञान के प्रदान करने की शक्ति ही नहीं, अपितु क्रिया भी अनादि काल से चल रही है; परन्तु जिन मुसलमानों के मन्तव्य के आप पक्षधर हैं, वहाँ आपके शब्दों में ईश्वर के रचयिता होने की शक्ति, क्रिया रूप में, केवल इसी सृष्टि की रचना में वे मानते हैं, इससे पूर्व अनादि काल से इस सृष्टि के प्रारम्भ तक ईश्वर का स्रष्टा-शक्ति का कभी प्रयोग नहीं हुआ। विचारणीय है कि किसी शक्ति के होने का प्रमाण तभी होता है, जब वह शक्ति क्रिया-रूप में आए। वर्तमान सृष्टि से पूर्व तो खुदा से क्रिया-रूप में आपके मन्तव्यानुसार कभी स्रष्टा होने का प्रमाण दिया नहीं, अपनी शक्ति का परीक्षण भी नहीं किया, इस शक्ति का अभ्यास भी नहीं किया, तो वह स्वामी किसका था ? प्रश्न तो वैसे का वैसा बना रहा ? यह तो समझ में आता है कि प्रत्येक शक्ति का प्रयोग हर समय और हर स्थान पर बराबर नहीं किया जाता; यथा किसी को यदि यह विचार हो कि ईश्वर एक ही वस्तु पर, एक ही क्षण में अपनी जीवन तथा मृत्यु देने की शक्ति का इकट्ठा प्रयोग करे, तो ऐसा सोचनेवाले की भूल है। परन्तु यह आवश्यक है कि ईश्वर की जीवनदात्री शक्ति का प्रयोग भी अनादि काल से हो, और मृत्युदात्री शक्ति का भी। प्रयोग का अवसर तथा स्थान बदलता रहता है। इससे कोई शक्ति मिटती नहीं। परन्तु यदि अनादि काल से एक शक्ति का प्रयोग ही न हुआ हो, तो समझना चाहिए कि अनादि काल से वह शक्ति थी ही नहीं, अथवा किसी दबाव से वह समाप्तप्राय हो गई थी। इस अवस्था में अब भी कैसे विश्वास किया जाए कि यह शक्ति रहेगी अथवा कोई और शक्ति जाग उठेगी, जो ईश्वर की पहले की शक्तियों से सर्वथा भिन्न, बल्कि विरुद्ध हो ? जैसे ईश्वर ने अनादि काल से स्रष्टा न रहकर, अपनी पुरानी परम्परा

के विरुद्ध स्रष्टा होना अब पसन्द कर लिया, ऐसे ही फिर भी कभी ऐसा सम्भव है। अतः आक्षेप वैसे का वैसा है, इस्लाम पर भी और ग़ैर-इस्लाम (?) पर भी !

सापेक्ष गुण

(३) ग़ैर-अहमदी उत्तर—

तीसरा उत्तर भी अहमदी संस्था से भिन्न मुसलमानों का दिया उत्तर है, जिसे आप मुसलमान मानते हीं नहीं। हमें आश्चर्य है कि जब आप उन्हें इस्लाम में मानते ही नहीं, तो उनके वकील क्यों बनते हैं ? क्या इस वकालत का पारिश्रमिक मिलेगा ? उत्तर इस प्रकार है— "अल्लाह के गुण दो प्रकार के हैं—एक वास्तविक, दूसरे सम्बन्धित। वास्तविक गुण वे हैं जिनकी पूर्ति अल्लाह से इतर अस्तित्व की अपेक्षा नहीं रखती, यथा—वह अनादि है, पवित्र है, अनन्त है आदि। दूसरे गुण सम्बन्धित गुण हैं, जो ईश्वर से इतर सत्ता की अपेक्षा रखते हैं, यथा—स्रष्टा, स्वामित्व, पोषक इत्यादि। वास्तविक गुण सनातन हैं परन्तु सम्बन्धित गुण तभी प्रकट होते हैं जब ईश्वर से इतर सत्ता का अस्तित्व प्रारम्भ हो (पृष्ठ ७)।"

यह तो समझ में आया कि कुछ सम्बन्धित गुण हर समय तथा हर स्थान पर व्यक्त नहीं होते, जैसे हम जीवन तथा मृत्यु के सम्बन्ध में पहले कह आए हैं, परन्तु अनादि काल से इन गुणों की अभिव्यक्ति हो ही नहीं, और फिर एकदम हो जाए, यह इन गुणों के अनादि काल से अभाव का द्योतक है। इस ग़ैर-इस्लामी उत्तर की आलोचना हम अपने शब्दों में क्यों करें? मिर्ज़ा गुलाम अहमद क़ादियानी लिखते हैं—"ईश्वर के गुण स्रष्टा, पोषक आदि सभी अनादि हैं, पर ईश्वर के इन गुणों के अनादि होने के कारण सृष्टि का अस्तित्व भी प्रवाह से अनादि मानना पड़ता है। (चश्माए मआरफ़त १६०)

हम कई बार इससे पूर्व भी लिख चुके हैं कि सृष्टि का प्रवाह-रूप व्यक्तियों के बिना सम्भव नहीं। आख़िर यह कैसे हो सकता है कि अनादि स्रष्टा व्यक्ति तो एक भी उत्पन्न न करे, और सृष्टि का प्रकार बन जाए ? अतः जो प्रकार अथवा प्रवाह को अनादि मानते हैं, उन्हें व्यक्तियों को भी अनादि मानना पड़ेगा (ध्यान रहे कि क़ादियानी,

सृष्टि का बनना-बिगड़ना अनादि काल से मानते हैं ताकि ईश्वर का स्रष्टा गुण अनादि रह पाये, परन्तु यह भी मानते हैं कि हर सृष्टि में खुदा नये जीव उत्पन्न करता है। पं० चमूपति का कहना है कि अनादि काल की सृष्टि में कोई जीव तो अनादि होगा ही, क्योंकि जीवों के बिना सृष्टि सम्भव नहीं। -अनु०) मौलाना का अपने मन्तव्य से हटकर भी उत्तर देना प्रकट करता है कि उन्हें आर्यसमाज से स्वाभाविक चिढ़ है। मियाँ! जीव-प्रकृति को आप अनादि न मानें, आपकी इच्छा, परन्तु क्योंकि आर्यसमाज ऐसा मानता है, उसके लिए अपने मन्तव्यों से हटकर दूसरों के वकील आप क्यों बनते हैं? आपने प्रवाह से जीव तथा प्रकृति को सनातन माना है और सनातन सृष्टि के कुछ जीवों का सनातन (अनादि) होना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, आप मानसिक रूप में जीव-प्रकृति के अनादित्व को स्वीकार कर चुके हैं, और यदि यही इस्लाम है तो आपमें और हममें भेद कैसा? अब आप इसे आर्यसमाजी मन्तव्य न कहकर इस्लाम का नाम दें तो कोई अन्तर नहीं पड़ता।

चौथे तर्क की पुनरावृत्ति—

चौथा उत्तर मौलाना यह देते हैं कि "जब ईश्वर, जीवों तथा प्रकृति को उत्पन्न करनेवाला है, न उनका विनाश कर सकता है तो उसका क्या अधिकार है कि उनपर अधिकार रखे?" (पृष्ठ ८) यह उत्तर क्या है जीवों के सादि तथा नश्वर होने के सम्बन्ध में दी गई मौलाना की चौथी दलील की पुनरावृत्ति है। इसकी आलोचना चौथे तर्क के उत्तर में हो चुकी है, वहाँ देखने का कष्ट करें।

जिसका कारण भौतिक न हो वह अनादि है

आर्यों की ओर से दिया दूसरा तर्क—

आर्यों की ओर से जीव तथा प्रकृति के अनादित्व में यह तर्क प्रस्तुत किया है—"संसार में जो वस्तु बनती है, उसका कोई-न-कोई भौतिक कारण होता है। चूँकि मुसलमान भी नहीं मानते और वास्तविकता भी यही है कि जीव तथा प्रकृति का कोई भौतिक कारण नहीं है, इसलिए दोनों अनादि हैं।" (पृष्ठ ९) उत्तर में मौलाना ने दो तर्क प्रस्तुत किये हैं।

१. क्या साधारण कारण आवश्यक है ?

जैसे किसी वस्तु के बनने के लिए भौतिक कारण की आवश्यकता है, उसी तरह बनाने के साधनों की भी आवश्यकता होती है; परन्तु इस नियम के होते हुए भी तुम ईश्वर को इसका अपवाद मानते हो। तुम्हारा विश्वास है कि परमेश्वर साधनों के बिना भी वस्तुएँ बना सकता है। इस प्रकार तुम भौतिक कारण वाले सिद्धान्त में भी ईश्वर को अपवाद-रूप में क्यों नहीं मान लेते ? (पृष्ठ ९) किसी वस्तु के निर्माण में साधनों की शर्त पूर्णरूपेण सब पर नहीं लगती। साधनों की आवश्यकता उस कर्ता को होती है जो व्यापक न हो, यथा मनुष्य। जैसे मनुष्य कोई वस्तु बनायेगा तो अपने से अलग किसी अस्तित्व में परिवर्तन लाएगा। उस अस्तित्व तक उसकी पहुँच साधनों के बिना सम्भव नहीं; इन साधनों में उसका अपना शरीर भी एक साधन है। ईश्वर सवव्यापक है; उसे अपने से बाहर नहीं जाना है, इसलिए उसे साधनों की आवश्यकता नहीं। मौलाना ने अपनी पुस्तक के ११वें पृष्ठ पर सत्यार्थ-प्रकाश का प्रमाण दिया है जिसमें सृष्टि के तीन कारणों—निमित्त (यदि यह व्यापक हो तो बिना साधनों के कार्य कर सकता है; यदि एकदेशी हो तो साधनों का उपयोग भी कर सकता है), उपादान कारण तथा साधारण कारण, जैसे आकाश, काल आदि जो प्रत्येक वस्तु के निर्माण में आवश्यक हैं। इसके अतिरिक्त साधनों को हमारे आर्यदर्शन में कहीं कारण-रूप से नहीं माना गया। मौलाना को अनुवाद से भ्रम हुआ है। साधारण कारण का अर्थ किसी भी कोश में यंत्र अथवा साधनों का नहीं है। अतः यह साधनों का कारण न तो आर्यदर्शन में माना गया है और न हमने ईश्वर को इस विषय में अपवादरूप माना है। यदि प्रकृति की अनादि न होने की बात ईश्वर के साधनों के बिना सृष्टि के उत्पन्न करने के भ्रम पर आधारित थी, तो वह विचार भ्रमयुक्त होने के कारण मिथ्या सिद्ध हुआ। यदि प्रकृति के अपवाद का आपका आवेदन, साधनों के कारण के अपवाद के भ्रम से था तो आपका यह आवेदन, कारण के मिथ्या होने के प्रमाणित होने पर स्वयमेव समाप्त हो गया।

२. प्रतिज्ञा को ही तर्क बना दिया

दूसरे उत्तर में लिखा है, "क्योंकि आपके विचार में जीव तथा प्रकृति निरवयव हैं, अतः यदि वे उत्पन्न हों तो उनका कोई भौतिक कारण न होगा, क्योंकि भौतिक कारण सावयव वस्तुओं के लिए होता है (१३)।" यही तो हम भी कहते हैं कि प्रकृति निरवयव है, जीव भी निरवयव है, उनका उत्पन्न होने का तथा भौतिक कारण का प्रश्न ही नहीं उठता। वे अनादि हैं। आख़िर वे किसलिए उत्पन्न होंगे? आपने लिख दिया, 'यदि वे उत्पन्न हों', क्या निरवयव भी उत्पन्न होते हैं? पैदा होने का अर्थ है अवयवों का व्यवस्थित होना। निरवयव यदि व्यवस्थित हों तो सावयव हो जाएँगे, निरवयव न रहेंगे। आपका तथा हमारा विवादास्पद विषय है कि क्या निरवयव भी अभाव से भाव में लाये जाते हैं? आपने उत्तर में लिख दिया—"अभाव से भाव में लाना अर्थात् निरवयव को अभाव से अस्तित्व में लाना अल्लाह के जादुई हाथों का करिश्मा है (१३)।" श्रीमान् जी, यह तो आपकी प्रतिज्ञामात्र है। इसमें तर्क दिया होता तो कुछ बात थी, क्या केवल प्रतिज्ञामात्र के कथन से ही प्रतिज्ञा हो गई?

(१) प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा—

आर्यों के द्वारा जीव तथा प्रकृति के अनादित्व में तीसरा तर्क दिया गया है कि संसार में कोई वस्तु अभाव से भाव में आते नहीं देखी जाती, तो कैसे मान लिया जाए कि अभाव से भाव होता है? (अर्थात् संसार का जीव तथा प्रकृति द्वारा बनना, उनके अनादित्व का प्रमाण है) मौलाना ने इसके दो उत्तर लिखे हैं। प्रथम तो आर्यों के मन्तव्य द्वारा सिद्ध किया है कि "ऋषि दयानन्द माता-पिता के बिना सन्तानोत्पत्ति को असम्भव मानते हैं, परन्तु सृष्टि के आरम्भ में अमैथुनी सृष्टि में माता-पिता के बिना मनुष्यों की उत्पत्ति मानते हैं।" इसपर मौलाना का आग्रह है कि जब एक असम्भव को सृष्टि के आरम्भ में सम्भव मान लिया, तो दूसरे असम्भव अर्थात् अभाव से भावोत्पत्ति को भी सम्भव स्वीकार कर लो। जनाब! ऋषि की लिखी असम्भव बातों में कुछ और का भी वर्णन है, यथा मनुष्य के सींग, आकाश-पुष्प, बिना वर्षा तथा धरती के अन्न की उत्पत्ति आदि; इनको भी तो सम्भव स्वीकार

करना था ? माता-पिता के बिना पुत्रोत्पत्ति की बात सृष्टि के आरम्भ के पश्चात् असम्भव है। इसे आप भी स्वीकार करते हैं और हम भी। सृष्टि के आरम्भ में अमैथुनी सृष्टि के अतिरिक्त कोई उपाय बताइये? ऐसे असम्भव को सम्भव मानना, विशेष अवस्था में दर्शन की अनिवार्यता है; परन्तु क्योंकि एक असम्भव को सम्भव मान लिया है, अत: प्रत्येक असम्भव को सम्भव स्वीकार करो, यह और बात है। यह तो जैसे दर्शन के साथ उपहास है। आप भी तो हज़रत आदम को किसी की सन्तान नहीं मानते ? बल्कि इस विचार से कि कहीं, आदम की सन्तान को आपस में भाई-वहिन का विवाद न माना जाये, प्रारम्भ में एक आदम नहीं, कई आदम उत्पन्न हुए, ऐसा मानते हैं। धीरे-धीरे आप आर्यसमाजी हो रहे हैं। अत: इस मन्तव्य में तो आप और हम समान दृष्टिकोण के हैं कि सृष्टि के आरम्भ में अमैथुनी सृष्टि हुई; अब इससे यह कैसे सिद्ध हो गया कि भौतिक संसार का कोई भौतिक कारण भी नहीं था ? हज़रत आदम का जीव अनादि, उसके शरीर और प्रकृति का कारण अनादि, आदम का अस्तित्व भी तो अभाव से भाव में नहीं आया ? फिर आप सब जीवों को, प्रकृति को, बिना कारण के उत्पन्न होना, ऐसा मानने को कैसे कहते हैं ? अमैथुनी सृष्टि का उपादान-कारण प्रकृति थी। उनके माता-पिता न थे। आपसे भी कोई जीव तथा प्रकृति के माता-पिता का प्रश्न करे तो कह देना कि नहीं है। अब तो प्रश्न है उपादान कारण के अस्तित्व का।

(२) प्रत्यक्ष नहीं तो अनुमान-प्रमाण से देखें —

दूसरा उत्तर प्रश्नोत्तर के रूप में दिया है जिसका सार यह है कि न देखने को तो प्रलयावस्था को भी किसी ने नहीं देखा, Matter की सूक्ष्मावस्था किसी भी इन्द्रिय का विषय नहीं है। प्रारम्भ का ईश्वरीय ज्ञान भी किसी ने होते नहीं देखा, फिर भी इस अवस्था पर और घटनाओं पर विश्वास किया जाता है, तो उपादान कारण के अभाव पर भी विश्वास कर लेना चाहिए।"

श्रीमान् जी ! प्रलय की अवस्था का अनुमान तो वनस्पतिशास्त्र (फ़िज़िक्स) के अध्ययन से होता है। खगोल विद्या के जानकार बताते हैं कि किसी समय Matter सूक्ष्म अवस्था में था जिसे विद्वान् Chaos कहते हैं। इन विद्वानों का कहना है कि यह Matter फिर उसी अवस्था में चला

जाएगा, यही प्रलय की अवस्था है। इसी को Matter की सूक्ष्मावस्था कहते हैं। ज्ञान के प्रारम्भ की पहेली भी बिना ईश्वरीय ज्ञान के स्पष्ट नहीं होती। वेद ने इन सबकी पूर्ण व्याख्या की है, परन्तु आप क्योंकि वेद का प्रमाण स्वीकार न करेंगे, इसलिए हम उसका आग्रह नहीं करते और आपसे प्रार्थना करते हैं कि केवल क़ुर्आन के प्रमाणों पर कोई दार्शनिक भवन तैयार न करें। कोई तर्क दें। प्रलय तथा ईश्वरीय ज्ञान का कारण हमने बता दिया। आप अभाव से भावोत्पत्ति में कोई तर्क देंगे तो उसपर विचार किया जायगा। दर्शन में कोई दृष्टान्त और वह भी अनुपयुक्त दृष्टान्त कभी तर्क का काम नहीं करता। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि आपकी प्रस्तुत की गई क़ुर्आन की आयत आपका साथ नहीं देती। इसपर विचार हम आगे चलके करेंगे, अभी इसे बन्द करके रख दीजिये।

अभाव से भाव

चौथा तर्क—

आर्यों का चौथा तर्क आपने इस प्रकार लिखा है—"अतएव अभाव कभी भी भाव का उपादान कारण नहीं बन सकता।" (१९)

'से' के अर्थ—

उत्तर में आर्यों का उपहास करते हुए मौलाना ने लिखा है कि जब हम अभाव से भावोत्पत्ति की बात कहते हैं, तो वहाँ अभाव को भाव का उपादान कारण नहीं मानते; जब हम कहते हैं, अमुक व्यक्ति दरिद्र से धनी हो गया अथवा रोग से स्वस्थ हो गया, तो यहाँ 'से' से अभिप्राय परिस्थिति के परिवर्तन से है, उपादान कारण से नहीं। अभिप्राय यह है कि अभाव, भाव की विरोधी अवस्था है; अभाव एक अवस्था है, भाव दूसरी। दोनों अवस्थाएँ संसार की हैं। पहले एक अवस्था थी, अर्थात् यह जगत् अभाव में था; फिर इसके विरुद्ध दूसरी अवस्था हो गई, और जगत् 'भाव' की अवस्था में आ गया। पाठकों को हमारा प्रारम्भ में कहा वाक्य ध्यान में होगा कि दार्शनिक दृष्टिकोण से 'अवस्था' एक विशेषण है, जो अपने विशेष्य के बिना रह नहीं सकती। अवस्था अपना विशेष्य चाहती है, अतः पूछना इतना है कि भाव तथा अभाव जो

परस्पर विरोधी अवस्थाएँ हैं और जो एक के पश्चात् दूसरी आती रहती हैं, ये किसका गुण हैं ? दूसरे शब्दों में भाव तथा अभाव, इन दोनों गुणों का गुणी कौन है ? क्योंकि गुण, गुणी पर आधारित होता है। अभाव किसके आधार पर स्थित था जो इसके पश्चात् भाव में व्यक्त हो गया ? मौलाना विचार से देखेंगे तो आर्यों के तर्क में सत्य को पायेंगे। केवल अभाव से भाव की अभिव्यक्ति असम्भव है। हाँ, जब कार्य, कारण के रूप में होता है, तो कार्य का अस्तित्व तब नहीं होता; परन्तु उसका सर्वथा अभाव नहीं होता, रूप से अभाव होता है। कार्य के रूप में परिणत होने पर, उसके रूप का अभाव, भाव के रूप में अस्तित्व में बदल जाता है। इस प्रकार तो कोई भी बुद्धिमान् अभाव से भाव का होना मान सकता है, परन्तु सर्वथा अभाव से संसार के अस्तित्व को मानना बुद्धि से बाहर है, असम्भव है।

'कुन' का सम्बोधन—

क़ुर्आन में आया है 'कुन' अर्थात् 'हो जा' और उससे सारा विश्व अस्तित्व में आ गया। इसपर आर्य पूछता है कि 'कुन' का आदेश किसे दिया गया ? यदि किसी का अस्तित्व भी नहीं था, तो अल्लाह का आदेश व्यर्थ हुआ। मौलाना इस प्रश्न पर बहुत क्षुब्ध हुए लिखते हैं—"गधा भी जानता है कि **'कुन'** का सम्बोधन वस्तु से था, न कि उसके कारण से।" मौलाना! गधा जानता होगा, परन्तु आप मनुष्यों से बात कर रहे हैं। **'बुर्राक़'** (वह पशु है जो मुहम्मद साहब को धरती से उठाकर सातवें आकाश पर खुदा के पास ले गया—अनु०) होने का महत्त्व सबको प्राप्त नहीं होता। साधारण मनुष्य तो फिर पूछेगा कि जब कोई वस्तु थी ही नहीं, तो उसे सम्बोधित क्यों किया ? मौलाना ने इस आयत के दो अर्थ किए हैं- "इस 'कुन' के प्रयोग से अल्लाह का अरब के लोगों को यह बताना अभीष्ट था कि हम एक अविद्यमान वस्तु के अस्तित्व की इतनी तमन्ना रखते हैं, अथवा उसके उपस्थित होने का भरोसा (विश्वास) कर लेते हैं कि उस अपनी इच्छा की तीव्रता को बताने के लिए, हम स्वयं उस वस्तु को सम्बोधन करते हैं।" (पृष्ठ २८) इसपर हज़रत मुहम्मद के जीवन की एक घटना का उदाहरण भी दिया है कि मार्ग की ओर मुख करके फ़रमाते थे 'कुन अबु खशेमा' अर्थात् तू **अबुखशेमा** बन जा। (पृष्ठ २४)

इच्छा की तीव्रता में मनुष्य का मस्तिष्क कुछ विह्वल हो जाता है। मनुष्य ऐसा कहता है, परन्तु परमात्मा के साथ इस विह्वलता का जोड़ना बुद्धिमत्ता नहीं। शेष रहा विश्वास, उसका उदाहरण आपने दिया नहीं। चलो, आपका कहना मान लेते हैं कि अल्लाह तआला जब अकेले थे, तो एक दिन अचानक **'कुन'** का शोर बुलन्द किया। परन्तु जनाब! यह शोर अभाव के सम्मुख बुलन्द किया? इसका भी कोई प्रमाण दिया होता! आर्य लोग यदि यहाँ यह अनुमान लगाते हैं कि अल्लाह ने इसे प्रकृति से कहा तो केवल इसलिए कि वे क़ुर्आन के वाक्य को बुद्धिसंगत देखने के इच्छुक हैं, नहीं तो यदि आपका आग्रह है कि 'कुन' का सम्बोधित कोई नहीं था, तो आर्यों को इसमें क्या गिला?

दो मौलानाओं में मतभेद—

ज्ञात होता है कि मौलाना स्वयं अपने दिये उत्तर से सन्तुष्ट नहीं। इस आयत के दूसरे अर्थ मौ० नूरुद्दीन की व्याख्या से निकाले हैं। लिखते हैं—" **'कुन'** किसी वस्तु के Matter से नहीं कहा गया, क्योंकि Matter मूल वाक्य में नहीं लिखा। किसी वस्तु का बाह्यरूप भी सम्बोधित नहीं था, क्योंकि उसने अभी बनना है। बल्कि उस बननेवाली वस्तु के बौद्धिक ज्ञान से कहा गया, जो अल्लाह तआला के ज्ञान में सदा से है।" (पृष्ठ २८)।

मौ० नूरुद्दीन की सम्मति में **'कुन'** का सम्बोधन वस्तु के बाह्य रूप से नहीं हो सकता, क्योंकि उसने अभी बनना है; परन्तु मौ० मुहम्मद इसहाक़ गधे से भी यह आशा करते हैं कि वह इसे समझ जाये कि कुन का सम्बोधन वस्तु से है, और किसी अस्तित्वहीन वस्तु को, जिसने अभी बनना है, उसके विश्वास से सम्बोधित किया जा सकता है। दो मौलानाओं में मतभेद है, हम साधारण व्यक्ति इसमें दख़ल नहीं दे सकते। बौद्धिक अस्तित्व का अर्थ है ज्ञान। विश्व का यह बौद्धिक अस्तित्व है। परन्तु विचारणीय है कि क्या बौद्धिक कल्पना अथवा ज्ञान, बाह्यस्वरूप को धारण कर सकता है? अल्लाह तआला ने बौद्धिक ज्ञान अर्थात् बौद्धिक कल्पना को आदेश दिया कि **'हो जा'**, क्या हो जा? बाह्य अस्तित्व। दूसरे शब्दों में बौद्धिक ज्ञान, बाह्य स्वरूप धारण करनेवाली वस्तु का उपादान कारण हुआ। उपादान कारण इसलिए कि उसने बौद्धिक कल्पना का रूप त्यागा, और बाह्य रूप धारण किया। तब भी

सम्बोधन, कारण से हुआ, कार्य से नहीं ! मौ० नूरुद्दीन की व्याख्या का सार, मौ० मुहम्मद इसहाक़ के शब्दों में इतना है कि संसार की उत्पत्ति ईश्वर की कल्पना से हुई। और जिसका कारण कल्पना हो, वह कार्य भी काल्पनिक होगा। जैसे Matter से चेतना की उत्पत्ति नहीं होती अपितु चेतनता का गुणी चेतन जीवात्मा है, ऐसे ही चेतनता से Matter की उत्पत्ति भी नहीं हो सकती। यदि मौ० नूरुद्दीन अपनी व्याख्या के दार्शनिक परिणाम पर विचार करें, तो उन्हें अपना मन्तव्य अन्ततोगत्वा **'सर्वं खल्विदं'** के अनुकरण पर बनाना होगा कि सारा संसार केवल स्वप्नमात्र है, परमात्मा स्वप्न देखता है और संसार देखा जाता है। दूसरे शब्दों में, केवल इतना नहीं कि जीव तथा प्रकृति का अस्तित्व अनादि नहीं, अपितु इस समय भी उनकी वास्तविकता नहीं, केवल अल्लाह की कल्पना है। सारे पाप, सभी दुर्बलताएँ जो संसार में दृष्टिगोचर होती हैं, वे जैसे अल्लाह मियाँ की बौद्धिक कल्पना के चमत्कार हैं। यह मन्तव्य ईश्वर न करे कि मुसलमानों का हो, हमें तो विश्वास नहीं।

क़ुर्आन की आयत की व्याख्या आप जो चाहें, करें, वह आपकी सम्पत्ति है, परन्तु अभाव से भाव की उत्पत्ति का कोई तर्क दो। इतना लिखकर भी तर्क फिर भी न दे सके।

अब आइये तीसरे अध्याय पर—

मौलाना ने तीसरे अध्याय में उन आक्षेपों का संग्रह किया है जो विरोधी, जीव तथा प्रकृति के सादि एवं नश्वर होने के मन्तव्य पर देते हैं, साथ ही इन आक्षेपों का क़ादियानी जो उत्तर देते हैं, वह भी लिखा है। प्रथम अध्याय में तो आर्यों के प्रश्न ही लिखे थे। यदि सब प्रश्नों को एक स्थान पर लिखकर उत्तर लिख देते, तो क्या अन्तर पड़ता ? विषय में व्यवस्था आ जाती, और मौलाना पुनरुक्ति-दोष से भी बच जाते, पुस्तक कुछ कलेवर में कम हो जाती, और मौलाना के प्रश्नोत्तर भी कम हो जाते, और यह पुस्तक किसी विद्वान् की विद्वत्ता का उपहासमात्र न बनती। सत्य मानिये तो मौलाना के दिये उत्तर दिल्लगीमात्र ही हैं। मौलाना ने लम्बी पुस्तक लिखने की यहाँ थकान उतारी है। हम उत्तर देने को विवश न होते, तो इस भाग को छोड़ देते। पाठक भी अपनी थकान कम करने के लिए इसे पढ़ जाएँ, मनोरंजन तो होगा ही !

अभाव तथा भाव का सम्मिलन

पहला आक्षेप—

पहला प्रश्न डॉ० डाड साहब का है कि "यदि अभाव से भाव की उत्पत्ति मानी जाए, तो उत्पत्ति क्रमिक नहीं हो सकती, क्योंकि अस्तित्व का क्रम नहीं होता। अस्तित्व या भाव जब होगा तो एकदम होगा, और पूर्ण होगा; यह न होगा कि अस्तित्व पहले कम था, फिर अधिक हो गया। इस अभाव तथा भाव में समय का अन्तर बहुत थोड़ा होगा। दूसरे शब्दों में, कुछ समय सही, चाहे वह कितना थोड़ा मानें, वह भी होगा जब अभाव तथा भाव दोनों होंगे, और यह असम्भव है!" मौलाना को इस आक्षेप का उत्तर तो क्या आता, आर्यों पर कृपादृष्टि कर दी है; लिखते हैं कि तुम भी तो निष्क्रियता के पश्चात् सृष्टि-उत्पत्ति में परमाणुओं में क्रिया मानते हो, तो क्या यह निष्क्रियता तथा क्रिया कभी इकट्ठे नहीं होते होंगे? अथवा, प्रकृति एक समय निरवयव तथा सावयव नहीं होती होगी? मौलाना! आक्षेप डाड साहब ने किया है, पहले उन्हें उत्तर दो, फिर आर्यों को भी उपदेश कर लेना। मान लो कि यदि आर्यों का मन्तव्य भी ग़लत सिद्ध हो जाए, तो क्या दो मन्तव्यों की असत्यता, एक मन्तव्य का अनुमोदन बन सकेगा? अपनी दार्शनिक पराजय में आर्यों को सम्मिलित करने के लिए आपको बहुत-कुछ सोचना पड़ेगा। डाड साहब का आक्षेप है—भावोत्पत्ति में क्रम के अभाव के कारण अभाव तथा भाव का कुछ समय इकट्ठा होने का अनुमान किया जा सकता है, परन्तु गति तथा व्यवस्था पर यह प्रश्न लागू नहीं होता। उनपर यह प्रश्न तब लागू होता यदि उनमें क्रम न होता; गति में भी कमी तथा अधिकता आती है, और व्यवस्था में भी ठहराव का क्रम आता है। अतः गति तथा व्यवस्था में, क्रम से परिवर्तन धीरे-धीरे होगा और डाड साहब का आक्षेप इस सिद्धान्त पर न हो सकेगा। आक्षेप तो अभाव से भावोत्पत्ति पर है, क्योंकि अभाव से भाव जब होगा, एकदम होगा, पूर्ण होगा, पहले कम तथा कुछ काल पश्चात् अधिक भावोत्पत्ति न होगी। (इस अवस्था में किसी समय चाहे वह कितना थोड़ा हो, अभाव तथा भाव इकट्ठे होंगे और यह असम्भव है —अनु०)

तिकोना वृत्त तथा दो पर्वतों में घाटी का अभाव

दूसरा तथा तीसरा आक्षेप—

दूसरा आक्षेप हक्सले का है कि ईश्वर तिकोना वृत्त नहीं बना सकता। यह आक्षेप उन लोगों पर है जो परमेश्वर के सर्वशक्तिमान् होने का यह अर्थ लेते हैं कि ईश्वर प्रत्येक घृणित कार्य भी, चाहे वह उसके गुणों के विपरीत हो, कर सकता है। इस विषय में अहमदी जमाअत ने अपने मन्तव्य को सुधार लिया है, अतः यह आक्षेप आप पर नहीं होता। अभाव से भाव की उत्पत्ति भी ऐसा ही अधूरा मन्तव्य है। दूसरा आक्षेप फ्रन्ट साहिब का है कि खुदा दो पर्वतों को साथ-साथ इस प्रकार नहीं रख सकता कि उनके मध्य में घाटी न रहे। जैसे इस अवस्था का होना हम असम्भव मानते हैं, वैसे ही अभाव से भावोत्पत्ति भी असम्भव है। प्रश्नकर्ताओं के प्रश्न करने का लक्ष्य यही है कि अभाव से भावोत्पत्ति न कर सकने में परमेश्वर की सर्वशक्तिमत्ता में कोई अन्तर नहीं आता।

एक किनारे की नदी

चौथा आक्षेप—

चौथा आक्षेप आर्यों की ओर से है कि एक किनारे की नदी कभी नहीं होती है। ऐसे ही जो सत्ता अनन्त है उसे अनादि भी मानना पड़ेगा। उत्तर में मौलाना ने लिखा है कि यदि एक किनारे की नदी नहीं होती, तो ऐसी नदी भी नहीं होती जिसका कोई किनारा ही न हो। श्रीमान् जी, वह होती है जैसे परमात्मा। अल्लाह मियाँ अनन्त भी है और अनादि भी, दिखाइये इस नदी का किनारा? आप कोई और वस्तु बना दीजिये, जिसकी एक सीमा तो हो, दूसरी न हो। आर्यों का कहना केवल इतना है कि जिन सत्ताओं को आप अनन्त मानते हैं, उन्हें अनादि भी मानना पड़ेगा। (ध्यान रहे कि इस्लाम जीवों की उत्पत्ति तो मानता है, परन्तु स्वर्ग अथवा नरक में उनका अस्तित्व अनन्त काल तक मानता है—अनु०) क्योंकि जिसका प्रारम्भ है उसका अन्त भी होगा। आप किसी ऐसी विद्यमान सत्ता का उदाहरण दें जिसका आरम्भ तो हो, परन्तु अन्त न हो।

मौलाना ने इस सर्वमान्य सिद्धान्त के अपवाद में संख्या का उदाहरण दिया है कि जिसका आरम्भ तो एक से होता है परन्तु अन्त नहीं होता। परन्तु हमारा मत है कि जिस गिनती का आरम्भ एक से नहीं होता, उसका आरम्भ है ही नहीं। एक से कम है आधा, आधे से तिहाई, फिर चौथाई। आप ऊपर संख्या बढ़ाते जाएँ, हम उसी हिसाब से 'कसर' बढ़ाएँगे। आप पाँच कहें तो हम १/५ कहेंगे। आप लाख कहिये तो हम १/२ लाख कहेंगे। जैसे-जैसे आप गिनती को बढ़ाने में सीमा नहीं बनाएँगे, हम उसके आरम्भ की सीमा कम प्रमाणित करते जाएँगे। वस्तुतः एक भी एक गिनती का अंग है, उसमें एक है, और गिनती का न आरम्भ है और न अन्त।

अल्लाह मियाँ स्थगित (मुअत्तल)

पाँचवाँ आक्षेप—

'यदि सृष्टि के प्रवाह का आरम्भ माना जावे, तो निश्चय है, सृष्टि-प्रवाह के आरम्भ होने तक का जो अनन्त काल रहा होगा उसमें ईश्वर बेकार रहा होगा, और उसके सभी गुण भी स्थगित हो चुके होंगे!' (पृष्ठ २२४) आर्यों के इस आक्षेप को मौलाना ने ज़ोरदार आक्षेप माना है, और इस्लाम के उन शास्त्रार्थ-कर्ताओं को, जो सृष्टि के प्रवाह का आरम्भ मानते हैं, मौलाना ने उन्हें अधकचरा शास्त्रार्थ करनेवाला कहा है। ख़ैर, यह तो मौलाना की और उनके सम्प्रदायवाले मुल्लाओं की तकरार है। इस्लाम के स्थान पर अहमदियत लिख देते, तो उपयुक्त था। इसमें सन्देह नहीं कि अहमदियों ने जो मन्तव्य, आर्यों के प्रश्नों से थककर तराशा है, हमारे मन्तव्य के अधिक समीप है, अपितु यह आर्य-समाज की विजय का प्रमाण है। यदि अपने नये तराशे मन्तव्य के तार्किक परिणामों पर अहमदी मित्र ध्यान देंगे, तो उन्हें आर्यसमाज के मन्तव्य को ही स्वीकार करना पड़ेगा। मौलाना लिखते हैं, "जिस प्रकार आर्य हर सृष्टि को नश्वर परन्तु सृष्टि के प्रवाह को अनश्वर मानते हैं, इसी प्रकार क़ुर्आन मजीद (अहमदियों द्वारा अनूदित क़ुर्आन) सृष्टि के प्रत्येक व्यक्ति को नश्वर, परन्तु सृष्टि-रचना के प्रवाह को सनातन स्वीकार करता है।" (पृष्ठ २४५) क्या इस लेख के शब्द लिखने का प्रकार और आर्यमन्तव्य का उदाहरण देना, इस सत्य का स्पष्ट प्रमाण

नहीं कि सृष्टि को प्रवाह से अनादि मानने का सिद्धान्त आर्यों के तर्क को सत्य स्वीकार करके बनाया गया है ? चलो, न्याय अहमदी मित्रों पर। अहमदियत से पूर्व इस्लाम की पुस्तकों में सृष्टि को प्रवाह से अनादि के सिद्धांत को कहीं दिखा दें ? अब सृष्टि का प्रवाह तो अनादि मान लिया; फिर लिखा है "जिस प्रकार खुदा सनातन है, इसी प्रकार उसका सृष्टि की रचना करते रहना भी सनातन है (२४७)।" "खुदा तो सनातन है, परन्तु सृष्टि का कोई जीव सनातन नहीं, क्योंकि प्रत्येक जीव उत्पन्न हुआ है और जो उत्पन्न हुआ है, वह उत्पत्तिकर्त्ता के पश्चात् होता है (२४८)।"

प्रश्न यह है कि क्या वर्तमान जीवों में कोई जीव सनातन नहीं ? अथवा, आज से पूर्व भी कोई जीव सनातन न था ? जब उत्पत्तिकर्ता सनातन है और वह सनातन काल से उत्पत्ति कर रहा है तो कोई उत्पन्न जीव सनातन कैसे न हुआ ? आखिर रचयिता का गुण रचना के बिना कैसे अभिव्यक्त होगा ? सृष्टि भी तो जीवों के बिना नहीं हो सकती। सृष्टि के प्रवाह को आपने स्वयं सनातन मान लिया, तो क्या वह प्रवाह बिना किसी जीव के सनातन हुए व्यवस्थित हो गया ? सम्भव है आप कहें कि जीव सनातन काल से बनते आये हैं और विनष्ट होते आये हैं, तब आपकी सम्मति में वर्तमान जीव तो सनातन न होंगे, परन्तु पिछले जीवों में कुछ तो सनातन काल के होंगे ? आपने ही लिखा है "एक युग ऐसा आ चुका है कि न ये जीव थे, न संसार की प्रकृति थी, बल्कि अल्लाह था और केवल अल्लाह था (२४९)।"

एकत्व-(प्रलय)-काल—

आप इस युग का नाम वहदत (एकत्व) का युग रखते हैं और मानते हैं कि यह वहदत का दौर पुनः-पुनः आता है। इस वहदत के दौर (युग) से पूर्व और पश्चात् कसरत (बाहुल्य) का युग मानते हैं। अतः बाहुल्य के युग में जो जीव तथा प्रकृति उत्पन्न हुए, वे खुदा की वहदत (एकत्व) के युग में समाप्त हो गए। पुनः दौर बदला तो नये जीव तथा प्रकृति (नई) उत्पन्न किये गए। यदि आप इसपर सन्तोष करते तो हम यही मानकर चुप हो जाते कि अल्लाह के रचना के गुण से सनातन काल में जीव उत्पन्न तो हुए थे, क्योंकि इसके बिना उसके रचयिता का गुण सन्देहास्पद हो जाता, परन्तु अब वे जीव रहे नहीं, अल्लाह की वहदत का

शिकार हो गए। परन्तु आप भी तो मियाँ, जादूगर ठहरे ! फिर लिखते हैं "अनन्तता के विषय में भी यही रचना तथा पुनः प्रलय (दौरे-वहदत) और पुनः रचना। न कोई अन्तिम रचना, न अन्तिम प्रलय (२४६)।" यह भाषा लिखी ही थी कि मौलाना को विचार आया—यदि कोई पूछे कि क्या जब भविष्य में दौरे-वहदत आयेगा तो जनअत रहेगी या समाप्त हो जाएगी ? तो मौलाना उत्तर देते हैं कि "जनअत सदा रहेगी" अर्थात् क्या प्रलय का वार स्वर्ग पर नहीं होगा ? वह स्थिर रहेगा ? और क्या पहले की भी जनअत शेष है या समाप्त हो चुकी ? मौलाना का कहना है कि जनअत समाप्त नहीं होती। "जिस प्रकार हम लोग दिन-भर काम करते हैं और रात्रि को सो जाते हैं—सारा कार्य-व्यवहार समाप्त, दुकानें बन्द, चारों ओर मौन की स्तब्धता, परन्तु यह नहीं कहा जाता कि संसार मिट गया, इस प्रकार प्रलयावस्था में (वहदत के दौर में) सब-कुछ मिट जाएगा, परन्तु यह काल सदा का नहीं; इसके पश्चात् जो मिट गया है वह सत्ता में आयेगा···और इस प्रकार जनअत तथा जनअत में रहनेवाला सब-कुछ विद्यमान रहेगा (२४६)।"

स्वप्नावस्था—

मौलाना सत्य के समीप आ चुके हैं। क्या सचमुच प्रलयावस्था, स्वप्नावस्था के समान है ? या केवल कार्य-व्यवहार समाप्त हो गया ? यदि ऐसा है तो 'प्रलयकाल में सब-कुछ मिट जाना' मत कहिये, 'कार्य-व्यवहार से हट जाना' कहिए। जो उदाहरण आपने दिया है वह आर्यों की प्रलयावस्था के सर्वथा अनुकूल है, परन्तु आपकी 'वहदत' (एकत्व) [अर्थात् खुदा के सिवा कुछ शेष नहीं रहता] के लिए प्रतिकूल है। स्वप्नावस्था में पड़ा जीव कार्यव्यवहार नहीं करता, परन्तु विद्यमान रहता है। इसी प्रकार प्रलयकाल में भी जीव कार्य नहीं करते, परन्तु रहते हैं। आपकी वहदत के मन्तव्य में तो सब मिट जाते हैं, इस अवस्था का स्वप्नावस्था से क्या मेल ?

स्वर्ग और प्रलय—

इस अभाव की चर्चा के पश्चात् आपका लेख फिर पहेली बनके रह जाता है। आपने फ़रमाया है कि प्रलयावस्था अनन्तकाल तक न रहेगी, कारण कि फिर सृष्टि होगी, इसके पश्चात् फिर वही प्रलयकाल,

परन्तु इसपर भी आप उसे अनन्तकाल तक होनेवाली नहीं मानते। जनअत की अवस्था भी यही है—प्रलयकाल में समाप्त-सी हो जाती है, फिर आपके कथनानुसार दोबारा विद्यमान होती है। यदि प्रलयावस्था थोड़े-से अन्तर के पश्चात् दोबारा होने पर आप अनंतकाल की नहीं मानते तो जनअत इस अन्तर के होने पर भी अनंत कैसे हो गई? हाँ, प्रलयावस्था और जनअत में स्वरूप का भेद है। प्रथम नकारात्मक होने से भेदरहित है। प्रलयावस्था पहले भी नकारात्मक थी, भविष्य में भी नकारात्मक होगी; और दो नकारात्मक एक-से हो सकते हैं, उन्हें एक कहा जा सकता है। जनअत सकारात्मक है। सकारात्मक होने पर स्वरूप-भेद स्वाभाविक है। व्यक्ति का, काल का, अंतर पड़ सकता है परंतु जनअत में वही जीव दोबारा क्यों होंगे? नए बहिश्त का तो मसाला नया होना चाहिए। वह अनंत क्योंकर हो गया? आपने लिखने को तो लिख दिया "जिसका अभाव होगा, वही भावरूप में होगा और जो नकारात्मक होगा, वह सकारात्मक हो जाएगा (मनफ़ी मसबत होगा) पृष्ठ २५०।" परंतु इसके अर्थ क्या हैं? यही न कि अभाव तथा भाव दो अवस्थाएँ हैं जो एक ही सत्ता की होती हैं। नहीं तो सर्वथा अभाव के पश्चात् भाव की अवस्था कैसी? और यदि ऐसा ही है कि अभाव तथा भाव दो अवस्थाएँ हैं, तब आपका और हमारा विवाद किस बात पर है? अवस्थाएँ बदलती रहती हैं, परंतु मूल सत्ता स्थिर है अर्थात् अनादि तथा अनंतकाल रहनेवाली। विषय कुछ गम्भीर है, बुद्धिपूर्वक विचार कीजिए। सृष्टिकाल में उत्पन्न हुए जीव प्रलयकाल में समाप्त हो गए, उनका अस्तित्व ही न रहा। यही अवस्था जनअत के जीवों की भी है। फिर सृष्टिकाल हुआ। अब उत्पन्न हुए जीव वही पहले वाले होंगे या नये? यदि पुराने जीव होंगे तो प्रलयकाल में उनके अस्तित्व का सम्बन्ध नये और पुराने का रह जाना चाहिए, जैसे जागृति में जीव तथा स्वप्नावस्था का जीव सम्बन्ध में एक रहते हैं। स्वप्नावस्था में पूर्ण अभाव नहीं होता। यदि पूर्ण अभाव हो जाए तो जागने पर जागनेवाला अपने पुराने सोनेवाले से भिन्न होगा। ऐसे ही पुराने जनअत के वासी जीव जो सृष्टिकाल में फिर जीवित हों तो बीच के काल में उनका पूर्ण अभाव नहीं मानना होगा। यदि पूर्ण अभाव मान लें तो नए वहिश्ती पुराने रहे ही नहीं, और आप मानते हैं बहिश्ती वही रहेंगे। अनुमान से यह कहा जा सकता है कि प्रलयकाल में जनअत,

जनअत न रहकर अति सूक्ष्म अवस्था में परिवर्तित हो जाता है, जैसे आपके कथनानुसार प्रलय में सभी रहते हैं, केवल कार्यव्यवहार समाप्त हो जाता है, अस्तित्व का नाश नहीं होता। इस अवस्था के मानने पर आपका स्वप्न का दृष्टांत ठीक लागू हो सकता है। यदि अस्तित्व का पूर्ण अभाव मानें तो फिर जनअत के वासियों को सृष्टिकाल-वासियों में पुराना जनअत का वासी न मानिये; पुराना बहिश्त तो समाप्त हो चुका और जो समाप्त हो जाए, वह अनंत कैसा ?

आपने लिखा है—"जो मानव का जीव एक बार उत्पन्न हो जाये, फिर उसे खुदा मिटाता नहीं" (पृष्ठ २५०)। क्या प्रलयकाल में भी नहीं मिटाता ? यदि एक बार मिटा दे, तो सृष्टिकाल में वही जीव फिर उत्पन्न नहीं हो सकता ? वस्तुत: वही जीव तथा वही Matter उस समय रहेंगे, ताकि उनके अस्तित्व में सम्बन्ध रहे; सम्बन्ध न रहें तो 'वही' शब्द का उसके साथ जोड़ना भी केवल छलावा है। पूर्ण प्रलय का अर्थ अस्थायी प्रलय नहीं, स्थायी प्रलय होता है। यदि आपका मन्तव्य है कि प्रलयकाल (दौरे-वहदत) में किसी जीव का नाश नहीं होता, केवल कार्य-व्यवहार समाप्त हो जाता है, तब तो प्रलयकाल भी सृष्टिकाल का दूसरा रूप हो जायेगा। ईश्वर से अतिरिक्त सत्ताएँ भी विद्यमान होंगी, परन्तु कुछ काल के लिए कार्य करने से रहित होंगी; यही प्रलयावस्था है। तब तो आपका और हमारा मन्तव्य एक हो गया। प्रलयकाल तथा सृष्टिकाल का प्रवाह अनादि काल से चला आता है। ईश्वर से भिन्न अतिरिक्त सत्ताएँ दोनों अवस्थाओं में विद्यमान रहती हैं, प्रलयकाल में काय बन्द हो जाता है (रात्रि के समान—अनु०) परन्तु अस्तित्व रहता है, पूर्ण अभाव किसी अवस्था में नहीं होता। इस प्रकार (कसरत तथा वहदत) सृष्टिकाल तथा प्रलयावस्था ईश्वरेतर सत्ताओं की दो अवस्थाओं का नाम है, और चूंकि ये अवस्थाएँ अनादि काल से हैं, अत: ईश्वरेतर सत्ताएँ (जीव, प्रकृति) अनादि हैं, यही हमारा मन्तव्य है।

छठा आक्षेप—

आर्यों के दिये तीसरे तर्क की पुनरावृत्ति मात्र है, मौलाना ने इसका उत्तर वही दिया है, जो हमारे तीसरे तर्क का दिया है, और उस उत्तर पर हमारी आलोचना भी वही है, जिसे हम दे चुके हैं।

ईश्वरेतर सत्ता का अनादित्व तथा बहुदेववाद

सातवाँ आक्षेप—

"जीव तथा प्रकृति को केवल अनादि मानने से हम (आर्य लोग) बहुदेववादी नहीं होते" (२५२)। भला यह भी कोई आर्यों का प्रश्न है, जिसे मौलाना ने अपनी प्रश्नावली में जोड़ा है ? यह तो आर्यों की ओर से अहमदियों को दिया गया उत्तर है। मौलाना आर्यों को बहुदेववादी (मुशरिक) ठहराने पर तुले हुए हैं, केवल इसलिए कि आर्य लोग ईश्वर से भिन्न जीव तथा प्रकृति को भी अनादि मानते हैं। मौलाना को क्या कहा जाये ! सृष्टि को प्रवाह से तो वे भी अनादि मानते हैं, तो क्या मौलाना भी बहुदेववादी हैं ? अनन्त काल तक रहनेवाला तो आप मनुष्य के जीव को स्वीकार करते हैं। जैसे अनादित्व ईश्वर का गुण है वैसे अनन्तता भी उसी का गुण है। यदि अनन्तता में ईश्वर तथा ईश्वरेतर को समान मानने से बहुदेववाद का दोष नहीं आता तो अनादित्व के गुण में ईश्वरेतर को साथ मानने से बहुदेववाद (शिर्क) कैसे आ गया ? यह उत्तर इससे पूर्व भी हम दे चुके हैं, परन्तु मौलाना को प्रश्नों की संख्या बढ़ाने का शौक है, अतः पिष्टपेषण से कोई लाभ नहीं।

सात हज़ार वर्ष का खुदा

आठवाँ आक्षेप—

आर्यों का प्रश्न है "इस्लाम खुदा को केवल छः-सात सहस्र वर्ष से रचयिता मानता है, इससे पूर्व खुदा को बेकार और निष्क्रिय स्वीकार करता है" (पृष्ठ २५४)। भला इस प्रश्न में तथा पाँचवें प्रश्न में भिन्नता कौन-सी है, जिसने मौलाना को अलग स्थान देने पर विवश किया ? निष्क्रियता के प्रश्न पर जो कुछ आपने उत्तर देना था, दे चुके। अब छः-सात हज़ार वर्ष से सृष्टि-उत्पत्ति में खुदा को सक्रिय मानो अथवा सृष्टि-उत्पत्ति की कोई और तिथि निकालो, उससे पूर्व तो अनादि काल से रहता खुदा बेकार ही रहा होगा ? (इस्लाम इसी सृष्टि को पहली तथा आख़िरी सृष्टि मानता है) अब आपने इस बात को बदल दिया, हमारे लिए इससे बढ़कर प्रसन्नता क्या होगी ? (ध्यान रहे कि आर्यों के प्रश्नों से विवश होकर अहमदी हज़रत यह मानते हैं कि सृष्टि प्रवाह से

अनादि है और वर्तमान सृष्टि से पूर्व भी खुदा अनादि काल से सृष्टि की रचना करता आया है और प्रलय लाता आया है, अन्तर इतना है कि हर सृष्टि में खुदा नये जीव तथा प्रकृति को उत्पन्न करता है।—अनु०) आज आपने सृष्टि को प्रवाह से अनादि माना है, कल को आवागमन भी स्वीकार कर लीजिएगा, और फिर कहियेगा कि आवागमन से इन्कार का झूठा आरोप आर्यों ने इस्लाम पर लगा रखा है। हम भी कहेंगे—हाँ, सचमुच यह आरोप असत्य है! इस्लाम अर्थात् अहमदियत से पूर्व की किसी पुरानी पुस्तक से दिखाइये कि खुदा अनादि काल से सृष्टि-रचना करता आया है। तब कहिये कि यह इस्लाम का वक्तव्य है, नहीं तो इसे आर्यसमाज की कृपा जानिये कि वह जो आपके मन्तव्य में दयालु पिता, अपने पुत्रों पर कृपा में, कभी निष्क्रिय नहीं होता।

एक ही आयु का मनुष्य और पशु

नवाँ आक्षेप—

आर्यों की ओर से कहा गया—"एक कुत्ता तथा एक मनुष्य एक ही आयु के हो सकते हैं, पर दोनों समान नहीं हो सकते। इसी प्रकार ईश्वर के साथ जीव तथा प्रकृति भी अनादि हैं, परन्तु ईश्वर के समान नहीं, अतः इससे बहुदेववाद का आक्षेप नहीं बनता।" मौलाना! क्या यह आर्यों का प्रश्न है या इस्लाम के प्रश्न का उत्तर? मौलाना तर्क के भी धनी हैं और पुस्तक की व्यवस्था के भी मालिक, जो चाहें, सो ठीक है।

आपने उपर्युक्त कथन के तीन उत्तर देने की कृपा की है। पहला यह कि यदि मनुष्य थोड़ी आयु भी रखता हो, तो भी कुत्ते से बड़ा ही होगा। चलो, इसी प्रकार खुदा को जीव-प्रकृति की अपेक्षा छोटी आयुवाला मान लो, तो भी वह जीव तथा प्रकृति से बड़ा ही रहेगा, और हम तो उसे आयु में छोटा भी नहीं मानते, बराबर की आयुवाला मानते हैं, तब तो ईश्वर की महत्ता स्वयंसिद्ध है, फिर अनादि मानने पर आर्य बहुदेववादी (मुशरिक) कैसे हो गये? दूसरे उत्तर में फ़रमाते हैं कि अनादि होना एक महत्ता है, और इस महत्ता में ईश्वरेतर को सम्मिलित करना बहुदेववाद का मानना है। मौलाना! यदि अनादित्व महत्ता है, तो अनन्तता भी तो महत्ता है, उसमें आप अल्लाह के अतिरिक्त वहिश्त के जीवों को

साथ क्यों मिला रहे हैं ? आख़िर वे भी ईश्वर के अतिरिक्त ही हैं ? यदि उनके अनन्त काल तक खुदा के समान रहने से शिर्क नहीं होता तो अनादि मानने से क्यों होगा ? क्या अनन्तता त्रुटि है, और अनादित्व महत्ता ? यदि अनन्तता त्रुटि है, तो भगवान् आपको सुमति दे, आपका खुदा भी अनन्त होने के कारण त्रुटिपूर्ण हो जायेगा। तीसरे उत्तर में कहा है—"यदि कुत्ता किसी एक गुण में मनुष्य से बढ़ भी जाये, तो भी मनुष्य का स्थान ऊँचा रहेगा। अभिप्राय यह है कि केवल इतना ही नहीं कि किसी एक गुण में समान होकर भी ऊँचा व्यक्तित्व ऊँचा ही रहता है, अपितु यदि किसी एक गुण में तुच्छ व्यक्तित्ववाला बढ़ भी जाये, तो भी उच्च व्यक्तित्व की उच्चता में अन्तर नहीं पड़ता।" तब तो आर्यों का मन्तव्य सर्वमान्य ठहरेगा। आर्य तो केवल अनादित्व में जीव-प्रकृति को ईश्वर के साथ मानते हैं। मौलाना के कथनानुसार यदि जीव के किसी गुण को बढ़ा भी दें, तो भी खुदा का स्थान ऊँचा रहेगा। यह इस्लामी तर्क है। आर्यों के जीव-प्रकृति को अनादि मानने में तो यह बात भी नहीं (गुणों में भी ईश्वर पूर्ण है), फिर आर्यों पर शिर्क का जुर्म कैसे लगा दिया ? वास्तविकता यह है कि मौलाना के मन में 'शैतान' का भ्रम घर किये हुए है। लगता है कि शैतान कई बातों में खुदा से आगे निकल जाता है, वह अल्लाह मियाँ के जीवों को अल्लाह से विद्रोही बना देता है, वह स्वयं भी विद्रोही है। जीव अल्लाह मियाँ की नहीं सुनते, शैतान की बात मानते हैं, अतः मौलाना को इसे स्पष्ट करना अभीष्ट था, और कहा कि "देखो, कुत्ता मनुष्य से दौड़ने में तेज़ हो, परन्तु फिर भी मनुष्य, मनुष्य है और नैतिक संघर्ष में चाहे जीत शैतान की हो, परन्तु फिर भी रहमान (दयालु ईश्वर) रहमान ही है।" मौलाना ! दृष्टान्त तो खूब दिया ! समझ लिया मौलाना ? रहमान से शैतान एक ही बाज़ी में मैदान मार जाता है, सो ले जाये; शिर्क नहीं हुआ, ऊँहूँ ![1]

---

१. कहीं मसीह मौऊद (गुलाम अहमद कादियानी) के ईश्वरीय आदेश की ओर तो संकेत नहीं—"हम तुझे एक शिष्ट पुत्र की उत्पत्ति की शुभ सूचना देते हैं जो सत्य तथा महत्ता का प्रतीक होगा, जैसे खुदा आकाश में उतरा कि जनाब मिर्ज़ा; केवल खुदा के बाप ही बने हैं। शेष कार्यों में तो खुदा महान् है।"

(अंजाम आथम, पृष्ठ ६२)

यदि मौलाना गम्भीरता से यह मन्तव्य अपनाते कि अल्लाह मियाँ जीव के पश्चात् उत्पन्न हुए, अथवा किसी एक गुण में जीव परमेश्वर से श्रेष्ठ है, तब हम उत्तर भी देते कि इस मन्तव्य में क्या दुर्बलता है। पाठक इस मन्तव्य की अशिष्टता को अनुभव कर सकते हैं। क्या उत्पन्न हुआ खुदा अथवा दुर्बल खुदा, स्वयं खुदा रह भी सकता है? उसमें महत्ता चाहिये, ये उसमें दुर्बलता लाते हैं। जीव का अनन्त होना इन्हें स्वीकार है, ये उसकी महत्ता मानते हैं, परन्तु यदि कोई और महत्ता (अनादित्व की) आ जाये तो इन्हें बहुदेववाद का भय लगता है, और उस कमी को दूर इस प्रकार करते हैं कि ईश्वर को इससे भिन्न रखें, इसकी महत्ता को मिटा दें, ईश्वर चाहे दुर्बल माना जाये, कम-से कम जीव तथा प्रकृति से पहचाना तो अलग जायेगा। इस सूझ का जितना मातम करें, कम है!

अनादित्व में बहुदेववाद का दोष

दसवाँ आक्षेप—

'एकेश्वरवाद (तौहीद) का अर्थ एक मानना नहीं, एक खुदा मानना है, और यह हमें स्वीकार है (पृष्ठ २५७)।' वही पुरानी बात है, जो शब्दों के परिवर्तन के साथ नया प्रश्न बन जाती है। मौलाना रूप बदलने को नया आविष्कार मानते हैं। पुरानी कसरत (सृष्टिरचना) वहदत के पश्चात् फिर चमक उठी। उन्होंने कहा, नया संसार है, जीव-प्रकृति नये हैं। पुराने आक्षेप की भाषा बदल गई, जनाब ने एक नया प्रश्न घड़ लिया और प्रसन्नता की मस्ती में भूल गए कि यह प्रश्न है अथवा प्रश्न का उत्तर? मौलाना आर्यों के स्वकल्पित कथन की शुद्धि करते हुए फ़रमाते हैं कि "एकेश्वरवाद केवल एक ईश्वर को मानने का नाम नहीं, बल्कि खुदा को मानकर किसी अन्य सत्ता को खुदा के गुणों, कार्यों तथा पूजा में सम्मिलित न करना, एकेश्वरवाद है। और वेद में ईश्वर का एक गुण 'अनादि' भी है, इसलिए जो व्यक्ति जीव तथा प्रकृति को भी अनादि मानता है, वह एकेश्वरवाद को छोड़ता है (पृष्ठ २५९)।" और जो किसी ने कह दिया कि मौलाना! वेद में तो ईश्वर का एक गुण अनन्त भी आया है, इसमें जीव तथा प्रकृति को सम्मिलित क्यों करते हो? तो कहा "हम ईश्वरेतर सत्ता का अनन्त होना, उसका गुण नहीं मानते,

अल्लाह की देन मानते हैं, वह जिसे चाहे अनन्त काल तक रखे।'' बलिहारी जाएँ आपके इस तर्क के ! तो मौलाना, आप जीव को अनादि मानिये, यही मानिये कि अल्लाह ने उन्हें अनादि काल से रखा हुआ है। आख़िर अल्लाह, स्थिर रखनेवाला भी तो अनादि काल से है। अल्लाह में कोई नये गुण का तो जन्म नहीं हो गया कि वह जीवों को नये सिरे से रचने लगा हो। करें क्या ! मौलाना ने पुनरावृत्ति का नाम तर्क रख दिया है। आख़िर यह बहुदेववाद (शिर्क) का आरोप कितनी बार आप लगाएँगे ? लगाइये, शौक से लगाइये, और मन नभरे, तो फिर लगाइये।

अल्लाह मियाँ से भारी पत्थर

ग्यारहवाँ आक्षेप—

''क्या खुदा कोई ऐसा पत्थर बना सकता है जिसे वह स्वयं न उठा सके ?'' मौलाना, यह प्रश्न इसलिए किया गया है कि आप सर्वशक्तिमान् के सत्यार्थ को समझ सकें। जीव तथा प्रकृति को उत्पन्न न करने के मन्तव्य पर आप कहते हैं कि क्या खुदा सर्वशक्तिमान् नहीं है ? आर्य इसके उत्तर में कई ऐसे तर्क प्रस्तुत करता है जो ईश्वर के गुणों के विरुद्ध हैं। आर्यसमाज की इस तर्क-शैली का यह परिणाम है कि मौलाना ने अपनी सारी पुस्तक में यह प्रश्न भूलकर भी नहीं लिखा कि जीव तथा प्रकृति के अनादि होने से ईश्वर सर्वशक्तिमान् नहीं रहेगा। हमारे इस तर्क पर आप उपहास उड़ाइये, परन्तु आपको क्या पता कि हमारे इसी तर्क ने तो आपको सोचना सिखाया है। शिष्य जब दार्शनिक प्रश्नों को कुछ समझने लगता है तो गुरु द्वारा किये आत्मिक प्रश्नों पर आश्चर्य करता है कि क्या ये भी कोई प्रश्न थे जो गुरु जी ने किये थे ? उसे पता नहीं कि अब तो वह कुछ सूझ-बूझ में उन्नति कर चुका है, आरम्भ में इन्हीं सीधे-सादे प्रश्नों से उसका भोलापन दूर हुआ था। मौलाना फ़रमाते हैं अपना बनाया पत्थर न उठा सकना तो एक दुर्बलता है। खुदा अगर ऐसा पत्थर बनाये तो स्वयं अपने में दुर्बलता लाये। ठीक है हज़ूर, इसी प्रकार यदि खुदा सदैव नये जीव तथा नई प्रकृति बनाता रहे; और उनमें नये पापों तथा दुर्बलताओं को (नउज़ बिल्ला) सँजोता रहे, तो भगवान् क्षमा करे, वह सभी पापों का जन्मदाता स्वयं बन जायेगा और पाप वह पत्थर है जिसे खुदा नहीं उठा सकता।

अनन्तता के साथ अनादित्व अनिवार्य

बारहवाँ आक्षेप—

"मुसलमान जीव को अनादि नहीं मानते परन्तु अनन्त मानते हैं, जबकि जो सत्ता अनादि नहीं वह अनन्त भी नहीं हो सकती (३६१)।" क्या आर्यों के द्वारा इस प्रश्न का उत्तर **"एक किनारे की नदी"** वाले प्रश्न में दे नहीं दिया गया? परन्तु मौलाना को सनक है कि आक्षेपों की संख्या में वृद्धि हो जाये। प्रगतिशील मौलाना ने इस प्रश्न के आठ उत्तर दिये हैं।

पहला—**"इसका कोई प्रमाण नहीं कि जो अनादि न हो वह अनन्त भी नहीं हो सकता।"** जनाब, कोई उदाहरण दीजिये कि कोई वस्तु अनादि तो न हो, परन्तु अनन्त हो! हमारी दृष्टि में सादि सत्ता कार्य ही होती है और प्रत्येक कार्य अन्तवाला होता है। जो बना है, वह बिगड़ता है, प्रत्येक कार्य इस तथ्य का उदाहरण है। इससे यह अनुमान हुआ कि जो अनादि नहीं, वह सान्त होता है। किसी कार्य-सत्ता पर इसे आज़माइये।

दूसरा—**"जैसे खुदा स्वयं स्थिर है, ऐसे ही वह दूसरों को स्थिर रखने वाला भी है (२६२)।"** श्रीमान् जी, अब से स्थिर रखनेवाला है अथवा अनादि काल से? यदि खुदा अनादि काल से स्थिर रखनेवाला है, तो सब अनादि काल से स्थिर हैं।

तीसरा—**"खुदा जीव को केवल बनानेवाला ही नहीं, उसके अस्तित्व को रखने का कारण भी है।"** खुदा अस्तित्व को रखने का कारण अब से है या अनादि काल से? अनादि काल से है तो सब जीव अनादि काल से अस्तित्व रखते हैं।

चौथा—**"मनुष्य के शरीर का आरम्भ तो है परन्तु अन्त समान नहीं। किसी शरीर का अन्त १२ घण्टे में तो किसी का चार सौ वर्ष में अन्त। तुम कहोगे और कहना पड़ेगा, यदि न स्वीकार करोगे तो हम तुमको मूर्ख कहेंगे। निस्संदेह मूली, गाजर, आम, वट वृक्ष और सूर्य, सबका आरम्भ तो एक, परन्तु अन्त में अन्तर। जो खुद सूर्य को रचकर चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष तक रख सकता है और फिर अपनी इच्छा से मिटा सकता है, वह खुदा जीव को बनाकर—सदा के लिए रख भी सकता है।"**

मौलाना यदि गणित को जानते होते तो उन्हें ज्ञात होता कि अनादित्व के सम्मुख जो बारह घंटे का समय है वही चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष का है। अनादित्व के सम्मुख चाहे कितना अधिक समय हो, तुच्छ है। गणित का नियम है एक वर्ष/अनादित्व=करोड़ वर्ष/अनादित्व, अतः बारह घंटे से चार अरब वर्ष का सापेक्ष समय भी अनादित्व के समय के अनुमान में व्यर्थ है। आपने जिन वस्तुओं के उदाहरण दिये हैं, वे भौतिक वस्तुएँ हैं, उनमें प्रायः जीवनकाल का कम अथवा अधिक होना, भौतिक तत्त्वों के मिलाप में कमी अथवा अधिकता के कारण होता है। जीवित वस्तुओं का जीवन उनकी जीवन-शक्ति द्वारा अनुकूल तत्त्वों के ग्रहण तथा प्रतिकूल तत्त्वों के हटाने की क्षमता पर निर्भर करता है। यदि जीवन-शक्ति अधिक हुई, तो शरीर अधिक काल तक कार्य करेगा; शक्ति कम हुई तो शरीर अधिक देर तक न रह सकेगा; परन्तु जीव की इन शरीरों के रहने से क्या तुलना ? क्या जीव को भी आप इन शरीरों के समान सावयव मानते हैं ? जनाब ! जीव निरवयव है, आप स्वयं इसे स्वीकार कर चुके हैं और निरवयव का आरम्भ नहीं होता, क्योंकि उसमें तत्त्वों का मेल नहीं। आरम्भ, Combination हुए पदार्थों का होता है। यदि आपको यह मन्तव्य स्वीकार नहीं तो किसी निरवयव सत्ता का उदाहरण दीजिये !

पाँच—"चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष के पश्चात् सूर्य को…यदि वह (खुदा) न तोड़े तो क्या हो ? इसका जो उत्तर हो सकता है, वही हमारा उत्तर जीव के अनन्त होने के सम्बन्ध में समझ लेना (पृ० २६५)।"

यह प्रश्न इस्लामी खुदा से किया जा सकता होगा, वेदों के परमात्मा से नहीं। वेद का परमात्मा अपने नियम को स्वयं नहीं तोड़ता। मौलाना इस असम्भव कल्पना पर जीव को अनन्त मानते हैं। भाव यह है कि खुदा जीव का नाश नहीं करता, इसलिए वह नाशवान् नहीं। जैसे खुदा यदि सूर्य का विनाश न करे, तो वह अनन्त हो जाएगा। तो क्या हम समझ लें कि जीव के विनाश की सीमा तो है, परन्तु खुदा उसे विनष्ट नहीं होने देगा ? यह विचित्र तर्क है !

छः—"जैसे आदित्य ब्रह्मचारी का शरीर चार सौ वर्ष तक जीवित रहता है, उस प्रकार बहिश्तियों के शरीर अनन्तकाल तक जीवनशक्ति से स्थिर रह सकते हैं (पृ० २६६)।" जनाब ! विवाद तो है जीव तथा प्रकृति के अनादित्व पर, और आप ले बैठे शरीरों की चर्चा ! पहले जीव-

प्रकृति को तो अनन्त सिद्ध कीजिये, फिर शरीर की चर्चा भी कर लेना। आपने फरमाया जनअत में रहनेवालों के शरीर भी घुलेंगे (तहलील होंगे)। शरीर के घुलने से जो गन्दगी उत्पन्न होती है, उसके हटाने का भी स्वर्ग में प्रबन्ध किया है या नहीं ? क्या वहाँ भी कृषि इत्यादि होगी या नहीं, ताकि उसमें मनुष्य से निकली विष्ठा आदि खाद का कार्य दे पाये ? परन्तु आप तो जनअत में परिश्रम करना मानते ही नहीं, शरीर के घुलने से उसका बदल न घुलनेवाले तत्त्व से होगा तो क्या जनअत में भौतिक तत्त्व भी होंगे ? यदि होंगे तो वे भी अनन्त हो गए ! मौलाना ! चार सौ वर्ष का समय भी अनादि काल के सम्मुख वैसे ही तुच्छ है जैसे एक क्षण की तुच्छता। आदित्य ब्रह्मचारी का शरीर तीन सौ वर्ष तक जीवित रहता है, परन्तु यह शरीर अनादि नहीं, इसलिए अनन्त भी नहीं। आपने इससे यह कैसे सिद्ध किया कि जो अनादि नहीं, वह अनंत होता है ? सादि वस्तुओं के उदाहरण से क्या सादि अनंत हो जायेगा ? आपकी मन्तक के बलिहारी !

सात—"जनअत में रहनेवालों का अनन्त काल तक रहना उनके शारीरिक तत्त्वों की विशेषता से न होगा, अपितु ईशकृपा से उनका जीवन अनन्तकाल तक रहेगा (पृ० २६७)।"

प्रत्यक्ष जीवन में तो यही मिलता है कि ईशकृपा, भौतिक तत्त्वों के बनने तथा बिगडने से होती है। यह नई ईशकृपा है कि ज़नअत में भौतिक तत्त्व (माद्दः) बिगड़ेंगे ही नहीं। इसके लिए किसी नये प्रत्यक्षीकरण की आवश्यकता है। आपने खूब लिखा है कि "उस (खुदा) की इच्छा यही होगी कि जनअत में रहनेवालों का कभी अंत न हो (पृ० २६७)।" आखिर खुदा की इस इच्छा का कोई नियम भी है ? इस संसार में तो उसकी इच्छा का यह नियम है कि जो वस्तु बने, वह मिट भी जाये; क्या जनअत में उस (खुदा) की इच्छा बदल जायेगी अथवा प्रकृति के गुण बदल जाएंगे ? परन्तु आपको प्रकृति के गुणों से तो लेना-देना नहीं; जैसे प्रकृति का तो स्वभाव है कि बने और बिगड़े, परन्तु खुदा उसे बिगड़ने नहीं देगा। प्रकृति के तत्त्व न हुए, शैतान हुए, परन्तु ऐसे शैतान जो रहमान की इच्छा के आधीन रहे।

आठ—आठवाँ उत्तर आपने सत्यार्थप्रकाश के प्रमाण से दिया है—"तीनों कारणों (निमित्त, उपादान, साधारण कारण) के बिना कोई वस्तु नहीं बन सकती और न बिगड़ सकती है।" [सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ

२४४] (पृष्ठ २६८) इससे यह परिणाम निकला कि यदि निमित्तकारण अर्थात् खुदा न हो तो कोई वस्तु बिगड़ भी नहीं सकती। हाँ, हमारा यही मन्तव्य है। आप इसपर लिखते हैं "नहीं टूट सकती, यदि निमित्त कारण अर्थात् खुदा न तोड़े (पृ० २६८)।" परन्तु क्यों न तोड़े ? भौतिक तत्त्वों का स्वभाव है बनना तथा बिगड़ना, परमात्मा का स्वभाव है उसे जोड़े और तोड़े, जनअत में न जाने क्यों उसे तोड़ना बन्द कर देगा ?

सम्भव है वहाँ के भौतिक तत्त्व नई प्रकार के हों, परन्तु यदि ऐसे ही अनुमान करना है जो प्रत्यक्ष के सर्वथा विरुद्ध हो, तब यह अनुमान क्यों न करें कि जनअत में पुरुष बच्चे जना करेंगे, अप्सराएँ पिता होंगी, वाइज़ों (उपदेश देनेवालों) के पेट पर थैला बँधा होगा, जिसमें कंगारू के समान बच्चे उठाया करेंगे। हूरों की डाढ़ियाँ हों, परन्तु इतनी कोमल कि पिण्डली के मांस से भी कोमल। जनाब ! अनुमान का भी कोई आधार चाहिए। दार्शनिक विवाद है, जामा मसजिद का वअ्ज़ नहीं कि जो चाहा कह गए और वही खुदा की मर्ज़ी बन गई !

परमात्मा देशनिकाला नहीं दे सकता

तेरहवाँ आक्षेप—

"महाराजा पटियाला किसी अपराधी को रियासत से बाहर निकाल सकते हैं, परन्तु परमात्मा नहीं कर सकते।" मौलाना का उत्तर है कि रियासत से निकालना एक कमी रखता है, क्योंकि इससे रियासत सीमित हो जाती है; परमात्मा की रियासत असीम है। दूसरा उत्तर दिया है कि अपनी रियासत से बाहर निकालना यह अर्थ रखता है कि "महाराजा अपने अपराधी के सुधार से निराश हो गए हैं; परमात्मा निराश नहीं होता।"

ठीक तो है श्रीमन् ! जीव तथा प्रकृति को हर सृष्टि में नया-नया बनाने से परमात्मा में अनादि तथा अनंत रक्षक, पालक न होने की कमी आती है। अनादि और अनंत स्वामी को अनादि तथा अनंत स्वामित्व में रहनेवाली वस्तु चाहिये, और वह जीव तथा प्रकृति हैं। परमात्मा का अनादि स्वामित्व, अनादि पदार्थ पर है, वे पदार्थ अनादि न हों तो स्वामित्व अनादि न रहेगा। परमात्मा अपने अनादि जीवों से

निराश नहीं होता कि उन्हें मिटा डाले और नई सृष्टि में नये जीव उत्पन्न करे।

पाप का दायित्व

चौदहवाँ आक्षेप—

"जिसने इन जीवों को उत्पन्न किया है, वही संसार में पाप के अस्तित्व का भी उत्तरदायी है।" (पृष्ठ २७१)

मौलाना ने इस प्रश्न के उत्तर में आर्यों के मन्तव्य पर आक्षेप किया है कि यदि ईश्वर जीव को शरीर न देता, तो वह पाप न करता। जिसने जीव को शरीर दिया है, वह पाप का भी उत्तरदायी है, अर्थात् ईश्वर। आगे चलकर स्वयं फ़रमाते हैं कि "ईश्वर जीवों को यूँ ही शरीर नहीं देता, अपितु उनके कर्मानुसार देता है, क्योंकि वह न्यायकारी है।"

अब पापों का दायित्व किसपर हुआ ? स्पष्ट है कि जीव पर, क्योंकि शरीर उसके कर्मों का फल है। मौलाना फिर स्वयं प्रश्न करते हैं "न्याय क्यों करता है ?" और उत्तर देते हैं "क्योंकि यह ईश्वर का गुण है।"

जनाब ! फिर स्वयं ही प्रश्न करो—गुण को कार्य में क्यों लाता है ? आख़िर जब प्रश्न ही करने हैं, तो सोचना कैसा ? मौलाना लिखते हैं— "उत्पन्न वस्तु अर्थात् जीव तथा प्रकृति को उत्पन्न करना ईश्वर का गुण है, यह गुण अवश्य कार्य में परिणत होगा।" (पृष्ठ २७२)

इसे कहते हैं 'तेली रे तेली, तेरे सिर पर कोल्हू'। न्याय के गुण पर तो आप और हम सहमत हैं, इसलिए उसपर आपने कोई प्रश्न नहीं किया। अभाव से भावोत्पत्ति तो विवादास्पद विषय है, इसको प्रमाण-रूप में कैसे प्रस्तुत कर दिया ? सच तो यह है कि इस्लाम के यही वकील रहे तो इस्लाम की विजय हो गई ! हम पूछते हैं कि अभाव से भाव की उत्पत्ति का कोई प्रमाण दो, प्रमाण दिया कि ऐसा करना ईश्वर का गुण है। एक मौलाना स्वयं को एम० ए० कहते थे। हमने पूछा—किस विश्वविद्यालय से परीक्षा में उत्तीर्ण हुए ? बोले—"मेरा नाम मुश्ताक अहमद है, इसलिए एम० ए० कहलाता हूँ।" कोई वस्तु अभाव से न बने तो भी ईश्वर स्रष्टा रहेगा। इसकी चिन्ता न करें, और यदि धींगा-मुश्ती से उसे अभाव से भाव का आविष्कारक मानना ही है, तो स्वयं

खुदा का आविष्कारक कोई और बना लीजिये। यदि जीव को ईश्वर ने अभाव से उत्पन्न किया है, तो फिर पापों का भी आविष्कारक Indirectly खुदा ही होगा। दूसरे उत्तर में इस प्रकार तर्क दिया है—"खुदा (पापों का) तब उत्तरदायी हो सकता है, जब जीव कर्म करने में स्वतन्त्र न होता (पृष्ठ २७२)।" संक्षेप में यह कि ईश्वर ने जीव को अस्तित्व तो दिया, कर्म की स्वतन्त्रता भी साथ दे दी। मौलाना को क्या पता कि स्वतन्त्रता, ख़ैरात में दी नहीं जाती। ख़ैरात देकर वापस भी ली जा सकती है। यदि कर्म की स्वतन्त्रता वापस ली जा सके, जैसा कि मौलाना स्वीकार करेंगे कि इस्लाम के मन्तव्य में ऐसा हो सकता है, तो फिर वह स्वतन्त्रता न रही। स्वतन्त्रता, स्वाभाविक होती है, बाहर से नहीं आती। चलो मान लिया कि स्वतन्त्रता प्रदान कर दी, परन्तु किस कार्य में? पाप और पुण्य कर्म करने में। परन्तु पाप करने का सामर्थ्य किसने दिया? अल्लाह के बिना और तो कोई कारण नहीं? अब पापों का प्रेरक तथा आविष्कारक कौन है? **नउज़ बिल्ला (क्षमा करें)**, खुदा ही तो होगा? लीजिये, पाप के उत्तरदायी न सही, पापों का आविष्कार करनेवाले तो अल्ला मियाँ ही ठहरे! तीसरे प्रश्न के उत्तर में इस प्रकार फ़रमाया है "मनुष्य को उत्पन्न करके ईश्वरीय ज्ञान, पैग़म्बर, अवतार, वली, पवित्र आन्दोलन, पवित्र स्वभाव, यह सब भी तो भगवान् ने उत्पन्न किये, क्या तुम अब भी केवल उत्पन्न करने के कारण सब पापों का दोषी खुदा को मानोगे?" (पृष्ठ २७३)

ये सारे प्रमाण तो आपने इसलिए दिए, कि पवित्रता तथा पुण्य का प्रेरक तथा कारण भगवान् है। पुण्य की पहेली तो हल कर ही ली, परन्तु संसार में पाप का अस्तित्व भी तो है? और वह कितना अधिक हो, उसकी पहेली का समाधान क्या होगा? उसे किसने बनाया, आप कहेंगे पाप का कारण शैतान है, तो फिर शैतान का अस्तित्व कौन लाया? मान लो कि शैतान का कोई कारण नहीं, तो फिर वह अनादि होगा। यदि शैतान का भी कोई उत्पन्न करनेवाला तथा प्रेरक है, तो पापों का अन्तिम उत्तरदायित्व तो उसी पर ही होगा! पुण्य का कारण खुदा है स्रष्टा होने के कारण, तो पाप का भी आविष्कारक तथा प्रेरक, वही होगा, स्रष्टा होने के कारण खुदा ही होगा!

क्या परमात्मा उपादान कारण है

पन्द्रहवाँ आक्षेप—

"यदि जीव तथा प्रकृति का अस्तित्व है, तो क्या खुदा ने उन्हें अपने में से उत्पन्न किया है।" (पृष्ठ २७४) क्षुब्ध होकर मौलाना कहते हैं "बिना किसी उपादान कारण के बनाया है।" (२७५) मियाँ साहब ने दर्शन पढ़े नहीं, नहीं तो समझ जाते कि जिसका उपादान कारण न हो, उसे अनादि कहते हैं, जैसे परमात्मा। ऐसे ही आत्मा तथा प्रकृति भी अनादि हैं। अभाव से उत्पन्न करने की बात दर्शनशास्त्र के विरुद्ध है, अतः या तो जीव तथा प्रकृति को अनादि मानिए, नहीं तो परमात्मा इनका उपादान कारण हो जाएगा, क्योंकि यदि जीव-प्रकृति को उत्पन्न हुआ मानना है, तो उत्पत्ति से पूर्व उपादान कारण का मानना आवश्यक है। मौलाना से उत्तर नहीं बन पाया, तो **'क्रोधात् भवति संमोहः संमोहात् स्मृतिविभ्रमः'** के अनुसार बेतुकी कहने लगे कि, "वेद के पैग़म्बर ऋषि अंगिरादेव के बाप का नाम क्या गंगादास था···नहीं-नहीं, यह नाम तो नहीं हो सकता, क्योंकि अंगिरा जी आरम्भ में ठहरे, और इस नाम में बहुदेववाद की गन्ध है···गंगादास नहीं तो कृष्णदास होगा।" मौलाना मानते हैं कि आर्यों की दृष्टि में श्री अंगिरादेव का कम-से-कम वह स्थान तो है ही जो इस्लाम में हज़रत मुहम्मद का है। इस विचार से कि मौलाना अपनी इस घटिया दिल्लगी का अनुमान स्वयं लगा सकें, हम उनसे प्रार्थना करेंगे कि जहाँ आपने श्री अंगिरा जी का नाम लिखा है वहाँ हज़रत मुहम्मद सलअम नाम लिखकर अपने लिखे वाक्यों को दो बार, तीन बार पढ़ जायें। काश ! आप समझ पाते कि महापुरुष सबके साँझे होते हैं; उनका सम्मान करो और यदि कोई चरित्र की दुर्बलता देखो तो बताओ। व्यर्थ में उनके पुरखों की कथाएँ जोड़कर उनका उपहास न करो। मौलाना ! यह दर्शन का क्षेत्र है, दिल्लगी नहीं। वैसे तो आपका लिखा यह सारा अध्याय ही दिल्लगी-मात्र था, परन्तु दिल्लगी में भी कुछ शिष्टाचार, कुछ सभ्यता, कुछ गम्भीरता अपेक्षित है। आक्षेपों का उत्तर दीजिए, यदि उत्तर नहीं सूझते तो मौन रहिए। आख़िर गाली देना भी कोई उत्तर होता है ?

तीसरा अध्याय

आर्यों के पवित्र ग्रन्थों द्वारा दिये प्रमाणों की व्याख्या

श्री मौलाना ने अपनी पुस्तक के दूसरे अध्याय में जहाँ जीव-प्रकृति के सादि होने में तर्क दिये, वहाँ उसके साथ हमारे पवित्र शास्त्रों के भी कुछ उद्धरण प्रस्तुत किए हैं, और उनसे जीव तथा प्रकृति की उत्पत्ति सिद्ध की है। मज़ा यह कि इन उद्धरणों को भी किसी व्यवस्था से लिखने का कष्ट नहीं किया, बल्कि एक प्रमाण हमारे ग्रन्थों का, तो दूसरा मौलाना के मस्तिष्क का चमत्कार, फिर हमारा प्रमाण इत्यादि। हम यहाँ आर्य ग्रन्थों के दिये उद्धरणों की व्याख्या करेंगे, जिससे मौलाना का भ्रम दूर हो सके। तर्कों का उत्तर इससे पूर्व दिया जा चुका है।

प्रकृति तथा सामर्थ्य

पन्द्रहवाँ तर्क—

पहला उद्धरण १५वें तर्क के रूप में दिया है। यहाँ उस उद्धरण का एक भाग दिया है, दूसरा उद्धरण सत्रहवें तर्क का रूप धारण कर गया है। हम आश्चर्य में हैं कि प्रथम तो किसी उद्धरण को तर्क-रूप देने की क्या आवश्यकता थी, और यदि तर्क का ही रूप देना अभीष्ट था, तो एक ही उद्धरण को दो अलग-अलग भागों में लिखने की क्या तुक थी? उद्धरण इस प्रकार है, "जिस समय यह परमाणुओं से मिलकर बना हुआ विश्व उत्पन्न नहीं हुआ था, उस समय अर्थात् सृष्टि-उत्पत्ति से पूर्व असत् अर्थात् शून्य आकाश भी नहीं था, क्योंकि उस समय उसका कार्य-व्यवहार न था। उस समय सत् अर्थात् सृष्टि के कार्यावस्था में परिणत कारण, जिसको सत् कहते हैं, वह भी न था और न परमाणु थे। विराट् में जो आकाश दूसरे नम्बर पर आता है, वह भी न था, बल्कि उस

समय केवल परब्रह्म की सामर्थ्य जो अत्यन्त सूक्ष्म और इस सारी सृष्टि से महान् है, अकारण है, विद्यमान थी।"

यह सारा भाग महाशय निहालसिंह, अनुवादक 'ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका' के अनुवाद 'तमहीद तफ़सीरे वेद' से लिया गया है। यद्यपि मौलाना ने इसका पता ऋग्वेद अष्टक ८, अध्याय ७, वर्ग १७, मन्त्र १ दिया है। वेद में तो मन्त्र है, यह लेख कहाँ ? परन्तु प्रमाण का पता तो ठीक देना चाहिए ! मन्त्र का भाव तो यही है, परन्तु व्याख्याकार की व्याख्या को कोई विद्वान् मूल मन्त्र से नहीं जोड़ सकता। इस मन्त्र में प्रथम तो संसार को परमाणुओं से मिलकर बना हुआ लिखा है, और उस समय का वर्णन है जब यह विश्व मिलकर बना नहीं था। तब क्या था ? स्पष्ट है कि परमाणु थे ! नहीं तो कहा जाता कि जब परमाणु भी नहीं थे, क्योंकि सृष्टि से पहले परमाणुओं का अस्तित्व ऋषि दयानन्द हर स्थान पर स्वीकार करते हैं। यदि ऋषि का अभीष्ट किसी ऐसी अवस्था की ओर संकेत करने का होता, जब परमाणुओं का सर्वथा अभाव था, तो यह न कहते कि परमाणुओं से मिलकर बना संसार नहीं था, बल्कि लिखते कि परमाणु ही न थे। परमाणुओं के अभाव का वर्णन ऋषि को स्वीकार नहीं। आगे फ़रमाते हैं, "शून्य आकाश भी नहीं था।" शून्य आकाश को आर्य-दर्शन में सनातन माना गया है। ऋषि दयानन्द उसका अभाव नहीं कह सकते। परन्तु स्पष्ट शब्दों में लिखा है, "कोई पूछे, कैसे न था ? फ़रमाते हैं उसका कार्य-व्यवहार न था। अभाव दो प्रकार का होता है—एक, सर्वथा पूर्ण रूप से अभाव; दूसरा, गौण रूप से अभाव अर्थात् कार्य-व्यवहार में न आने से अभाव। जिस वस्तु से कार्य न लिया जाय, उसका भी एक प्रकार से अभाव ही कहा जाता है। आकाश का काम दर्शनों ने कहा है, "**निष्क्रमणं प्रवेशनं इत्याकाशस्य लिङ्गम्**" (वै० द० २।१।२०) अर्थात् आकाश का गुण है कि उसमें आएँ-जाएं। प्रलयावस्था में गमनागमन बन्द हो जाता है, अतः आकाश का व्यवहार नहीं रहता। इस दृष्टि से कार्य में उसका अभाव होता है, वास्तविक रूप से नहीं। मौलाना इस अभाव के कारण को जो ऋषि ने लिखा, देख लेते, तो भ्रम का शिकार न होते। यही परिस्थिति सत् तथा परमाणुओं के अभाव की है। प्रकृति का कार्य यह है कि उससे संसार की सृष्टि हो, और यही परमाणुओं का व्यवहार है। मौलाना को तथा 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' के दूसरे अध्येताओं को एक

और भ्रम 'सामर्थ्य' के शब्द से हुआ है। श्री निहालसिंह ने इसका अनुवाद **'क़ुदरत'** किया है जो अशुद्ध है। 'सामर्थ्य' के अर्थ क्या हैं ? ऋषि भाष्य-भूमिका में फ़रमाते हैं, "पादैः प्रकृति परमाण्वादिभिः स्वसामर्थ्यपाशैः" पादों अर्थात् प्रकृति और परमाणु अर्थात् अपनी सामर्थ्य के भागों से (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पाँचवाँ संस्करण, पृष्ठ ३१३)। यहाँ प्रकृति तथा परमाणु ही परमात्मा की सामर्थ्य कहे गए हैं। उसके भाग सत्त्व, रज तथा तम, अथवा पाँच भूतों के अलग-अलग परमाणुओं के कारण होते हैं, न कि विश्लेषण के कारण। 'सामर्थ्य' के कोशगत अर्थ हैं, जो साथ रहे। प्रकृति परमात्मा के साथ रहती है, इसलिए यह उसकी सामर्थ्य है। प्रकृति अत्यन्त सूक्ष्म है, कारण-रहित है, अतः भगवान् की सामर्थ्य है। वह वस्तुतः विद्यमान थी, परन्तु व्यावहारिक रूप से शून्य। यही जैसे उसका अभाव था। जैसे कोई वीर पुरुष हो, परन्तु वीरता का कार्य न करे, तो कहते हैं कि वीर हुआ-न-हुआ समान है। पड़ी हुई तलवार को तलवार कौन कहता है ? तलवार वह जो वार करे। ऋषि ने सामर्थ्य का अस्तित्व परमेश्वर से भिन्न स्वीकार किया है। इसका एक और प्रमाण 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' के हिन्दी-भाग में मिलता है, जो ऋषि के जीवन में ही संस्कृत-भाग के साथ छपा था और आज तक 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में सम्मिलित है। इसी मन्त्र की व्याख्या के आरम्भ में फ़रमाया है, "जब यह कार्यजगत् उत्पन्न नहीं हुआ था तब एक सर्वशक्तिमान् ईश्वर, और दूसरा जगत् का कारण अर्थात् सृष्टि-उत्पत्ति का सामान विद्यमान था।" (ऋ० भा० भू० पृष्ठ ११७) इससे अधिक स्पष्ट शब्दों में क्या लिखा जा सकता है ! परमेश्वर के अतिरिक्त सृष्टि के बनाने का सामान विद्यमान था। क्या अनुवाद में लिखा शब्द 'क़ुदरत' इस अर्थ को देता है ? और क्या 'क़ुदरत ईश्वर से भिन्न थी ?'

प्रकृति तथा सामर्थ्य

सोलहवाँ तर्क—

सोलहवें तर्क का आधार भी वह उद्धरण है, "उस पुरुष ने पृथिवी अर्थात् भूमि के बनाने के लिए पानी से रस लेकर मिट्टी को बनाया है, और इसी प्रकार अग्नि के रस से जल को पैदा किया, और अग्नि को वायु

से, और वायु को आकाश से, और आकाश को प्रकृति से, और प्रकृति को अपनी क़ुदरत से उत्पन्न किया (यजु० ३१-१७)।" यह प्रमाण भी 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' के अनुवाद की भूमिका से लिया गया है, जिसे श्री निहालसिंह ने किया है; परन्तु इसका पता, वेद का दिया गया है। मौलाना ने इसपर अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं कि "यहाँ प्रकृति तथा क़ुदरत दो शब्द अलग-अलग आए हैं, अतः ये पर्यायवाची नहीं हैं।" ऋषि का शब्द यहाँ भी सामर्थ्य है अर्थात् साथ रहनेवाली। प्रकृति का यहाँ अर्थ है 'परमाणुओं का व्यावहारिक रूप' जिसे दार्शनिक भाषा में **विकृति** कहा जाता है और सामर्थ्य के अर्थ हैं 'मूल कारण'। हम ऋषि के 'सामर्थ्य' शब्द का अर्थ स्पष्ट रूप से लिख चुके हैं और यह भी दिखा चुके हैं कि उसका अस्तित्व ईश्वर से अलग है, 'क़ुदरत' तो क़ादिर से अलग नहीं होती, अतः सामर्थ्य के अनुवाद में क़ुदरत शब्द लगाना अनुचित है।

एक परमात्मा

अठारहवाँ तर्क—

अठारहवें तर्क के लिए मौलाना ने कई प्रमाण दिये हैं। न जाने मौलाना ने हर प्रमाण का अपने स्वभावानुसार अलग-अलग तर्क क्यों नहीं घड़ लिया। प्रश्नों की संख्या अधिक देखकर दया आ गई क्या ?

(१)

प्रथम प्रमाण ऐतरेय उपनिषद् का है, "इस सृष्टि से पूर्व केवल एक आत्मा (खुदा) ही था; कोई दूसरी वस्तु न थी।" उपनिषद् में वर्णित प्रमाण का यह अनुवाद अशुद्ध है। आपने इसे भी भाई निहालसिंह की 'तमहीद तफ़सीरे वेद' से लिया है, परन्तु वह जो ब्रैकेट में 'दूसरी' के के पश्चात् 'पहचान के योग्य' (क़ाबिले-तमीज़) लिखा था, उसे पी गए। शायद यह दिखाने के लिए **कि** यह अनुवाद मौलाना का अपना किया हुआ है। यदि भाई निहालसिंह से सहमत न थे, तो उपनिषद् के मूल शब्दों को लिख देते, और निहालसिंह जी का प्रक्षेप बता देते ! उपनिषद् में ये शब्द हैं, **"आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्, नान्यत् किञ्चन मिषत्।"** (ऐतरेयोपनिषद् १।१) अर्थात् "इस सृष्टि से पूर्व, एक आत्मा ही था, और कोई अस्तित्व कार्ययुक्त न था।"

मन्त्र के अन्त में क्रिया है 'नमिषत्' जिसका अर्थ है 'कार्यरत था'; इसे हटाया नहीं जा सकता। मौलाना ने अन्त में 'कान अल्लाह…' यह हदीस लिखी है और फ़रमाया है कि "यदि इस हदीस तथा इस मन्त्र में कोई व्यक्ति थोड़ा-सा भी अन्तर दिखा दे तो उसे मैं एक सौ रुपया देने को तैयार हूँ।" आपका रुपया तो जनाब देने से सदा सुरक्षित रहा है और रहेगा। हमारे ऊपर के लिखे अनुवाद को पढ़कर ज़रा स्वीकार कीजिए कि आपकी हदीस भी यही कुछ कहती है, जो मन्त्र में है, अर्थात् वस्तु का अर्थ है 'कार्य पदार्थ' और कार्य-पदार्थ वास्तव में प्रलयकाल में कोई न था। बस यही भेंट है जो आर्यों को दी जाती है।

(२)

इसी बीच में दूसरा प्रमाण शतपथ का निम्न प्रकार है, "इससे पूर्व यह संसार कुछ भी न था" (शतपथ १४-१-१-१)। उपनिषद् के शब्द हैं, **"इदं वा अग्रे नैव किंचिदासीत्"** अर्थात् "इस सृष्टि से पूर्व यह-कुछ (वर्तमान जगत्) न था।" इसका संकेत समीप से है अर्थात् 'इदं'—'कार्य जगत्'—यह सचमुच प्रलयकाल में न था, मौलाना ने क्या प्रमाणित किया ?

(३)

तीसरा प्रमाण छान्दोग्य उपनिषद् का है, "ऐ वत्स ! वह परमेश्वर इस संसार से पूर्व विद्यमान था तथा अपने-आपमें वह अद्वितीय था।" इसपर मौलाना लिखते हैं कि, "यदि कोई कुतर्क करनेवाला आर्य शास्त्रार्थ-महारथी यह कहे कि 'अपने-आपमें अद्वितीय' का अर्थ इतना है कि वह एक था, तो उत्तर यह है कि "खुदा एक तो अब भी है और अद्वितीय है।" शास्त्रार्थ करनेवाला आर्यसमाजी कुतर्क करेगा, यह भी आपने एक ही कही ! आर्य तो कुतर्क कर ही नहीं सकता; हाँ, तर्क तो करेगा ही ! परन्तु आप तो तर्क भी करना नहीं जानते, विवाद ही करते हैं ! उपनिषद् के शब्द हैं, **"सदेव सोम्येदमग्रे आसीदेकमेवाद्वितीयम्"** (छां० ६-२-१)। "ऐ वत्स, यह संसार (उत्पत्ति से पूर्व) केवल विद्यमान था, बिना दूसरों के।" यहाँ Matter की उत्पत्ति का वर्णन है कि प्रलय-काल में इसमें विकृति (रंगारंगी) नहीं होती। वह केवल विद्यमान् होती है। तत्पश्चात् परमात्मा के आदेश से जो गौण रूप से प्रवृत्ति की इच्छा कही जाती है, उसमें क्रियास्वरूप बाहुल्य और विचित्रता आती है।

जैसे कोई तलवार को घुमाकर कहे कि आज यह डायन किसी का सिर काटना चाहती है, वस्तुत: यह 'चाहना' तलवार की नहीं, तलवार चलानेवाले की है।

(४)

चौथा प्रमाण शतपथ का है, "इससे पूर्व व्यापक परमेश्वर ही था" (शतपथ ११-१)। ब्राह्मण-ग्रन्थ के शब्द हैं, "आपो ह वा इदमग्रे सलिलमेवास" (शतपथ ११-१-६-१)। अर्थ है, "प्रलयावस्था में सूक्ष्म प्रकृति ही थी।" सलिल के अर्थ 'परमात्मा' किसी भी कोष में नहीं; इसके अर्थ हैं, 'अत्यन्त सूक्ष्म' और 'आप:' का अर्थ है 'प्रकृति'। अनुवादक को अन्तिम शब्दों से कुछ भ्रम हुआ है, इस शब्द के अर्थ व्यापक भी हैं और 'प्राप्ति योग्य' भी। मौलाना को 'प्राप्ति-योग्य' मानने में सुविधा रहेगी। प्रकृति व्यापक है या नहीं, यह बात हम आगे चलकर स्पष्ट करेंगे।

मौलाना 'ही' शब्द के प्रयोग पर बल देते हैं, क्योंकि प्रकरण तथा उपयोग पर ध्यान देने की आपकी रुचि ही नहीं। जनाब! यदि कोई व्यक्ति आपको आकर कहे कि आपके घर में आपका सुपुत्र ही विद्यमान था, तो क्या इसके यह अर्थ हैं कि वहाँ खुदा था न खुदा की खुदाई और न कोई सृष्टि की वस्तु? आपको शायद घर के सामान की चिन्ता पड़ जाएगी; घर न जाकर कोतवाली को दौड़ेंगे कि चोरी हो गई। मियाँ साहब! यहाँ कार्य-जगत् की चर्चा है, उसके वैचित्र्य की चर्चा है। प्रलयकाल में संसार के पदार्थों का बाहुल्य न था, अपितु केवल प्रकृति थी, वह अव्यक्त थी, इससे परमात्मा की सत्ता से इन्कार नहीं किया जा रहा। शब्द 'ही' से विद्यमान सत्ता के दूसरे रूपों का अभाव तो हम मानते हैं परन्तु विभिन्न सत्ताओं का अभाव यहाँ अभीष्ट नहीं। परमात्मा अथवा जीव, प्रकृति का रूप नहीं और जिस विशेषण का सबमें साम्य है, उसका यहाँ वर्णन नहीं।

गतिशील तथा स्थिर

उन्नीसवाँ तर्क—

उन्नीसवें तर्क में जनाब ने पाँच उद्धरण दिए हैं। उनमें पाँचवाँ उद्धरण तर्क की जान है, इसलिए हम सर्वप्रथम उसी को लेते हैं, "जो गतिशील तथा स्थिर संसार को अस्तित्व में लानेवाला है" (सत्यार्थ-

प्रकाश पृष्ठ १६)।

श्रीमान् जी ! यहाँ संसार से अभिप्राय सावयव तथा निरवयव दोनों से है। संसार सावयव है। मूल में शब्द लिखा है 'जगत्', यह निरवयव के लिए प्रयुक्त नहीं होता। और सावयव संसार को अस्तित्व में अर्थात् कार्यावस्था में लानेवाला परमात्मा ही है।

मौलाना ने चार प्रमाण और दिये हैं—१. परमात्मा, गतिशील तथा स्थिर संसार में सर्वत्र व्यापक है। (पृष्ठ २६)

२. प्रगतिशील तथा स्थिर जगत् को वश में रखनेवाला है। (पृष्ठ २१)

३. गतिशील तथा स्थिर जगत् को जीवित रखता है और विनष्ट करता है। (पृष्ठ १४)

४. जो गतिशील तथा स्थिर जगत् को देख रहा है। (पृष्ठ २६)

इन प्रमाणों के आधार पर मौलाना का कहना है कि यदि संसार अथवा जगत् इसी सावयव संसार का नाम है, तो परमात्मा निरवयव सत्ताओं में विद्यमान न होगा, न उन्हें वश में कर सकेगा, न जीवित अथवा विनष्ट कर सकेगा और न उन्हें देख रहा होगा।

मौलाना ! आप आर्यों को (कज बहस) कुतर्क करनेवाला कहते हैं जोकि आप स्वयं (कज बहस) हैं। संस्कृत भाषा में चराचर जगत् का अर्थ है सावयव संसार। अब यदि किसी ने कहा कि परमेश्वर अखिल सावयव जगत् में व्यापक है, तो आपको सन्देह हुआ कि वह निरवयव में तो न होगा। जनाब ! सावयव जगत् निरवयव तत्त्वों से ही बना है। सावयव वस्तुतः निरवयव तत्त्वों का एक रूप है। वस्तुतः तो सावयव जगत् निरवयव तत्त्वों से अलग नहीं। जो सावयव में है वह निरवयव तत्त्वों में तो होगा ही। चलो, मौलाना की ही मान लें कि यहाँ निरवयव को वश में रखना-देखना लिखा नहीं है तो इसका क्या अभिप्राय निकला कि निरवयव पर परमात्मा का वश नहीं हैं? आपको किसी ने कह दिया कि आप मुझे देख रहे हैं, तो इसके यह अर्थ हैं कि किसी अन्य वस्तु को देख ही नहीं रहे ? कोई कहे कि अंग्रेज़ों ने लंका को वश में कर रक्खा है तो क्या कहनेवाले का भाव है कि हिन्दोस्तान अंग्रेज़ों के वश में नहीं है ? अथवा कहे कि लंका क्राउन कालोनी है, तो वह हिन्दोस्तान को भी क्राउन कालोनी कह रहा है ? हिन्दोस्तान का नाम न लेने से कहनेवाले का यह भाव है कि हिन्दोस्तान उसके वशीभूत नहीं, न यह कि वह

क्राउन कालोनी है। पहले वाक्य में हिन्दोस्तान का नाम नहीं लिया, दूसरे वाक्य में उसको अलग नहीं किया गया। इसी प्रकार सावयव में विद्यमान कहने से निरवयव में विद्यमानता से इन्कार नहीं। जहाँ किसी वस्तु को मिलाना उचित हो मिला दीजिए, जहाँ अलग रखना अभीष्ट हो, अलग रख दीजिए, जैसे हिन्दोस्तान को क्राउन कालोनी से अलग रख दिया। इस प्रकार निरवयव के स्थिर रखने, उसमें व्यापक होने, देखने में ईश्वर को सम्मिलित कर लें, परन्तु निरवयव को अस्तित्व में लाने में अलग कर लें।

सनातन कारण

बाईसवाँ तर्क—

मौलाना के बाईसवें तर्क का आधार ऋग्वेद १-४८-१ का निम्न अनुवाद है जो सत्यार्थप्रकाश के सातवें समुल्लास से उद्धृत किया गया है। यह अनुवाद सातवें एडीशन के पृष्ठ १८८ पर अंकित है। मौलाना को इस तथ्य का क्या पता कि अनुवाद का पता लिखना आवश्यक होता है! मूल पर विवाद करना और बात है, व्याख्या पर विवाद और बात। मज़ा यह कि आपने सत्यार्थप्रकाश के वास्तविक शब्द भी नहीं लिखे, अपितु उसके उर्दू अनुवाद से निम्न वाक्य नक़ल किए हैं, "परमात्मा सबको हिदायत (शिक्षा) फ़रमाते हैं कि ऐ इन्सानो (मनुष्यो), मैं ईश्वर सबसे पहले मौजूद (विद्यमान) और सारी दुनिया का मालिक (स्वामी) हूँ। मैं जगत् की पैदाइश (उत्पत्ति) का क़दीम (सनातन) बाएस (कारण) हूँ।" मौलाना के विवाद का आधार, "सबसे पहले मौजूद" शब्द हैं। मौलाना कहते हैं शब्द 'सब' में जीव तथा प्रकृति भी सम्मिलित हैं। ज़रा मियाँ जी से पूछिए कि कौन-से 'सब' में? पहले लिखा है—"सब को शिक्षा देते हैं।" यह शिक्षा निश्चित रूप से मनुष्यों को ही है, जो शरीर के बन्धन में हैं अथवा मुक्त हैं। अतः दूसरा 'सब' शब्द भी उन्हीं की ओर संकेत करता है। परमात्मा आत्मा के बन्धन (शरीर का बन्धन) में आने से पूर्व भी विद्यमान है और मोक्ष से पूर्व भी। हम पहले निवेदन कर चुके हैं कि अस्तित्व का अर्थ यहाँ क्रियात्मक रूप में आने से है। स्वतःसिद्ध तो ईश्वर, जीव तथा प्रकृति तीनों की सत्ता है, तीनों अनादि हैं। हाँ, क्रियात्मक अवस्था में परमेश्वर सदा रहता है, परन्तु

प्रलयकाल में जीव तथा प्रकृति का रूप अव्यक्त हो जाता है। इस अव्यक्त रूप के दृष्टिकोण से परमात्मा ने सृष्टि-रचना के साथ वेद-वाणी द्वारा कहा कि मैं सबसे पूर्व विद्यमान हूँ।

मौलाना 'सब से पूर्व विद्यमान' के पश्चात् 'मालिक' (स्वामी) का शब्द पाकर बहुत प्रसन्न हुए हैं कि उत्पन्न करने के कारण स्वामी है। मौलाना, यह क़ुर्आन नहीं कि जैसा चाहो तोड़-मरोड़ लो। यहाँ तो अपने क्रियात्मक स्वरूप (अस्तित्व) तथा दूसरों के क्रियात्मक अभाव की ओर संकेत है, चाहे इसे आप स्वामित्व का कारण बना लें। 'उत्पत्ति का सनातन कारण' शब्द पढ़ते ही मौलाना प्रसन्नता में झूम उठे! फ़रमाया, "देखो, है अकेला कारण कि नहीं?" जनाब! सनातन कारण तो हम भी मानते हैं, परन्तु निमित्त कारण। उसे अकेला कारण नहीं मानते और यहाँ अकेला कारण कहा भी नहीं। रही बात यह कि दूसरे कारणों का वर्णन नहीं, इससे न तो उन कारणों की स्वीकृति कही जा सकती है और न इन्कार। किसी मौलाना के तीन पुत्र थे—महमूद, अहमद और हमीद। कोई यदि मियाँ जी को 'महमूद का पिता' कहके पुकारे, तो क्या अहमद और हमीद को उनका पुत्र नहीं माना जाएगा? और सम्पत्ति से अलग कर दिया जाएगा? बड़े पुत्र के नाम से पिता प्रसिद्ध होता है। निमित्त कारण बड़ा है, इसलिए उसका अकेला वर्णन भी हो सकता है, परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि दूसरा कारण है ही नहीं।

एक ब्रह्म

पच्चीसवाँ तर्क—

पच्चीसवें तर्क में गोपथ ब्राह्मण का प्रमाण निम्न रूप से दिया है, "निस्सन्देह यह ब्रह्म (ईश्वर) ही सर्वप्रथम अकेला था, वह स्वयं एक था। उसने देखा कि यद्यपि मैं महान् तथा पूजा के योग्य हूँ, तब भी एक ही हूँ, अत: अपने में से अपने समान दूसरा देव बनाऊँगा।" मौलाना ने इसी प्रमाण के आशय की एक हदीस भी प्रस्तुत की है, "खलक अल्लाह आदम अली सूरत"। प्रलयकाल में परमात्मा तो एक था ही, उसके समान कुछ गुणों में उससे मिलता-जुलता जीव ही तो है! प्रलयकाल में जीव का क्रियात्मक रूप से अभाव होने के कारण ईश्वर अकेला था।

उसे उसने क्रियात्मक रूप दिया। उसको आदम कहो, इन्सान कहो, परन्तु इससे यह कैसे सिद्ध हुआ कि जीव का पहले अभाव था ? हदीस के 'अली सूरत' पर जनाब को बहुदेववाद की गन्ध नहीं आई। सारी पुस्तक में आग्रह रहा कि एक भी ईश्वरीय गुण, जीव में सम्मिलित हुआ, तो बहुदेववाद (शिर्क) निश्चित हो जाएगा, परन्तु यहाँ तो 'सूरत' शब्द कई गुणों पर लागू होगा, सम्भवतः अल्ला तआला की 'सूरत' भी निश्चित करनी पड़ेगी !

आत्मा "ही"

दूसरा प्रमाण बृहदारण्यक उपनिषद् अध्याय १, ब्राह्मण ४, मंत्र १ से दिया है। जो अनुवाद आपने दिया है वह मूल से सम्बन्धित अनुवाद नहीं; कुछ भाग निकाल भी दिया है और लिखा है—"आरम्भ में केवल आत्मा ही था, वह बेलाग-सा था। उसने चारों ओर देखा और अपने अतिरिक्त कुछ न पाया। उसने **'मैं हूँ'** पहले यह कहा, अतः उसका नाम **'मैं'** हुआ।" मौलाना ने यहाँ 'मैं' के आगे ब्रैकेट में (खुदा) लिख दिया है। यह अशुद्ध है। इस वाक्य के आगे लिखा है—"इसलिए अब भी **'मैं'** कहकर फिर दूसरा नाम कहता है।" इस वाक्य से स्पष्ट है कि यहाँ परमात्मा से अभिप्राय नहीं, आत्मा से है। सारे ब्राह्मण को पढ़ने के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि यहाँ बेलाग आत्मा के स्त्री-पुरुष के शरीर को धारण करने का वर्णन है। आत्मा को 'पुरुष-विध' कहा है और आगे आपने अनुवाद किया है, 'जो पहले पाप को जलाए, वह पुरुष है। हमने अनुवाद किया है 'बेलाग-सा'। यहाँ 'आत्मा ही' पढ़कर मौलाना भ्रम में पड़ गए। उनके विचार में यहाँ आत्मा के अतिरिक्त हर अस्तित्व से इन्कार लिखा है, परन्तु यह बात नहीं। यहाँ लेखक का अभिप्राय नर-मादा (स्त्री-पुरुष) के भेद का अभाव कहने से है। उस समय स्त्री-पुरुष न थे, केवल आत्मा ही था। उसने धीरे-धीरे 'स्त्री-पुरुष' के शरीर ग्रहण किए।

अत्यन्त सामर्थ्य

सताईसवाँ तर्क—

सताईसवें तर्क में मौलाना ने निम्न प्रमाण दिया है—"उस परमेश्वर की अत्यन्त सामर्थ्य ही इस संसार के बनाने की सामग्री है जिससे यह

संसार बनता है (यजु० ३१-४)।" यह उद्धरण भी भाई निहालसिंह की 'तमहीद तफ़सीरे वेद' से लिया गया है। हमें आश्चर्य है कि मौलाना उद्धरण का स्पष्ट पता क्यों नहीं लिखते? क्या यह दिखाने को कि उन्होंने वेद पढ़े हैं? यहाँ फिर वही शब्द 'क़ुदरत' लिखा है। मूल में शब्द है 'सामर्थ्य' जिसका अर्थ है साथ रहनेवाला साधन (मसाला), सो यह प्रकृति है। मौलाना का आक्षेप है कि यदि यहाँ प्रकृति लिखना अभीष्ट हो तो उसे परमात्मा का 'सामर्थ्य' (क़ुदरत) क्यों कहा जाए? 'परमात्मा का माद्दः' (Matter) यह वाक्य ठीक नहीं है। श्रीमान् जी! 'क़ुदरत' के स्थान पर आप लिखिए, 'साथ रहनेवाली सामग्री (साधन)' और फिर देखिए कि परमात्मा के साथ रहनेवाला 'मसाला या माद्दः' शब्द ठीक बना है या नहीं? आप पूछते हैं कि सामर्थ्य के साथ अत्यन्त क्यों कहा? मूल में शब्द है, अत्यन्त अर्थात् असीम। यदि आपने धरती के मापने की विद्या पढ़ी हो आपको ज्ञात होगा कि वस्तु की सीमा (मकॉन की हद) सदा दिशाओं की होती है, अर्थात् लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई। परन्तु बिन्दु की कोई सीमा नहीं, क्योंकि 'बिन्दु' न लम्बी होती है, न चौड़ी और न ऊँची। ऐसे ही परमाणु अथवा प्रकृति असीम है; उनकी लम्बाई-चौड़ाई अथवा ऊँचाई नहीं होती, अतः उन्हें 'अत्यन्त' अर्थात् 'असीम' कहते हैं। समय की सीमा अनादि तत्त्वों पर नहीं होती। इस दृष्टि से यहाँ 'अत्यन्त सामर्थ्य' अर्थात् असीम साथ रहनेवाला **मसाला** कहा है?

काल का काल

उन्तीसवाँ तर्क—

इस तर्क में आपने सत्यार्थप्रकाश का प्रमाण दिया है—"इस प्रकार सृष्टि-उत्पत्ति से पूर्व परमेश्वर, जीव तथा प्रकृति, जो अनादि हैं, इनसे संसार की उत्पत्ति होती है। यदि इनमें से एक भी न हो, तो संसार भी न हो" (सत्यार्थप्रकाश, पृष्ठ २४८)। तत्पश्चात् आपने सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ १२ के निम्न वाक्य लिखे हैं—"प्रलयकाल सबका नाश करनेवाला बल्कि काल का भी विनाश करनेवाला (ईश्वर) है।" ये वाक्य उर्दू-अनुवाद के हैं। थोड़ी देर के लिए मान लो कि अनुवाद ठीक है, जो वस्तुतः ठीक नहीं, तो क्या इससे ऋषि के शब्दों से परस्पर-विरोध की

गन्ध आती है ? यदि मान भी लें तो इससे यह कैसे सिद्ध हो गया कि जीव तथा प्रकृति सादि हैं ? पाँच तत्त्वों को अनादि कहा—(पृथिवी, अप्, तेज़ आदि), उनमें से एक को (काल को फिर सादि) कह दिया, इससे शेष भी सादि हो गए, यह मौलाना का नया तर्क है। मूल में यह शब्द लिखे हैं—"प्रलय में सबका काल अर्थात् काल का भी काल है।" पहले शब्द काल का अर्थ है 'विनाश करनेवाला', दूसरे काल का अर्थ है 'ज़माना', और तीसरे काल का अर्थ है 'गिननेवाला' (शुमार करनेवाला)। परमात्मा ज़माने का शुमार (गणना) करनेवाला है। काल के दो रूप हैं—एक स्वयंसिद्ध अर्थात् शाश्वत, यह अनादि और अनन्त है; काल का दूसरा रूप 'विभक्त'-रूप है जैसे एक घंटा, दो घंटे, तीन घंटे। काल का यह अस्तित्व 'गणना' में आता है और यह विभाजन समाप्त भी होता रहता है। परमेश्वर इस विभाजन का आरम्भ तथा अन्त किया करता है—प्रलय में अन्त, तथा सृष्टि में पुनः आरम्भ ! हाँ, अविभाज्य काल का जो अनादि तथा अनन्त है, उसका न आरम्भ है और न अन्त। ऐसे ही कार्यजगत् का वह आरम्भ भी करता है, और अन्त भी; परन्तु कारण अर्थात् जीव तथा प्रकृति दोनों शाश्वत रहते हैं; इनका आरम्भ तथा अन्त नहीं होता।

पुस्तकालय

ससीम तथा असीम

तीसवाँ तर्क—

मौलाना का तीसवाँ तर्क, स्वामी दर्शनानन्द की पुस्तक 'अक़ाइदे इस्लाम पर अक़्ली नज़र' के निम्न उद्धरण पर आधारित है—"अद्वितीय (लाशरीक) खुदा को तुम ससीम मानते हो अथवा असीम ? यदि ससीम मानो तो उसे सशरीरी मानने से सावयव मानना पड़ेगा और जो वस्तु मिलकर बनी है, उसका विनाश अनिवार्य है।" मौलाना उपर्युक्त उद्धरण से तर्क देते हैं कि चूंकि जीव तथा प्रकृति ससीम है (विभु नहीं) अतः सावयव तथा नश्वर है। हम निवेदन कर चुके हैं कि सीमा के तीन प्रकार होते हैं—एक अत्यन्त सूक्ष्म, यथा परमाणु; दूसरा मध्यम, और तीसरा विभु। परमाणु का रूप बिन्दु का है, विभु परमेश्वर है और मध्यम प्रकार में वह संसार है। इनमें मध्यम अर्थात् जगत् की हर वस्तु ससीम है, क्योंकि उसमें लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई है; परन्तु सूक्ष्म

बिन्दु भी ससीम नहीं, और विभु परमेश्वर भी ससीम नहीं। ध्यान रहे कि सीमा दिशाओं से बनती है; जिसकी दिशाएँ ही न हों, उसकी सीमा कैसी ? यही अवस्था जीव तथा परमाणुओं की है। अतः श्री स्वामी दर्शनानन्द का इस्लामी खुदा पर तो आक्षेप उपयुक्त है, परन्तु मौलाना का इसे वैदिक मन्तव्य जीव-प्रकृति पर लगाना ठीक नहीं !

असीम प्रकृति

इकतीसवाँ तर्क--

मौलाना का यह तर्क सांख्य दर्शन के निम्न सूत्र पर आधारित है— "अर्थात् ससीम उपादान कारण नहीं होता।" हमने यही सिद्ध किया है कि न तो परमाणु ससीम है न परमात्मा। अतः सांख्य का सूत्र, हमारे मन्तव्य का खण्डन नहीं करता।

मौलाना ने प्रकृति को ससीम सिद्ध करने के लिए ऋषि दयानन्द के ये वचन उद्धृत किए हैं—"यह संसार···असीम परमेश्वर की तुलना में ससीम है।" (सत्यार्थप्रकाश, पृष्ठ २३६)

ऋषि के शब्द हैं 'यह संसार' अर्थात् 'सावयव विश्व'। हम भी सावयव विश्व को मध्यम परिमाण का मानते हुए ससीम मानते हैं। यह विश्व परमाणु के समान न तो बिन्दु है जिसकी लम्बाई-चौड़ाई और ऊँचाई न हो, और न विभु परमात्मा है कि जिसपर दिशाओं का बन्धन न हो। मौलाना को ध्यान रखना चाहिए कि सीमा, एक काल की होती है, एक स्थान की तथा एक शक्ति की। सावयव संसार हर दृष्टि से ससीम है। सूक्ष्म परमाणु तथा जीव स्थान तथा काल से तो ससीम नहीं, शक्ति से ससीम हैं। अतः परमेश्वर की तुलना में यदि अनादि सत्ता को ससीम कहा जाए, तो शक्ति में ससीम जानिएगा। परन्तु वह सत्ता समय अथवा स्थान में भी ससीम हो, ऐसा आवश्यक नहीं !

चौथा अध्याय

क़ुर्आन की गवाही

अब तक हमने मौ० मुहम्मद इसहाक़ के उन तर्कों का उत्तर दिया है, जो उन्होंने जीव-प्रकृति के नश्वर होने तथा सादि होने के पक्ष में दीं, अथवा इन दोनों सत्ताओं के अनादि होने के विरोध में प्रश्न प्रस्तुत किए, उनकी आलोचना की है। यह दार्शनिक चिन्तन का विषय था, इसमें तर्क की आवश्यकता रहती है, परन्तु सम्प्रदायों में तर्क के साथ-साथ धार्मिक ग्रन्थों के प्रमाणों को भी अपने पक्ष की पुष्टि में प्रस्तुत किया जाता है।

मौलाना क़ुर्आन को ईश्वरीय ज्ञान स्वीकार करते हैं। आओ देखें, क़ुर्आन इस विषय में क्या कहता है? मौलाना ने अपने पक्ष के अनुमोदन में, कहीं-कहीं क़ुर्आन की आयतें प्रस्तुत तो की हैं, परन्तु क़ुर्आन का कोई ऐसा स्पष्ट प्रमाण, जिसमें अभाव से भाव का अस्तित्व में लाना लिखा हो अथवा जीव तथा प्रकृति को उत्पन्न हुआ माना हो, प्रस्तुत नहीं किया। हमने भूमिका में मौ० आज़ाद सुबहानी की सम्मति लिखी थी कि **"सम्प्रदाय को दर्शन के नियमों से कुछ वास्ता नहीं**... सारे क़ुर्आन तथा हदीस को छान मारो, कहीं प्रकृति तथा जीव का वर्णन नहीं पाओगे। जीव के सम्बन्ध में प्रश्न किया गया, परन्तु यदि उसका उत्तर दे दिया जाता तो यहाँ से ही इस्लाम की व्यर्थता का प्रारम्भ हो जाता। इस्लाम विशेष रूप से न जीव तथा प्रकृति की उत्पत्ति के पक्ष में है और न इनके अनादि होने का पक्षधर।"

क़ुर्आन की आयतें—जब दो मौलानाओं की सम्मति में अन्तर हो तो हम-जैसे ग़ैर-मौलाना उसमें प्रमाण नहीं बन सकते। हाँ, दोनों मौलानाओं का पूरा सम्मान करते हुए स्वयं क़ुर्आन पर गम्भीर दृष्टि से विचार कर सकते हैं। यदि क़ुर्आन स्वयं अपना दृष्टिकोण कह डाले, तो सभी विवादों से छुटकारा पाने की आशा की जा सकती है। मौलाना

की दृष्टि में अगर अपने विषय के पक्ष में क़ुरआन की कोई स्पष्ट आयत होती, जिसमें अभाव से भाव में लाने का खुला वर्णन होता तो वह उस आयत को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करने में देर न करते, अपितु मौलाना के तर्क का शीर्षकस्वरूप भी वही आयत होती। ऐसा नहीं कि तर्क देने के पश्चात् जैसा मौलाना ने किया है, धीरे-धीरे क़ुर्आन की आयतों का भी प्रमाण लिखते। अतः अब हम क़ुर्आन की उन आयतों के शब्दार्थ पर विचार करेंगे जिन्हें मौलाना ने अपने पक्ष के अनुमोदन में लिखा है और साथ ही क़ुर्आन की कुछ वे आयतें भी लिखेंगे जिनमें स्पष्ट रूप से जीव और प्रकृति के अनादित्व का वर्णन है। निष्पक्ष मुसलमान दोस्त यदि सच्चे हृदय से क़ुर्आन में वर्णित दृष्टिकोण का अध्ययन करें, तो निश्चय ही वे क़ुर्आन में वैदिक मन्तव्य का अनुमोदन पायेंगे। आख़िर कहा ही तो है **"वारस्सलना मन किबलक"** अर्थात् हमने भेजे हैं रसूल तुझसे पूर्व। और इन पवित्र पुस्तकों में अन्तर क्या है? **"मिन ज़िक्र फ़हदस"** अर्थात् केवल नयी वर्णन-शैली अथवा शब्दों के परिवर्तन का। आइये अब क़ुर्आन की आयतों में इस विषय पर सम्मति देखें—

(१) "क़ुलिल्लाहु ख़ालिकु कुल्लि शैअिव्व हुवल्-वाहिदुल् क़ह्हारु" (सूरतुर्रऽदि आयत १६)।

अर्थ—कह, अल्लाह स्रष्टा है कुल वस्तुओं का और वाहिद (अकेला) क़ह्हार है (क़हर ढानेवाला है)।

(२) "अना ख़लक़् ना लहम् ममा अमलत इदी ना इनआमन्।" (यस, आयत ५)।

अर्थ—निश्चय ही उत्पन्न किये तुम्हारे लिए उससे जो हमारे हाथों से मअमूल है जानवर।

(३) "ख़लक़ कुल्ल शैअिन् फ़क़द दरह तकदीरन्" (सूरतुल् फ़ुरक़ानि आयत २)।

अर्थ—उत्पन्न की कुल वस्तु और रखा है उसके कदर पर।

(४) "व लक़द् ख़लक़्नल्-अिन्सानमिन् सुलालतिम्-मिन्तीनीन् सुम्म ।अलनाहु नुतफ़तन् फ़ी क़रारिम् मकीनिन्" (सूरतु मुअ्मिनून् आय १२, १३)।

र्थ—और उत्पन्न किया इनसान को मिट्टी के निचोड़ से फिर वन । नुतफ़ा (जीवनशक्ति)।

(५) "ख़लक़कुम् मिन् ज़ुऽफ़िन् सुम्म जअल मिम्बऽदि ज़ुअफ़िन् क़ुव्वतन् सुम्म जअल मिम्बऽदि ज़ुफ़िन् क़ुव्वतन् ।" (सूरतर्रुमि-आयत ५४—६)।

अर्थ—उत्पन्न किया तुमको ज़ोऽफ़ (दुर्बलता) से, फिर बनाई बाद ज़ोऽफ़ के क़ुव्वत (शक्ति), फिर क़ुव्वत के पश्चात् ज़ोऽफ़ (दुर्बलता) और श्वेत बाल।

उपादान कारण का वर्णन—

इन सभी आयतों में परमात्मा को उत्पन्न करनेवाला तो कहा है, परन्तु विचारणीय है कि उत्पन्न किससे किया ? क्या अभाव से ? अभाव के लिए इन आयतों में कोई शब्द नहीं। हाँ, सूरा यस में जानवरों के सम्बन्ध में लिखा है जो परमात्मा के हाथों की मअमूल थी "ममा अमलत एदीना" अर्थात् परमात्मा के हाथों का उसपर अमल हुआ था। ऐसी वस्तु का जिसपर परमात्मा के हाथों का अमल हुआ हो, अभाव तो नहीं कहा जा सकता ? सूरतुल् मुअ्मिनून् आयत १२ में कहा भी है—**वलक़द्ख़लक़्नल्—इन्सान मिन सुलालतिम् - मिन् तीनिन्**—कि इन्सान को मिट्टी के निचोड़ से उत्पन्न किया ।।१२।।

इस आशय की आयतें क़ुर्आन में स्थान-स्थान पर वर्णित हैं कि मनुष्य को मिट्टी से बनाया, जैसे सूरा निसा आयत १६, सूरा रहमान आयत १४ इत्यादि उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत की जा सकती हैं। यहाँ पर बनाने के लिए धातु "ख़लक" का स्पष्ट प्रयोग हुआ है; जिसके लिए निमित्त कारण परमात्मा को कहा, वहाँ उपादान कारण 'मिट्टी' का स्पष्ट वर्णन है, अतः जहाँ परमात्मा को "ख़ालिक" (स्रष्टा) कहा है वहाँ उपादान कारण से इनकार अभीष्ट नहीं, अपितु स्पष्ट स्वीकृति है, और ईश्वर को निमित्त कारण कहा गया है। सूरा रूम आयत ५४ में जहाँ ज़ोऽफ़ (दुर्बलता) से क़ुव्वत (शक्ति) तथा शक्ति से दुर्बलता के सृजन की चर्चा है और इसके लिए शब्द 'ख़लक' आया है, यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि 'ख़ल्क' का अर्थ परिस्थिति का परिवर्तन है, क्योंकि ज़ोऽफ़ (दुर्बलता) तथा शक्ति दो अवस्थाएँ हैं। मौ० मुहम्मद अली भी अपनी "तफ़सरे क़ुर्आन" में यही अर्थ लेते हैं।

कुन फ़ यकून। इस सम्बन्ध में एक समस्या **कुन फ़ यकून** की है। सूरा यस—आयत ५ में आया है—

"अन्मा अमरु अज़ा ओ शैमान यकूलल कुन फ़ यकून" निश्चय ही आदेश उसका, जब वह किसी वस्तु का इरादा करता है, यह वचन होता है कि "हो जा" (कुन) और वह हो जाती है।

विचारणीय यह है कि क्या यह आदेश केवल अभाव की अवस्था में दिया जाता है? और उसे कार्यावस्था में परिणत होने का आदेश होता है? यही 'कुन फ़ यकून" का आदेश **सूरा आल उमरान** आयत ५९ में आया है **"ख़लक़ह मिन् तुराबिन् सुम्म क़ाल लह कुन् फ़ यकूनु"** ख़लक़ किया उसे मिट्टी से और फिर कहा उसे हो जा (कुन्) और "वह हो गया।"

यहाँ 'ख़लक' क्रिया के लिए 'मिट्टी' कारण विद्यमान है और वह उपादान कारण है; फिर मज़ा यह कि 'कुन् का आदेश' कार्य में परिणत होने के भी पश्चात् दिया जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि आदेश विद्यमान को दिया जाता है, न कि अविद्यमान (अभाव) को। सम्भव है कुछ भाई सोचें कि आदेश अविद्यमान (अभाव) को भी दिया जाता है, तो इसके लिए क़ुरआन का कोई प्रमाण चाहिए। सूरा 'यस' आयत ५ के आधार पर मौलाना ने बहुत वावेला किया है। कहीं-कहीं तो वे शिष्टाचार की सीमा को भी फाँद गए हैं, परन्तु उसमें इतना ही कहा है—अल्लाह जब कोई वस्तु चाहता है तो उसे कहता है "हो जा" जैसे सूरा आल इमरान में उसने मनुष्य को चाहा तो कहा **हो जा**। तो क्या मनुष्य पहले विद्यमान नहीं था? क़ुर्आन कहता है कि उसे मिट्टी से उत्पन्न किया, फिर कहा **'कुन'**, तो पहले वह किस अवस्था में था? मौ० मुहम्मद अली फ़रमाते हैं कि यहाँ 'कुन' से अभिप्राय मनुष्य का पूर्ण होना है। हमारा विचार है कि मिट्टी का निचोड़ (सलासत मिन तैंन) बनाया जा चुका था, उससे मनुष्य ने बनना था। कुछ भी हो, मनुष्य किसी-न-किसी अवस्था में पहले ही विद्यमान था, कुन का आदेश केवल परिस्थिति को बदलने के लिए दिया गया, न कि अभाव से भाव को प्रकट करने के लिए। इसी प्रकार **'शै'** (वस्तु) भी किसी अवस्था में विद्यमान होती है, उसे अवस्था बदलने के लिए आदेश दिया जाता है **'कुन'**!

जीवात्मा—यह अवस्था तो हुई मनुष्य की! अब इसके शरीर तथा आत्मा को अलग-अलग करके देखना चाहिए। क़ुर्आन कहता है—"अिन्नी ख़ालिकुम्-बशरम्मिन् सल्सालिम्-मिन् हमअिम्-मस्नूनिन्"

(सूरतुल् हिज्रि आयत २८)—'निश्चय ही मैं बनाता हूँ मनुष्य को मिट्टी काली के निचोड़ से—और जब बना चुकता हूँ पूरा, और फूंकी उसमें रूह (जीव) मेरी।' यहाँ अहमदी विद्वान् रूह का अर्थ ईश्वरीय ज्ञान करते हैं। उन्हें भय है कि कहीं 'मेरी रूह' का अर्थ अल्लाह की रूह हुआ तो मनुष्य की रूह को अल्लाह की रूह (आत्मा) मानना पड़ेगा। वस्तुतः क़ुर्आन का यह वचन तौरेत के निम्नलिखित वचन का अनुवाद है—"और परमात्मा ने इन्सान को मिट्टी से बनाया और उसके नथुनों में ज़िन्दगी की साँस फूंकी, और मनुष्य जीवित हुआ।" (पैदाइश बाब २, आयत नं० ७)

सम्भव है कोई मनचला 'ज़िन्दगी की साँस' का अर्थ ईश्वरीय ज्ञान कर दे, परन्तु आगे कहा है कि उसके कारण मनुष्य जीवित हुआ। मौलाना एक हदीस का प्रमाण देकर लिख चुके हैं कि मनुष्य को परमात्मा ने 'अलीसूरता' अर्थात् अपने स्वरूप (सूरत) पर पैदा किया। इस हदीस को क़ुर्आन की उपर्युक्त आयत से मिलाएँ, सम्भव है कोई अर्थ स्पष्ट हो जाए!

मौलाना ने क़ुर्आन का यह वचन भी उद्धृत किया है—

"यसूनक मन अलरूह कुल अलरूह मन अमरे रब्बी, अवनतम मन अल अलम इल कलीसा।"

"प्रश्न करते हैं तुझसे जीव के सम्बन्ध में—कह, जीव (रूह) ईश्वर के (अमर) आदेश से है, और नहीं दिये गए तुमको ज्ञान से परन्तु थोड़ा।"

क़ुर्आन की यह आयत स्पष्ट रूप से कह रही है कि क़ुर्आन का लेखक जीव के विवाद में जानबूझकर नहीं पड़ा; कह दिया कि यह परमात्मा से आती है, मनुष्य इसके जानने में असमर्थ है। इसपर मौ० आज़ाद सुबहानी ने लिखा कि आयत प्रश्न के उत्तर देने में मौन है। परन्तु अहमदी विद्वान् मौ० ग़ज़ाली का अनुकरण करते हुए 'अमर' (आदेश) का अर्थ करते हैं 'निरवयव जीव का अभाव से अस्तित्व में लाना'। उनका मंतव्य है कि यहाँ जीव को अभाव से उत्पन्न करने का वर्णन है, परन्तु आगे यह वाक्य कैसे सार्थक होगा कि "हमने तुमको थोड़ा ज्ञान दिया है"? मौलाना ने अपना सारा ज़ोर इस बात के सिद्ध करने में लगाया है कि 'थोड़ा ज्ञान' से अभिप्राय है एक जन्म का ज्ञान। यह स्पष्ट खींचातानी है, जो यह तथ्य प्रकट करती है कि मौलाना अपनी व्याख्या से स्वयं संतुष्ट नहीं हैं, नहीं तो क़ुर्आन की आयत के

अर्थों में फेरबदल करने का पाप क्यों करते ?

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो क़ुर्आन के प्राय: विषय, इन्जील से नक़ल किये गए हैं। इन्जील इस विषय में स्वयं गवाही देती है कि रूह का अर्थ मनुष्य की रूह (आत्मा) है, ईश्वरीय ज्ञान नहीं, और अंतिम आयत में इस विषय में जीव का स्वरूप बताने में अज्ञता कही गई है। उसके (जीव के) अभाव से भाव में लाने की बात नहीं है !

क़ुर्आन में अभाव का वर्णन—कुछ स्थान ऐसे भी हैं जहाँ क़ुर्आन में 'नेस्ती' (अभाव) का वर्णन हुआ है। परन्तु वह अभाव कैसा है ?

"हल अति अल अल इन्सान……"(सूरा इन्सान आयत १-२)

अर्थ—"निश्चय ही मनुष्य पर बीता है वह काल ज़माने में, जब कोई वर्णनीय वस्तु न थी; निश्चय ही हमने उत्पन्न किया मनुष्य को मिलनेवाले 'नुतफ़ा' (बल-वीर्य) से। हम इसकी परीक्षा चाहते हैं, अत: इसे देखने तथा सुननेवाला बनाया है।" नुतफ़ा से पूर्व की अवस्था को यहाँ 'लम मकुन शैमन मज़कूरन" कहा है अर्थात् किसी ऐसे अस्तित्व का अभाव जिसका वर्णन नहीं हो सकता; सर्वथा अभाव नहीं। इसी अभाव का वर्णन हम व्यवहार में अभाव अथवा क्रियात्मक गौण अभाव के नाम से कर चुके हैं। यहाँ वेद तथा क़ुर्आन दोनों सहमत हैं। ऋषि दयानन्द ने अभाव की पहेली (समस्या) का समाधान किया कि तब (प्रलय-काल में) जीव तथा प्रकृति क्रियात्मक रूप से नहीं थे। यही बात क़ुर्आन ने कही है; शब्द जुदा-जुदा हैं, अर्थ स्पष्ट रूप से वही है।

कसरत (बाहुल्य) **और वहदत** (एकत्व)—मौ० मुहम्मद इसहाक़ की पुस्तक में पुन:-पुन: क़ुर्आन का यह आदेश वर्णन किया गया है—"कल मोमहूँ फ़ी शान"—वह परमात्मा सदैव अपनी शान में है। इसी वचन पर मौलाना ने तर्क दिया है कि जब परमात्मा सदैव अपनी शान (वैभव) के साथ विद्यमान है तो परमात्मा के गुण, स्रष्टा आदि भी समाप्त नहीं हो सकते। अत: मौलाना ने ईश्वर को केवल शक्ति के आधार पर ही नहीं, क्रियात्मक रूप में भी सदैव सनातन स्रष्टा माना है और यही आर्यों का मन्तव्य है। आर्य लोग सृष्टि तथा प्रलय का काल मानते हैं, मौलाना ने उन्हें कसरत तथा वहदत का काल कह दिया। अन्तर इतना है—आर्य वहदत के काल में (प्रलय-काल में) भी ईश्वर से अतिरिक्त सत्ता का सर्वथा अभाव नहीं मानते, गौण क्रियारूप में अभाव मानते हैं। मौलाना इस काल में सर्वथा अभाव को स्वीकार करते हैं।

परन्तु इस अवस्था में हर सृष्टि में (यदि) नये जीव बनाए जाएँगे, तो जनअत के जीव अनन्त काल तक कैसे रहेंगे? इसपर लिखा है "जो अभावग्रस्त होगा, वह भाव में भी आ जाएगा।" दूसरे शब्दों में, जो ज़नअत के जीव वह्‌दत के काल में सर्वथा अभाव की अवस्था में चले जाएँगे, उन्हें पुनः कसरत के काल में जीवित किया जाएगा। मौलाना को ध्यान में नहीं रहा कि वही जीव फिर जीवित किए जाएँगे तो अभाव में भी उनका सूत्र कोई-न-कोई रहेगा, नहीं तो वही जीव कैसे होंगे? नई सृष्टि के जनअती जीव निश्चितरूपेण वही व्यक्तित्व नहीं होंगे, जो इससे पूर्व की सृष्टि में विद्यमान थे; सृष्टि के पदार्थों का प्रकार तो समष्टि रूप में पहले जैसा कहला सकता है, समष्टि रूप में, परन्तु व्यष्टि रूप में तो वे पुराने नहीं हो सकते! सर्वथा अभाव से अस्तित्व में लाया जानेवाला जीव व्यष्टि रूप से नया होता है; पुराना अस्तित्ववाला जीव, सर्वथा अभाव से अस्तित्व में नहीं आता। अपितु वह अस्तित्व, किसी रूप में, पुनः अस्तित्व में लाया जाता है। इसी तथ्य को सूरा इनसान में कहा गया है कि "वह्‌दत के काल में (प्रलय-काल में) कोई वस्तु वर्णन के योग्य न थी। वस्तु थी, परन्तु ऐसी जिसका वर्णन नहीं हो सकता।" इसी सत्य को वेद में इन शब्दों में कहा है "**तम आसीत् तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्** (ऋग्० १०-१२९-३)—उस समय परमाणुरूप प्रकृति अँधेरे से ढकी थी, उसकी पहचान नहीं थी, यह सब अति सूक्ष्म था!"

आवागमन—यदि मौलाना इस तथ्य की गहराई को समझ जाएँ, तो जीव तथा प्रकृति के अनादित्व के विषय पर आर्यसमाज तथा इस्लाम एकमत हो जाएँ। क़ुर्‌आन कहता है "**कन्तुम् अगवातन् फ़ाहिया ·· तरजऊन**"—"तुम थे मरे हुए, उसने तुम्हें जीवित किया, फिर तुम्हें मार देगा, फिर जीवित करेगा।" वर्तमान जीवन से पूर्व इस आयत में जीव का सर्वथा अभाव नहीं कहा गया, अपितु मृत्यु की अवस्था कही है। मृत्यु की अवस्था में इस्लाम में भी तो मनुष्य का सर्वथा विनाश नहीं माना जाता। जब '**यमेतुकुम**' में सर्वथा विनाश न होगा, तो '**अमवातुकुम्**' में सर्वथा अभाव क्यों माना जाए? जीव, मनुष्य के शरीर धारण करने से पूर्व विद्यमान होता है और मृत्यु की अवस्था से जीवन की अवस्था आती है, यही आवागमन है। प्रलयावस्था में जीव की अवस्था जीवन की नहीं होती, अपितु केवल क्रियात्मक अभाव की

होती है। वेद में फरमाया है "न मृत्युरासीत् अमृतं न तर्हि" (ऋ० १०-१२९-२) – उस समय मृत्यु न थी, न मुक्ति थी।

परमात्मा—इस प्रलयकाल में तथा सृष्टि के काल में, जिसे आर्यसमाज तथा अहमदी मौलाना दोनों अपने मन्तव्य में अनादि तथा अनन्त मानते हैं, ईश्वर का कार्य क्या है? मौलाना लिखते हैं **"ख़लक कुल शै फ़क़दरत तक़दीरा"**—उत्पन्न की प्रत्येक वस्तु और निश्चित किया उसका भाग्य। 'ख़लक' का अर्थ हम क़ुर्आन से अवस्था का परिवर्तन सिद्ध कर चुके हैं, अर्थात् किसी विद्यमान तत्त्व का केवल रूप-परिवर्तन। तत्पश्चात् उसको उसके स्थान पर निश्चित करना और यदि वह तत्त्व जीव हो तो उसके कर्मानुसार उसका भाग्य बनाना, यह परमात्मा का कार्य है ही!

"इन्नल्लाह अला कुल्लि शैअिन् क़दीरुन्" (सूरा बक़र आं० १०९)—"निश्चय ही अल्लाह सब वस्तुओं पर अधिकार रखता है।" मौलाना ने पूरी उदारता से आर्यसमाज के इस मन्तव्य को स्वीकार कर लिया है कि परमात्मा चाहता और करता वही है जो उस (परमेश्वर) के गुणों तथा कार्य के अनुसार हो। देखना यह है कि उसका कार्य क्या है? मौलाना आर्यसमाज द्वारा दिए उदाहरण पर क्षुब्ध हुए हैं कि ईश्वर निमित्त कारण है जैसे घड़ा बनाने में कुम्हार। आपने फ़रमाया "नहीं, इस संसार का कर्त्ता कुम्हार नहीं। नादानी है कि संसार के रचयिता के कार्य को पेशाव के विन्दु के कीड़े के कामों से उपमा दी जाती है!" (पृष्ठ ७)

क़ुर्आन में कुम्हार का उदाहरण—

यदि हम कहें कि मौलाना क़ुर्आन से अपरिचित हैं, तो यह हमारी धृष्टता होगी, परन्तु यदि उनके ध्यान में क़ुर्आन की यह आयत लाई जाए तो बुरा भी नहीं—**"ख़लकुलइनसान मिन सलसाल काफ़ज़ार"** "बनाया इनसान को मिट्टी के बरतनों के समान।" मौलाना! मिट्टी से मिट्टी के बरतन कौन बनाता है? कुम्हार ही तो? हम प्रार्थना करेंगे कि आपने जो प्रश्न ऊपर के वचन पर आर्यों से किया है, वह क़ुर्आन के लेखक से करके देखें! उदाहरण इसलिए दिया जाता है कि अप्रसिद्ध को प्रसिद्ध के उदाहरण से स्पष्ट किया जाए। यही अन्दाज़ क़ुर्आन का है और यही आर्यसमाजियों का। मौलाना को भी एक उदाहरण सूझा है;

लिखते हैं—"कोई व्यक्ति ज़ैद (नाम) के घर खाना पका हुआ देखकर कहे कि यह खाना तो पचास वर्ष का पका हुआ है⋯क्योंकि ज़ैद पचास वर्ष से है और खाना खाता आया है⋯अब⋯सब समाजें चीख उठेंगी कि ज़ैद तो हर रोज़ नया खाना तैयार करता है ! इसी प्रकार निस्सन्देह ईश्वर अनादि है⋯नए जीव तथा नई प्रकृति का सृजन करता है (पृष्ठ ४)।" इन मिर्ज़ाई मियाँ से कोई पूछे कि जनाब ! कुम्हार के उदाहरण में तो आपको मूर्खता लगी, और यह भी न सोचा कि स्वयं यह दृष्टान्त क़ुर्आन में है, और आपको दृष्टान्त भी कैसा सूझा ? एक पाचक का ? वह भी क्या⋯ का कीड़ा है या नहीं ? मौलाना ! लोग ज्ञान-विज्ञान के जानकार होते हैं, अतः जब बात करते हैं तो फूल झड़ते हैं। मियाँ ! आक्षेप करना था तो अल्पज्ञ मनुष्य ही कह दिया होता, बिन्दु और कीड़े का यहाँ क्या काम ? कुछ हो, यह तो कहने की शैली पर निर्भर करता है; कोई बात को गम्भीरता से वर्णन करता है, और किसी के कहने में केवल छिछलापन होता है ! ध्यातव्य इतना है कि स्वयं क़ुर्आन ने, रचयिता परमेश्वर का, रचयिता के रूप में वही मन्तव्य स्वीकार किया है जो आर्यसमाज का मन्तव्य है। यह और बात है कि शरीर का Matter काली मिट्टी अथवा मिट्टी का निचोड़ कहा है और जीव को (रूह को) रूही, अर्थात् अपनी (अल्लाह मियाँ की) रूह कहा है। ये साहित्यिक त्रुटियाँ हैं, जिनपर दार्शनिक विद्वान् हँसेंगे, परन्तु अभिप्राय 'कलाम' का वही है, जो हमने ऊपर प्रकट किया है।

पाँचवाँ अध्याय

वेद का सिद्धान्त

संसार की यह समस्या कि कितने तत्त्व अनादि हैं, सदैव दर्शन के चिन्तन का विषय रही है। मौ० आज़ाद सुबहानी का यह कथन कि दर्शन का मज़हब से कोई सम्बन्ध नहीं, दार्शनिक ज्ञान से अनभिज्ञता का द्योतक है। मौलाना ने तो इन समस्याओं पर विचार भी व्यर्थ समझा, परन्तु वर्तमान युग के विद्वान् धीरे-धीरे क़ुर्आन की इस दुर्बलता से परिचित होते जा रहे हैं, और वे यथाशक्ति क़ुर्आन की इस कमी को पूरा करने का प्रयास भी कर रहे हैं। ये शुभ लक्षण हैं। पिछले अध्याय में हमने इस्लाम के विद्वानों के लिए यह मार्ग खोला है। यदि पढ़े-लिखे मुसलमान हमारे दृष्टिकोण से लाभ उठा सकें तो हमारा परिश्रम सफल होगा। यहाँ हम संक्षेप में वेद के कुछ मन्त्र देना चाहते हैं, जिनसे वेद के सिद्धान्त का परिचय प्राप्त हो सके।

तीन अनादि पदार्थ

संसार में तीन प्रकार की सत्ताएँ हैं। वेद इस संख्या को गुणों-सहित वर्णन करता है—

त्रय: केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम्।
विश्वमेको अभि चष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥
(ऋ० १-१६४-४४)

तीन तत्त्व समयानुसार जुदा-जुदा कार्य करते हैं। एक, विश्व का बीज वपन करता है (यह आत्मा है)। एक, सारे विश्व का अपनी शक्तिमत्ता के कारण निर्माण तथा देखभाल करता है (यह परमात्मा है)। एक का गतिशील रूप दीखता है, परन्तु रहस्यमय स्वरूप नहीं (यह प्रकृति है)।

असीम और ससीम

बालादेकमणीयस्कमुतैकं नैव दृश्यते,
तत: परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया। (अथर्व० १०-८-२५)

एक सूक्ष्म-से-सूक्ष्म है (यह आत्मा है); एक सूक्ष्म है परन्तु उसके रूप का अनुभव नहीं होता (यह प्रकृति है); इससे परे एक व्यापक देवता है वह मुझे (अर्थात् भक्त को) प्रिय है (परमात्मा)। यहाँ दो को ससीम तथा एक को व्यापक कहा है। यह ससीम तथा व्यापक, अनादि हैं क्योंकि निरवयव हैं। आरम्भ सदा सावयव का होता है और अत्यन्त सूक्ष्म तथा व्यापक, निरवयव होने के कारण अवयवों के मेल से नहीं बनते। यह जीव तथा प्रकृति के अनादि होने का वैज्ञानिक प्रमाण है।

अनुभूति, अनुभवकर्ता तथा द्रष्टा

द्वा सुपर्णा सयुजा सखायः समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥
(ऋ० १-१६४-२०)

एक विभाज्य अस्तित्व (प्रकृति) पर दो अच्छे शक्तिसम्पन्न मित्र मिले हुए विद्यमान हैं। इनमें से एक तो अनुभव हुए फलों का आनन्द लेता है और दूसरा इस अनुभूति से ऊपर रहकर द्रष्टा है।

अनुभूत फलों के आनन्द लेनेवाला तथा जीवों को भिन्न-भिन्न प्रकार से अनुभूति का करानेवाला बताकर, इस भिन्नता को उनके कर्मों का फल वताया। यदि जीव अनादि तथा स्वयंसिद्ध सत्ता न हो, तो जीवों के सुख-दुःख का कारण परमेश्वर बन जायगा और परमेश्वर दुःखों का कारण न बन जाय, यह तीनों के अनादित्व के लिए नैतिक तर्क है। अन्तिम मन्त्र में इन तीन अनादि तत्त्वों का सम्बन्ध भी संक्षेप में वता दिया। आत्मा के सम्बन्ध में कहा—

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न निचिक्युरन्यम् ॥
(ऋ० १-१६४-३८)

'अपनी इच्छा से नीचे-ऊपर जाता है, पकड़ा हुआ, न मरनेवाला (आत्मा), मरनेवाले (शरीर) के साथ मिला हुआ है। ये दोनों सनातन (आत्मा-प्रकृति) अलग-अलग गुणोंवाले, जुदा-जुदा रुचि रखते हैं। एक को जानते हैं, दूसरे को नहीं।' यहाँ कितने सुन्दर रूप में शरीर को मरनेवाला, और स्वतःसिद्ध प्रकृति की अवस्था में सनातन कहा है! वर्णन-शैली इतनी मोहक है कि बलिहारी जाइये! जीव की उन्नति तथा अवनति, उसकी अपनी इच्छा तथा शक्ति पर निर्भर करती है।

पाप की समस्या का सही समाधान हो, इसका दायित्व जीव पर है। यदि परमात्मा ने जीव को अभाव से भाव में लाया होता, तो पाप करने की क्षमता देनेवाला भी परमात्मा होगा। इस पाप की क्षमता का उत्पन्न करनेवाला तथा कारण स्वयं परमेश्वर हो जाएगा, जिसे बुद्धि स्वीकार नहीं करती।

प्रकृति—प्रकृति के सम्बन्ध में वेद फ़रमाता है—

एषा सनत्नी सनमेव जातैषा पुराणी परि सर्वं बभूव।
मही देव्युषसो विभाती सैकेनैकेन मिषता वि चष्टे॥
(अथर्व० १०-८-३०)

यह (प्रकृति) सनातन है, यह सनातन विस्तृत विश्व पर फैली है, यह अति सौन्दर्ययुक्त चमकती हुई तथा (जो सृष्टि के आरम्भ) में एक-एक सजीव के साथ मिलकर नाना प्रकार के सुन्दर रूप दिखाती है।

एक और स्थान पर लिखा है—**'अजारे पिशंगिला'** (यजु० २३-५) अरे! सब रूपों को निगलनेवाली प्रकृति सनातन है।

रूपों को निगलनेवाली! प्रकृति के लिए क्या सुन्दर नाम है—'रूपों' को निगलनेवाली! एक ही शब्द में विश्व की समस्या का समाधान कर दिया। प्रलय-काल में प्रकृति होती है, क्योंकि वह सनातन तथा सदैव रहनेवाली है, परन्तु ये रूप नहीं होते। वे खो जाते हैं अथवा वेद के काव्यमय शब्दों में निगल लिये जाते हैं, प्रकृति के उदर में चले जाते हैं। इसी अवस्था को वेद रात्रि-काल कहता है। सृष्टि-उत्पत्ति के साथ प्रकृति का सौन्दर्य पुनः जगमगाने लगता है।

वेद में इस आशय के कई मन्त्र हैं, और वे मन्त्र इस कला के साथ अपने विषय को सजाते हैं कि वह काव्यमय वर्णन पढ़कर पाठक आनन्द-विभोर हो उठता है और चिन्तन करता है। वेद ज्ञान का केन्द्र है, सत्य का आधार है, संसार की पहेली के समाधान की सबसे पुरानी पुस्तक है। यह ज्ञान अनादि तथा अनन्त है। यह अनादि-अनन्त परमेश्वर का अनादि-अनन्त जीवों से अनादि काल का सम्बन्ध है। इसके अनादित्व के साथ ही परमेश्वर तथा उसके भक्तों के अनादित्व की कल्पना जुड़ी है। ईश्वर सबके हृदयों को अपने सत्य ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित करे।

एक प्रश्न

अल्लाह मियाँ का बाप

1??907

मौलाना रोज़े बख़्शवाने निकले थे और नमाज़ गले पड़ गई।

(चौबे जी गए थे छब्बे जी बनने और रह गये दुबे जी)

सबसे बड़ा पाप तथा नास्तिकता यह है कि ईश्वर को जीवों के पापों का कारण माना जाए। जब केवल ईश्वर ही अनादि है, तो संसार में व्याप्त पाप की दुर्बलता का, त्रुटियों का (मूल) विशेष गुणी कौन है ? जब तक जीव तथा प्रकृति को अनादि न माना जावे, इन सभी पापों का, दुर्बलताओं का कारण परमेश्वर ही होगा, यह ही नहीं, वह पापों का आविष्कारक भी होगा।

ख़ैर, यह सब तो दार्शनिक चिन्तन से ज्ञात होता है। जनसाधारण को चाहिए कि वे एक ऐसा प्रमाण अहमदियों को दें जो उनके शिर्क (बहुदेववाद) की स्पष्ट दलील है। मौलाना इसपर ध्यान दें, और फिर **'फ़तवा'** लगाएँ।

"इतनी फ़ी अनाम...... समवात उल अरज़" (आईनाए कमालात, मिर्ज़ा गुलाम अहमद, प्रवर्तक कादियानी मत)।

अर्थ—देखा मैंने एक स्वप्न कि मैं हू-ब-हू खुदा हूँ, और निश्चय किया मैंने कि मैं हू-ब-हू खुदा हूँ, अतः मैंने धरती-आकाश को उत्पन्न किया।

पाठक देखें, यहाँ तो केवल अल्लाह मियाँ बने मिर्ज़ा साहब ! आगे चलकर अल्लाह मियाँ के भी बाप (पिता) बने हैं; फ़रमाते हैं—**"अना ब नशरक ब गुलाम......मन उल समा"**

अर्थ—हम तुझे एक विनम्र पुत्र की शुभ सूचना देते हैं, जो सत्य तथा उच्चता का प्रतीक होगा, जैसे खुदा आसमान से उतरा।

(ज़मीमा अंजाम आथम, पृष्ठ ६२)

अपने-आपको अल्लाह कहनेवाला तो मुशरिक (काफ़िर) है, अल्लाह के बाप बननेवाले को क्या कहिएगा ?

ओ३म् शान्ति शान्ति शान्ति !

6-5-02

Clas :

Cat

R E 16-7-202

Tag

Filing

22-7-02

E.A.R.

Any others

Checked

Acc. 122907

ARCHIVES DATA BASE
2011 - 12

Recommended By..........

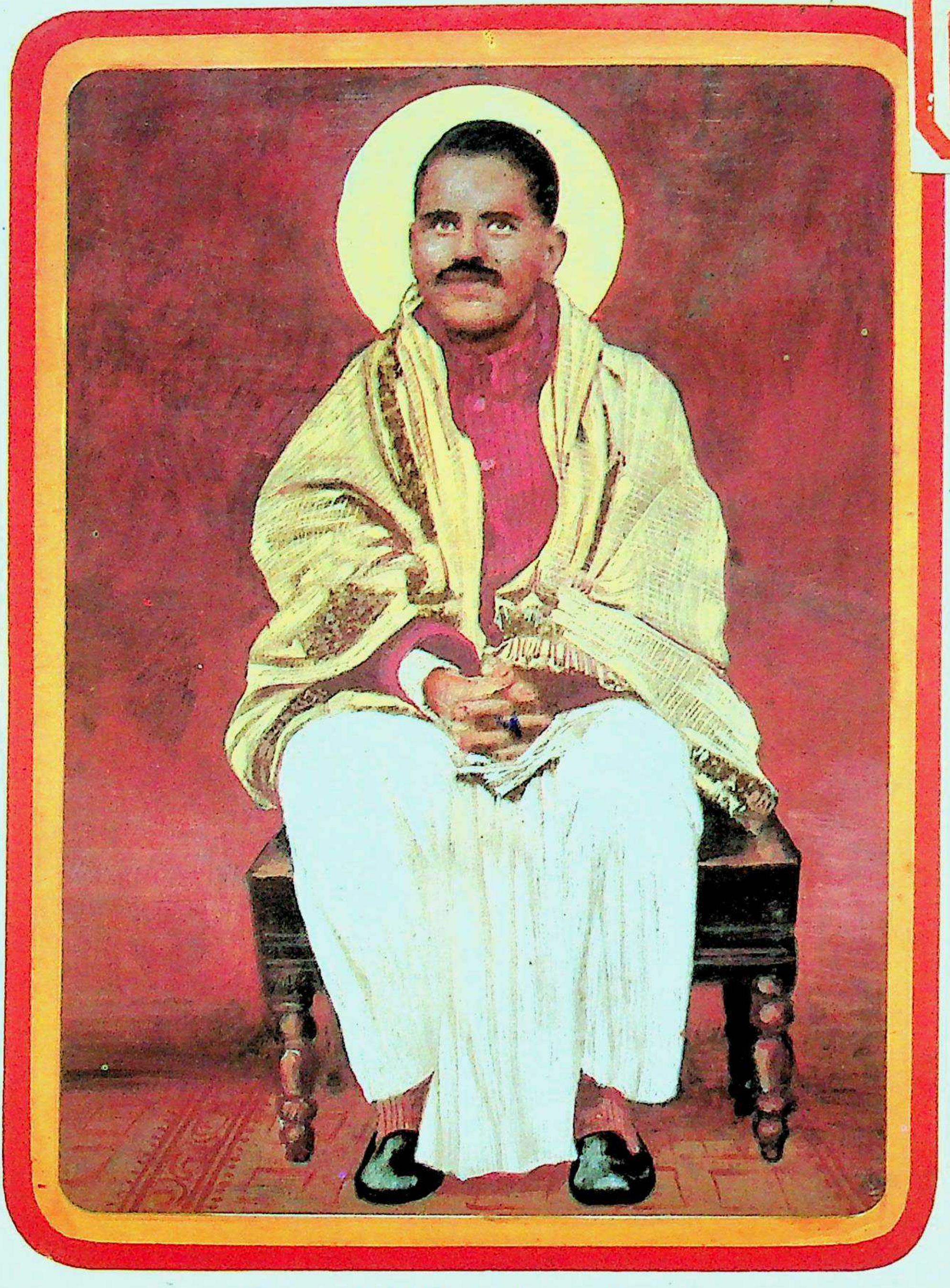

वाग्मी प्रवर कविर्मनीषी स्व० पं० चमूपति एम० ए०

जन्म-तिथि : १५ फरवरी १८९३ ई० निधन-तिथि : १५ जून १९३७ ई०